जैन दर्शन और संस्कृति का इतिहास

लंदन म्युजियम में स्थित भगवान आदिनाथ एवं भगवान महावीर की अति प्राचीन युगल प्रतिमा

-लेखन एवं संकलन-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिकारत्न

श्री चंदनामती माताजी

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

जैन दर्शन और संस्कृति का इतिहास

इकाई (संवर्ग)

इकाई – 1	-जैन धर्म एवं उसकी प्राचीनता	(कुल पाठ-6)
इकाई – 2	-जैन तीर्थंकरों की शाश्वत परम्परा	(कुल पाठ-4)
इकाई – 3	-भगवान महावीर और उनकी उत्तरवर्ती परम्परा	(कुल पाठ-4)
इकाई – 4	-जैन साहित्य	(कुल पाठ-2)
इकाई – 5	-जैन संस्कृति	(कुल पाठ-5)

-मंगल प्रेरणा-

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी (डी. लिट्.)

-लेखन एवं संकलन-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी (पीएच.डी.)

-निर्देशन-

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर

-संपादक-

प्रो. टीकम चन्द जैन, दिल्ली

डॉ. जीवन प्रकाश जैन, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर

-संस्करण -

प्रथम संस्करण (सन् 2015), द्वितीय संस्करण (सन् 2017)
तृतीय संस्करण (सन् 2018)-प्रतियाँ - **1000, चतुर्थ संस्करण (सन् 2019)-प्रतियाँ 500**
पंचम संस्करण (सन् 2019)-प्रतियाँ 500, छठा संस्करण (सन् 2022)-प्रतियाँ 500
सातवाँ संस्करण (सन् 2022)-प्रतियाँ 1000

वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला पुष्प नं.-496
ISBN-978-93-84003-31-9

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
एवं
तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

(सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन)

E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

जैन दर्शन विभाग स्थापना की सम्प्रेरिका
गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी का
मंगल आशीर्वाद

मुझे इस बात की अंतरंग से अपार खुशी है कि सारे विश्व भर में 'तीर्थंकर महावीर' के नाम से एक मात्र प्रसिद्धि को प्राप्त विश्वविद्यालय मुरादाबाद में हमारे भक्त कुलाधिपति माननीय श्री सुरेशचंद जी के बहुमूल्य प्रयासों से निर्मित हुआ है। इस 'तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय' ने आज भारत के श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में अपना स्थान प्राप्त किया है। यहाँ की उच्च शिक्षा तकनीकी तथा शिक्षा के उपरांत छात्र-छात्राओं को उज्ज्वल भविष्य का सुनहरा अवसर प्राप्त होना, यह एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

यूँ तो विश्वविद्यालय में सैकड़ों प्रकार की विधाओं के माध्यम से छात्र-छात्राओं को अपना भविष्य बनाने का अवसर प्राप्त होता है। तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय में भी लगभग 150 से अधिक विषयों पर छात्र-छात्राएँ विभिन्न प्रकार की डिग्रीयाँ प्राप्त करते हैं और अपने जीवन को समुन्नत बनाने का प्रयास करते हैं।

विशेषरूप से मैंने सन् 2012 में युनिवर्सिटी प्रवास के समय इस विश्वविद्यालय में ''जैन दर्शन विभाग'' की स्थापना करने की प्रेरणा प्रदान की, जिसमें जैनधर्म की शिक्षाओं में छात्र-छात्राएँ, स्नातक व स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त कर सकें। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय-मुरादाबाद में जैन दर्शन विभाग की स्थापना हो चुकी है और यहाँ पर अब बी.ए.-जैनोलॉजी व एम.ए.-जैनोलॉजी कोर्स के साथ ही अन्य स्नातक करने वाले विद्यार्थियों के कोर्स में एक विषय जैनधर्म का भी सम्मिलित करने का उपक्रम किया गया है, जो सराहनीय है। यहाँ से जैनधर्म के संदर्भ में विभिन्न प्रकार के ऑनलाइन सर्टिफिकेट कोर्स भी संचालित किये जा रहे हैं।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर एवं विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में आज सम्पूर्ण भारतवर्ष के विभिन्न जैन श्रावक-श्राविकाओं व छात्र-छात्राओं द्वारा इस योजना का लाभ उठाकर घर बैठे ही जैनधर्म में विश्वविद्यालय द्वारा मान्यता प्राप्त सर्टिफिकेट प्राप्त किये जा रहे हैं, यह एक विशेष सफलता एवं बड़े हर्ष का परिचायक है।

अतः मैं इस महत्वपूर्ण अवसर पर कुलाधिपति जी के साथ ही विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय, रजिस्ट्रार महोदय, जैन दर्शन विभागाध्यक्ष आदि समस्त विश्वविद्यालय परिवार को कोटिशः आशीर्वाद प्रेषित करती हूँ कि इसी प्रकार जैनधर्म की शिक्षा एवं तीर्थंकर महावीर स्वामी के सिद्धान्तों का विश्वविद्यालय द्वारा शिक्षा के रूप में प्रचार-प्रसार सतत् होता रहे और विश्वविद्यालय से जैनधर्म में स्नातक एवं स्नातकोत्तर डिग्री हासिल करने वाले छात्र-छात्राएँ भी अपने जीवन को तीर्थंकर महावीर स्वामी के सिद्धान्तों से सुसज्जित करके धर्म प्रभावना, समाज सुधार एवं व्यक्तित्व विकास के क्षेत्र में अपना जीवन समर्पित करें।

पुनः विश्वविद्यालय के जैन दर्शन विभाग हेतु मेरी बहुत-बहुत शुभकामनाएँ एवं मंगल आशीर्वाद है।

गणिनी ज्ञानमती

(गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी)

प्रस्तावना

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(लेखन एवं संकलनकर्त्री)

जैनधर्म प्राकृतिक, शाश्वत एवं अनादिनिधन धर्म है। इसे न किसी ने स्थापित किया है और न कोई कभी नष्ट कर सकता है। इसकी सार्वभौमिकता इस कथन से जानी जा सकती है-''कर्मारातीन् जयति इति जिनः, जिनो देवता यस्येति जैनः'' अर्थात् कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने वाले जिन अथवा जिनेन्द्र भगवान कहलाये और उन जिनेन्द्र भगवान की उपासना करने वाले जैन कहलाते हैं।

इस अर्थ के अनुसार सभी प्राणी जैनधर्म के सर्वोदयी सिद्धान्तों को पालन करने के अधिकारी हो सकते हैं। यह धर्म किसी अन्य धर्म की शाखा न होकर पूर्णतया स्वतंत्र है। समय-समय पर इस धर्म का प्रचार-प्रसार तीर्थंकर भगवन्तों के माध्यम से होता रहा है। भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक चौबीस तीर्थंकर वर्तमान युग के धर्मतीर्थ प्रवर्तक माने गये हैं। इनमें से इस समय भगवान महावीर स्वामी का शासन काल चल रहा है।

तीर्थंकर महावीर की पश्चात्वर्ती परम्परा में अनेकानेक ज्ञानी आचार्य, मुनि, आर्यिका, विद्वान् आदि हुए हैं उन्होंने जैन विद्या तथा भारतीय संस्कृति के संवर्धन और आचार संहिता के संरक्षण में अपना योगदान प्रदान किया है।

भारतवर्ष में तीर्थंकर भगवान के नाम का प्रथम विश्वविद्यालय मुरादाबाद-उत्तरप्रदेश में है जिसका नाम है-तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय (TMU)। सन् 2005 में ''महावीर डेन्टल कॉलेज'' से प्रारंभ हुई यह शैक्षणिक संस्था आज विश्वविद्यालय के रूप में वटवृक्ष के समान विकसित होकर हजारों ज्ञानपिपासु स्नातकों को शीतल छाया प्रदान कर रही है। इस विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री सुरेशचंद जी जैन ने अपनी दूरदर्शिता एवं कर्मठता का परिचय देते हुए इसे देश के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालयों की श्रेणी तक पहुँचा कर जैन समाज में एक कीर्तिमान स्थापित किया है।

सन् 2012 में जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी (अवध विश्वविद्यालय-फैजाबाद द्वारा सन् 1995 में डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत) कुलाधिपति जी के विशेष निवेदन पर विश्वविद्यालय परिसर में 'भगवान महावीर जिनालय' की स्थापना में मंगल सान्निध्य प्रदान करने हेतु हस्तिनापुर से विहार करके मुरादाबाद पधारीं और वहाँ उनके 57वें आर्यिका दीक्षा दिवस (वैशाख कृ. दूज, 8 अप्रैल 2012) के अवसर पर विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित किये गये ''प्रथम विशेष दीक्षान्त समारोह'' में पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी को डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की गई। उस समय पूज्य माताजी ने तीर्थंकर महावीर के नाम वाले इस विश्वविद्यालय में जैनॉलोजी विभाग खोलने की प्रेरणा प्रदान की, जिसे माननीय कुलाधिपति सहित समस्त प्रबंध समिति ने सहर्ष स्वीकार करके बी.ए. जैनोलॉजी एवं एम.एम. जैनोलॉजी कोर्स के रूप में स्थापित करके प्रारंभ करने की घोषणा की।

आगे इस निर्णय के संदर्भ में प्रगति करते हुए बी. ए. जैनोलॉजी का कोर्स इस प्रकार निर्धारित किया गया है कि जिससे जैन व जैनेतर समस्त छात्र-छात्राओं को जैनधर्म का प्राथमिक स्तर से लेकर समग्र ज्ञान प्राप्त हो सके।

अतः इस त्रिवर्षीय बी. ए. के कोर्स में प्रत्येक वर्ष में जैनधर्म से संबंधित 2-2 विषय रखे गये हैं, जिनमें प्रथम वर्ष में 'जैन दर्शन और संस्कृति का इतिहास' तथा 'जैन तत्त्व विद्या', द्वितीय वर्ष में 'जैन आचार संहिता' एवं 'जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्त' तथा तृतीय वर्ष में 'जैनागम में न्याय' एवं 'जैनधर्म का वैज्ञानिक स्वरूप' है। ऐसे बी. ए. में जैनधर्म के कुल 6 पेपर रखे गये हैं।

इसी प्रकार मैंने एम.ए. जैनोलॉजी के प्रथम व द्वितीय वर्षों की भी 4-4 किताबें तैयारी की हैं। इनमें प्रथम वर्ष में जैनधर्म और संस्कृति का इतिहास, भारतीय संस्कृति के उन्नयन में जैन आचरण की भूमिका, कर्म सिद्धान्त एवं ध्यान साधना तथा जैनधर्म एवं न्यायमीमांसा किताबें शामिल है। पुनः द्वितीय वर्ष के लिए तीर्थंकर महावीर दिव्यध्वनि सार (चार अनुयोगों में निबद्ध जिनागम), जिनागम दर्पण, अहिंसा, अनेकांत एवं जैनदर्शन के कतिपय प्रमुख विषय एवं जैनदर्शन के संदर्भ में विभिन्न दृष्टिकोण, ऐसी ये 8 किताबें अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उच्चस्तरीय ज्ञान से पूर्ण हैं।

परीक्षा बोर्ड के परामर्शानुसार इन सभी विषयों के कोर्स मैटेरियल सरलग्राह्य एवं विषय वस्तु के अनुरूप विस्तारित करके प्रस्तुत किये गये हैं।

जैन संस्कृति भारतीय संस्कृति की मूल और सशक्त धारा है। जिसने सदा-सदा से भारत के आध्यात्मिक एवं शैक्षणिक गौरव को वृद्धिंगत किया है। जैनधर्म की साहित्यिक एवं पुरातात्विक विरासत विश्व के कोने-कोने में बिखरी हुई है, उन्हीं पर अनुसंधान करके वर्तमान वैज्ञानिकों ने कम्प्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट आदि के रूप में पुद्गल का चमत्कार भौतिक जगत को प्रदान किया है।

पुस्तकों के लेखन एवं संकलन में बहुत ही परिश्रमपूर्वक विषयों का चयन करके अनेक प्राचीन-अर्वाचीन सन्त और विद्वानों के विचार प्रस्तुत किये गये हैं, ताकि उनके संकलन का ज्ञानवर्धन में व्यापक उपयोग हो सके तथा स्नातक/ स्नातकोत्तर परीक्षा देने वाले विद्यार्थी सरलतापूर्वक जैनदर्शन के विषयों को पढ़कर डिग्री आदि प्राप्त कर सकें।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की दूरदर्शितायुक्त प्रेरणा एवं कुलाधिपति जी के आग्रह पर मैंने इस स्नातकीय एवं स्नातकोत्तरीय शिक्षा की पाठ्यपुस्तकें तैयार करने की जिम्मेदारी ली और यथासंभव उसे निभाने का प्रयत्न किया है।

हमारे इस प्रयत्न में हर क्षण जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी का कुशल निर्देशन प्राप्त हुआ है। इसके साथ ही संघस्थ समस्त आर्यिकावर्ग एवं ब्रह्मचारिणी बहनों का भी प्रूफ संशोधन आदि कार्यों में पूरा सहयोग मिला है।

पुस्तक में गर्भित विषयों के संकलन-संपादन में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त जैन जगत के विशिष्ट विद्वान् प्रो. टीकमचंद जैन (पूर्व अध्यक्ष-जैन अध्ययन केन्द्र, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय) ने अथक परिश्रम के साथ हमें सहयोग प्रदान किया है, उनके साथ डॉ. जीवन प्रकाश जैन, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर ने उपयोगी विषयों के निर्धारण एवं सम्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर कर्तव्य निर्वाह किया है।

गुरु आशीर्वाद एवं उनका हर क्षण प्राप्त निर्देशन ही इसकी सफलता का मूल कारण है।

विश्वविद्यालय में स्थापित जैन अध्ययन केन्द्र सर्वतोमुखी विकास करे, इसके द्वारा बी. ए., एम.ए. (जैनोलॉजी) की डिग्री प्राप्त करने वाले छात्र-छात्राएँ भी जैनधर्म के सार्वभौम सिद्धान्तों से जन-जन को लाभान्वित करें, यही मंगल भावना है। वर्तमान में यहाँ से जैनधर्म पर संचालित किये जा रहे है विभिन्न सर्टिफिकेट कोर्स एवं अन्य स्नातकीय शिक्षा कोर्स में भी जैनधर्म की उपरोक्त प्रारंभिक किताबों का उपयोग किया जा रहा है, जिसके लिए विश्वविद्यालय प्रबंधन के प्रति हमारी बहुत सारी शुभकामनाएँ एवं मंगल आशीर्वाद प्रेषित है।

कुलाधिपति की कलम से..........

तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय में जैनोलॉजी विभाग का शुभारंभ होना, इस विश्वविद्यालय के नाम की परिपूर्णता का सूचक है। मुझे अंतरंग से प्रसन्नता है कि हम जैन होने के नाते विश्वविद्यालय स्तर से जैनधर्म की शिक्षा के प्रचार-प्रसार का एक व्यापक कार्य कर रहे हैं। इस विभाग के माध्यम से छात्र-छात्राएँ जैनदर्शन में अध्ययन करके मान्य डिग्री, डिप्लोमा, सर्टिफिकेट प्राप्त कर सकेंगे और इसके साथ ही एम.फिल. तथा पीएच.डी. भी करके वे अपने उज्ज्वल भविष्य का प्रयास करेंगे, यह विश्वविद्यालय के लिए गौरवपूर्ण बात है।

विशेषरूप से इस जैन दर्शन विभाग की स्थापना में जैन समाज की वरिष्ठतम साध्वी परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद महत्वपूर्ण निमित्त रहा। मुझे गौरव है कि हमारे विश्वविद्यालय का प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह पूज्य माताजी के सान्निध्य में ही हुआ, जिसमें विश्वविद्यालय ने पूज्य माताजी के बहुआयामी व्यक्तित्व एवं विशेषरूप से 400 से भी अधिक ग्रंथों के साहित्यिक योगदान को देखते हुए उन्हें विश्वविद्यालय की प्रथम डिग्री के रूप में "डी.लिट्." की मानद उपाधि 8 अप्रैल 2012 को प्रदान की गई। इसके साथ ही पूज्य माताजी द्वारा लिखित षट्खण्डागम ग्रंथ की सिद्धान्तचिंतामणि संस्कृत टीका का हिन्दी अनुवाद करके इतने प्राचीन ग्रंथ को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जन-जन के लिए सुलभ बनाने का महान कार्य करने वाली प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी को उनके द्वारा लिखित शताधिक ग्रंथों की विशेष सराहनापूर्वक उन्हें भी विश्वविद्यालय द्वारा प्रथम दीक्षांत समारोह में "पीएच.डी." की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया।

यह प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह सदैव ही विश्वविद्यालय के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने के योग्य रहेगा। इसी समय हमें पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी से इस विश्वविद्यालय में जैन दर्शन विभाग का शुभारंभ करने की प्रेरणा प्राप्त हुई थी अतः अब यह प्रेरणा फलित हो रही है, जिससे निश्चित ही अनेकानेक छात्र-छात्राओं को न सिर्फ जैनधर्म का ज्ञान होगा अपितु विश्वविद्यालय की मान्य डिग्री, डिप्लोमा, सर्टिफिकेट से उनके भविष्य का भी सुन्दर निर्माण हो सकेगा, ऐसा पूर्ण विश्वास है।

विश्वविद्यालय द्वारा जैनदर्शन की शिक्षा प्रणाली को ऑनलाइन अथवा दूरस्थ शिक्षा के साथ प्रारंभ किया गया है अतः इसका स्टडी मैटेरियल सरल भाषा में तथा जैन दर्शन के समग्र ज्ञान को प्रदर्शित करते हुए बनाया गया है। इसे सभी छात्र-छात्राएँ सरलता के साथ पढ़कर परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करने का प्रयास करें, यही मेरी शुभकामनाएँ हैं।

सुरेश जैन
(कुलाधिपति)

सम्पादकीय.....

-डॉ. जीवन प्रकाश जैन, जम्बूद्वीप

यह एक अत्यन्त ही ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न हुआ है, जिसमें छात्र-छात्राओं को जैनधर्म के अति विशिष्ट ज्ञान से परिचित होने का अवसर मिल रहा है। बी.ए. और एम.ए. जैनोलॉजी के आधार पर निम्न कुल 14 पुस्तकों का निर्माण अत्यन्त ही कठिन और श्रमसाध्य कार्य था, जिसे प्रज्ञाश्रमणी आर्यिकारत्न श्री चंदनामती माताजी ने अत्यन्त कुशलता के साथ अपने गहन ज्ञान अध्ययन और कुशाग्र विवेक के साथ सन् 2014 में सम्पन्न किया। यह कार्य विश्वप्रसिद्ध जैन तीर्थ दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर की समृद्ध लाइब्रेरी में उपलब्ध शताधिक ग्रंथों के आलोढ़न से अत्यन्त कम समय में सम्पन्न किया गया। इस लाइब्रेरी में लगभग 20 हजार से अधिक जैनधर्म की पुस्तकें उपलब्ध हैं, जिसमें अनेकों पाण्डुलिपियाँ भी संग्रहित हैं। ऐसी लाइब्रेरी के सदुपयोगपूर्वक इस कोर्स का निर्माण जैनधर्म के आगमोक्त ज्ञान के परिवेश में अत्यन्त ही प्रामाणिक है। इन पुस्तकों के माध्यम से धर्म के ज्ञान के साथ विश्वविद्यालयों द्वारा छात्र-छात्राएँ स्नातक और स्नातकोत्तर की डिग्रियाँ भी हासिल कर सकते हैं।

इसी क्रम में तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय-मुरादाबाद को सर्वोच्च जैन साध्वी गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने सन् 2012 में प्रेरणा प्रदान की, जिसके आधार पर कुलाधिपति श्री सुरेश जी जैन ने अपने विश्वविद्यालय में जैनोलॉजी डिपार्टमेंट की स्थापना करके जैनधर्म के प्रति एक महान शैक्षणिक कार्य प्रारंभ किया है। वर्तमान में इस विश्वविद्यालय से निम्न पुस्तकों के आधार पर ही विभिन्न वार्षिक सर्टिफिकेट कोर्स का संचालन दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के संयुक्त तत्त्वावधान में अनेकों वर्ष से चल रहा है। इसी क्रम में वर्तमान सन् 2026 से विश्वविद्यालय के द्वारा स्नातक की शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों के लिए एक विषय जैनधर्म का भी इन पुस्तकों के आधार पर पढ़ाया जाना निर्धारित किया गया है, जो जैनधर्म के प्रति विश्वविद्यालय की एक अनुकरणीय पहल है।

ऐसे कोर्स का अध्ययन करके जहाँ विश्वविद्यालय जैनधर्म और संस्कृति के प्रति अपने कुछ कर्तव्य निभा सकेगा, वहीं पढ़ने वाले विद्यार्थीगण भी जैनधर्म के प्रचार-प्रसार और उसके सिद्धान्तों के संरक्षण, संवर्धन एवं विकास में अपनी महती भूमिकाएँ अदा करेंगे, ऐसी आशाओं के साथ इस शिक्षा क्षेत्र से जुड़ने वाले सभी महानुभावों एवं छात्र-छात्राओं के प्रति उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामनाएँ हैं।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित स्नातक एवं स्नातकोत्तरीय शिक्षण हेतु जैनधर्म की विभिन्न विषयक पुस्तकें

-स्नातक हेतु-

प्रथम वर्ष-

(1) जैन दर्शन और संस्कृति का इतिहास
(2) जैन तत्त्व विद्या

द्वितीय वर्ष-

(1) जैन आचार संहिता
(2) जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्त

तृतीय वर्ष-

(1) जैनागम में न्याय
(2) जैनधर्म का वैज्ञानिक स्वरूप

-स्नातकोत्तर हेतु-

प्रथम वर्ष-

(1) जैनधर्म और संस्कृति का इतिहास
(2) भारतीय संस्कृति के उन्नयन में जैन आचरण की भूमिका
(3) कर्म सिद्धान्त एवं ध्यान साधना
(4) जैनधर्म एवं न्यायमीमांसा

द्वितीय वर्ष-

(1) तीर्थंकर महावीर दिव्यध्वनि सार (चार अनुयोगों में निबद्ध जिनागम)
(2) जिनागम दर्पण
(3) अहिंसा, अनेकांत एवं जैनदर्शन के कतिपय प्रमुख विषय
(4) जैनदर्शन के संदर्भ में विभिन्न दृष्टिकोण

विषयानुक्रमणिका

पाठ	पृष्ठ संख्या
इकाई 1—जैन धर्म एवं उसकी प्राचीनता	**5-38**
पाठ–1 धर्म और दर्शन	5–9
पाठ–2 णमोकार मंत्र	10–20
पाठ–3 जैनधर्म की प्राचीनता	21–24
पाठ–4 कालचक्र	25–30
पाठ–5 कुलकर (मनु): एक समाज व्यवस्थापक	31–35
पाठ–6 महापुरुष (शलाका पुरुष व अन्य)	36–38
इकाई 2—जैन तीर्थंकरों की शाश्वत परम्परा	**39-73**
पाठ–1 शाश्वत तीर्थंकर परम्परा	39–58
पाठ–2 आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव	59–68
पाठ–3 तीर्थंकर नेमिनाथ	69–71
पाठ–4 तीर्थंकर पार्श्वनाथ	72–73
इकाई 3—भगवान महावीर और उनकी उत्तरवर्ती परम्परा	**74-89**
पाठ–1 अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर	74–76
पाठ–2 भगवान महावीर के समकालीन धर्म सम्प्रदाय	77–78
पाठ–3 गणधर एवं प्रमुख आचार्य	79–83
पाठ–4 दिगम्बर–श्वेताम्बर परम्परा में भगवान महावीर	84–89
इकाई 4—जैन साहित्य	**90-107**
पाठ–1 जैनागम	90–99
पाठ–2 जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	100–107
इकाई 5—जैन संस्कृति	**108-145**
पाठ–1 जैन संस्कृति की विशेषताएँ	108–112
पाठ–2 जैन कला और पुरातत्व	113–117
पाठ–3 जैन पर्व	118–122
पाठ–4 प्रमुख जैन तीर्थक्षेत्र	123–142
पाठ–5 विदेशों में जैनधर्म	143–145

इकाई–1 जैन धर्म एवं उसकी प्राचीनता
(Jain Dharma and It's Antiquity)

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है-

(1) धर्म और दर्शन

(2) णमोकार मंत्र

(3) जैनधर्म की प्राचीनता

(4) कालचक्र

(5) कुलकर (मनु): एक समाज व्यवस्थापक

(6) महापुरुष (शलाका पुरुष व अन्य)

पाठ-1—धर्म और दर्शन (Religion and Philosophy)

1.1 भारत एक धर्म प्रधान देश है। आदिकाल से ही यहाँ के अनेक तत्त्व चिंतकों ने जीवन और जगत् के संबंधों को पहचाना है। उसके रहस्य को समझा है। व्यक्ति के सुख–दुःख, लाभ–हानि, जीवन–मरण, संयोग–वियोग के कारणों पर उनका ध्यान गया। उन्होंने व्यक्ति के राग द्वेषादिक द्वंदों तथा उसके जन्म और मृत्यु के चक्र से ऊपर उठने के मार्ग की गवेषणा की है। जिस प्रकार अपने दीर्घकालीन जीवन के अनेक प्रयोगों के बाद कोई निष्पत्ति वैज्ञानिकों के हाथ लगती है, वे वस्तु की तह में जाकर उसके मर्म को पकड़ते हैं, तब उन्हें कोई सूत्र मिलता है। ठीक उसी तरह ऐहिक चिन्ताओं से मुक्त तत्त्व दृष्टाओं ने अपनी आत्मा के अंतर्मंथन से जो नवनीत प्राप्त किया है, धर्म उसकी ही अभिव्यक्ति है। उसी के निरूपण के लिए विविध दर्शनों की उद्भूति हुई है। 'दर्शन' का अर्थ होता है 'दृष्टि'। दर्शन विभिन्न दृष्टि बिन्दुओं के वैचारिक पक्ष का नाम है, जबकि धर्म उसके आचारात्मक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है। आत्मा क्या है ? परलोक क्या है ? विश्व क्या है ? ईश्वर क्या है ? आदि जिज्ञासाओं का समाधान दर्शन से ही किया जाता है। दर्शन के ही माध्यम से जीवात्मा अपनी अनंत शक्ति को पहचानकर परमात्मा दशा को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है। यद्यपि धर्म और दर्शन अलग–अलग हैं, फिर भी इन दोनों में परस्पर घनिष्ठ संबंध है। विचारों का प्रभाव मनुष्य के आचरण पर अवश्य पड़ता है तथा व्यक्ति का आचार ही व्यक्ति के विचारों को अभिव्यक्ति दे सकता है। आचार के बिना विचार साकार रूप ग्रहण नहीं कर सकता। एक–दूसरे के अभाव में दोनों अधूरे और एकांगी हैं। व्यक्ति के आचार और विचारों का सम्यक् समायोजन ही धर्म का परम ध्येय है।

आचार और विचार की इसी अन्योन्याश्रिता को दृष्टिगत रखते हुए भारतीय तत्त्व चिंतकों ने धर्म और दर्शन का साथ–साथ प्रतिपादन किया है। उन्होंने एक ओर जहाँ तत्त्वज्ञान की प्ररूपणा कर दर्शन की प्रस्थापना की है तो वहीं दूसरी ओर आचार शास्त्रों का निरूपण कर साधना का मार्ग प्रशस्त किया है। भारतीय परम्परा में आचार को धर्म तथा विचार को दर्शन कहा गया है। जब मानव विचारों के गर्भ में प्रवेश करता है तब दर्शन जन्म लेता है तथा जब विचारों को आचरण में ढालता है, तब धर्म प्रकट होता है। धर्म तथा दर्शन परस्पर पूरक है। एक के बिना दूसरा एकांगी और अपूर्ण है। दर्शनरहित आचरण अंधा है। जिस आचरण में विवेक की जगमगाती ज्योति नहीं है वह सही और गलत की अंध गलियों में भटकता रहेगा। आचार का मार्गदर्शक विचार है। विचार ही आचार को सन्मार्ग पर चलाता है। दूसरी ओर आचार–रहित विचार पंगु है। मुक्ति के साधना पथ पर आचार रहित साधक आगे नहीं बढ़ सकता। दीपक के बारे में विद्वत् चर्चा से प्रकाश प्रगट नहीं होता, प्रकाश तो दीप जलाने की क्रिया (आचरण) से ही प्रगट होता है। इस तरह आचार रहित विचार और विचाररहित आचार दोनों ही निरर्थक हैं। दोनों का समन्वय ही सच्ची धर्म साधना है जिसके द्वारा मुक्ति की मंजिल प्राप्त की जा सकती है।

1.2 जैन दर्शन (Jain Philosophy)

जिसके द्वारा देखा जावे अर्थात् जीवन व जीवन-विकास का ज्ञान प्राप्त किया जावे, उसे दर्शन (Philosophy) कहते हैं। युक्तिपूर्वक तत्त्व-ज्ञान को प्राप्त करने के प्रयत्न को ही दर्शन कहते हैं। दर्शन में आत्मा, परलोक, विश्व, ईश्वर आदि गूढ़ विषयों को समझने का प्रयत्न किया जाता है। धर्म में आत्मा को परमात्मा बनने का मार्ग बताया जाता है। धर्म प्रवर्तकों ने केवल आचार-रूप धर्म का ही उपयोग नहीं किया है, अपितु स्वभाव-रूप धर्म का भी उपदेश दिया है, जिसे दर्शन कहा जाता है।

जिनेन्द्र भगवान के द्वारा प्रतिपादित दर्शन ही जैन दर्शन है। छः द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ आदि का इसमें मुख्यतया वर्णन है। जैन धर्म आत्मा, परमात्मा व पुनर्जन्म में विश्वास करता है।

यद्यपि दर्शन और धर्म (वस्तु स्वभाव-आचार-रूप धर्म) दोनों अलग अलग विषय हैं, फिर भी दोनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह सर्वविदित है कि विचार के अनुसार ही मनुष्य का आचार भी होता है। जैसे जो व्यक्ति आत्मा, परलोक और पुनर्जन्म को नहीं मानता है, उसकी प्रवृत्ति व आचार भोगवादी होगा और जो इन्हें मानता है, उसकी प्रवृत्ति और आचार इसके विपरीत (निवृत्ति की ओर) होगा। इस प्रकार विचारों का प्रभाव मनुष्य के आचार पर गहरा पड़ता है। अतः दर्शन का प्रभाव धर्म पर भी गहरा पड़ता है और एक को समझे बिना दूसरे को समझा नहीं जा सकता है। जैन धर्म भी एक दर्शन है। चूँकि वह वस्तु स्वभाव-रूप धर्म में ही अन्तर्भूत हो जाता है, अतः उसे भी हम धर्म का ही एक अंग समझते हैं। अतः जैन दर्शन से अभिप्राय ''जिन'' द्वारा कहे गये विचार और आचार दोनों ही लेना चाहिए।

1.3 जैन दर्शन की विशेषताएँ (Characteristics of Jain Philosophy)-

जैन दर्शन के मूल सिद्धान्त अनेकान्तवाद, स्याद्वाद, अहिंसा, अपरिग्रह, छः द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ आदि हैं। इनका विवरण आगे यथास्थान दिया गया है। लेकिन जैन दर्शन की कुछ अन्य विषेशताओं का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है:-

ईश्वर सृष्टि का कर्ता-हर्ता नहीं (God is not the Creator or the Destructor of the Universe)-

जैन धर्म ईश्वर की सत्ता को तो स्वीकार करता है, मगर अन्य धर्मों की भाँति ईश्वर को इस सृष्टि का बनाने वाला (कर्ता), पालने वाला (पालक) और नाश करने वाला (हर्ता) नहीं मानता है। जो आत्मा मोक्ष प्राप्त करके लोक के शिखर पर विराजमान होकर अनन्त सुख भोग रही है, वे ही जैन धर्म के अनुसार ईश्वर, भगवान, सिद्ध आदि नामों से जाने जाते हैं। ये किसी भी कार्य के कर्ता या हर्ता नहीं हैं अपितु मात्र ज्ञाता व दृष्टा हैं। इनका अब इस संसार के किसी भी कार्य से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहा है। ये कृतकृत्य हैं अर्थात् कोई भी कार्य इनके करने हेतु बाकी नहीं रहा है। वे किसी का भी हित या अहित नहीं करते हैं। इस प्रकार वे सृष्टि के कर्ता, पालक या हर्ता नहीं हो सकते हैं।

जैन धर्म यह भी नहीं मानता कि किसी दुष्ट व्यक्ति को दण्डित करने तथा सज्जन व्यक्ति की रक्षा करने वाली कोई शक्ति (ईश्वर) होती है। जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक जीव स्वयं के द्वारा किये गये कर्मों के अनुसार ही विभिन्न योनियाँ धारण करता है और सुख.दुःख उठाता है। ऐसी कोई अन्य शक्ति नहीं है जो उसे सुख या दुःख दे सके।

जैन धर्म के अनुसार जीव-अजीव द्रव्य का कर्म-प्रकृति अनुसार एक देश संयोग ही जगत् का कर्ता-हर्ता है। इनके द्वारा संसार अनादि काल से रचा हुआ है। इन्हें किसी ने बनाया नहीं है और संसार में स्वतंत्र हैं। ये ही संसार की सबसे बड़ी ताकतें हैं जो संसार में कार्य कर रही हैं। इनके अलावा अन्य कोई शक्ति नहीं है। जीव-अजीव द्रव्यों का यह खेल अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा।

कर्म सिद्धान्त (Karma Theory)-

जैन धर्म का यह महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। संसारी जीव अनादि काल से कर्मो से संयुक्त है और इन कर्मों के कारण जन्म-मरण के चक्र में फंसा हुआ है। जब पूर्व में बँधे कर्म उदय में आते हैं तो जीव उनके फल को समतापूर्वक नहीं

सहता है और उसके परिणाम राग-द्वेषरूप होते हैं, जिससे नये कर्म बँधते हैं। कर्मों के बँधने से गतियों में जन्म लेता है और जन्म लेने पर शरीर मिलता है। शरीर में इन्द्रियां होती हैं जो अपने विषयों को ग्रहण करती हैं। विषयों के ग्रहण करने से इष्ट विषयों में राग और अनिष्ट विषयों में द्वेष उत्पन्न होते हैं और फिर रागी-द्वेषी परिणामों से नवीन कर्म बँधते हैं और इस प्रकार कर्म बँधने का यह चक्र चलता ही रहता है। यह चक्र अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। यदि जीव ऐसे सार्थक प्रयास करके आत्मा के साथ बँधे कर्मों का सर्वथा नाश (अभाव) कर देता है, तो उसे शुद्ध अवस्था प्राप्त हो सकती है, जिसे मोक्ष कहा जाता है। जीव द्वारा मोक्ष प्राप्त करना जैन दर्शन का सर्वोच्च लक्ष्य है।

जीव द्वारा मन-वचन-काय से की गई क्रियाओं से प्रभावित होकर कुछ पुद्गल वर्गणा जीव के प्रदेशों में प्रवेश करती हैं। यह बात केवल जैन दर्शन में ही है, अन्य दर्शनों में नहीं है। जैन धर्म कर्म-सिद्धान्त पर ही टिका हुआ है। जैन धर्म प्रत्येक जीव के कर्मों को ही उसका विधाता मानता है। जब तक ये कर्म जीव के साथ लगे हुए हैं, वह जीव संसार में विभिन्न योनियों में भ्रमण करता रहता है और सुख-दुःख उठाता है। अन्य धर्मों में भी कर्मों की प्रधानता को माना गया है। तुलसीदास जी ने भी इसी सिद्धान्त को स्वीकारा है-

''कर्म प्रधान विश्व करि राखा ।
जो जस करहिं, सो तस फल चाखा ।।''

जीव इन कर्मों का नाश करके अपने को कर्मों से सर्वथा मुक्त कर लेता है तो वही जीव परमात्मा (ईश्वर) बन जाता है। इस प्रकार जैन दर्शन इस कर्म सिद्धान्त के माध्यम से आत्मा से परमात्मा बनने की कला सिखाता है। प्रत्येक जीव अपने आत्म-पुरुषार्थ से आत्मा की इस परम विशुद्ध अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

पुनर्जन्म (Rebirth)-

जैन धर्म पुनर्जन्म में विश्वास करता है। जैन धर्म के अनुसार जब तक जीव कर्मों से मुक्त नहीं हो जाता है, अर्थात् मोक्ष प्राप्त नहीं कर लेता है, तब तक उसका पुनः-पुनः जन्म विभिन्न योनियों में होता रहता है। मोक्ष पद प्राप्त करने के पश्चात् उस जीव का पुनः जन्म नहीं होता है।

आज के वैज्ञानिक युग में पुनर्जन्म के समाचार यदा-कदा प्रकाशित होते रहते हैं। कुछ बच्चे अपने पूर्व जन्म के माता, पिता, पति, गाँव, मित्र आदि के नाम बता देते हैं और सम्बन्धित ग्राम में जाकर उन्हें पहचान भी लेते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि पुनर्जन्म होता है। यह आवश्यक नहीं है कि मनुष्य मर कर मनुष्य गति में ही जन्म ले। वह अपने कर्मों के अनुसार किसी भी गति में जन्म ले सकता है।

मोक्ष मार्ग (Path of Salvation)-

जैन धर्म यह भी सिखलाता है कि पुनः-पुनः जन्म से मुक्ति कैसे प्राप्त हो। इस हेतु जैन आगम में एक सिद्धान्त प्रतिपादित है- ''सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः''। इसके अनुसार सम्यक् रूप से दर्शन, ज्ञान व चारित्र के होने से ही जीव को मुक्ति मिल सकती है और यही मोक्ष का एक मात्र मार्ग है। आत्मा के उद्धार के लिये अन्य कोई रास्ता नहीं है। हिन्दू धर्म में भक्ति मार्ग, ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग अलग-अलग मोक्ष के मार्ग हैं, मगर जैन धर्म में सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकरूपता ही एकमात्र मोक्ष का मार्ग है।

अहिंसा (Non-Violence)-

अहिंसा जैन धर्म का आधार स्तम्भ है। जैन धर्म में प्राणी मात्र के कल्याण की भावना निहित है। जैन धर्म में मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े.मकोड़े के अलावा पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और वनस्पति को भी जीव माना गया है। जैन धर्म के अनुसार इन जीवों को न मारना अहिंसा है। किसी का दिल दुखाना तथा अपने अन्दर राग-द्वेष जनित विकारी भावों की उत्पत्ति को भी हिंसा माना गया है। भगवान महावीर के प्रमुख संदेश ''अहिंसा परमो धर्मः'' तथा ''जीओ और जीने दो'' भी अहिंसा पर आधारित हैं।

काल परिवर्तन (Changes of Time-Cycle)-

जैन धर्म के अनुसार कालचक्र एक बार उत्सर्पिणीरूप और एक बार अवसर्पिणीरूप में परार्वतन करता है और इनमें 24-24 तीर्थंकर होते हैं जिनके द्वारा जैन धर्म प्रकाशित व उपदिष्ट हुआ है। भविष्य में भी इसी प्रकार 24-24 तीर्थंकर होते रहेंगे।

भगवान के पुनः अवतरण की परम्परा नहीं (God does-not Incarnate again)-

अन्य धर्मों की भांति जैन धर्म में अवतार लेने की परम्परा नहीं है। जैन धर्म के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपनी कठोर तप-साधना से भगवान बन सकता है और जो भगवान बन जाता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। इस प्रकार भगवान बनने वाले व्यक्ति (आत्मा) का पुनः भगवान के या अन्य रूप में अवतरित होना संभव ही नहीं है।

देव-शास्त्र-गुरु (Dev-Shastra-Guru or Lord-Scripture-Preceptor)-

जैन धर्म में ऋषियों की परम्परा, उनकी चर्या, धार्मिक साहित्य, तीर्थ, आत्मा व परमात्मा का स्वरूप, मूर्तियों की मुद्रा, उपासना-क्रिया आदि अन्य धर्मों से भिन्न हैं। पूज्य व पूज्यता में भी अन्तर है। जैन धर्म में वीतरागी देव और वीतरागता ही पूज्य है।

इस प्रकार जैन धर्म अन्य धर्मों से भिन्न व स्वतंत्र धर्म है जो अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा।

1.4 जैनधर्म का स्वरूप (What is Jain-Religion)-

जैन शब्द जिन से बना है।

जिन (Jin)-जयति इति जिनः जीतने वाले को जिन कहते हैं। अर्थात् जिन्होंने अपने राग, द्वेष, कामादिक, विकारी भावों को जीत लिया है वह जिन हैं।

धर्म (Dharma)-वस्तु के शुद्ध स्वभाव को धर्म कहते हैं। धरति इति धर्मः जो धारण किया जाये वह धर्म है। (धर्म व्यवस्थित, व्यवहारिक और वैज्ञानिक हो)

जैन धर्म (Jain Religion)-

जैन धर्म दो शब्दों से बना है-जैन और धर्म। जैन से अभिप्राय जिन के उपासक से है। ''कर्मारातीन् जयतीति जिनः'' अर्थात् जिसने काम, क्रोध, मोह आदि अपने विकारी भावों को जीत लिया है, वह ''जिन'' कहलाता है। ''जिनस्य उपासकः जैनः'' अर्थात् 'जिन' के उपासक को जैन कहते हैं। जो व्यक्ति 'जिन' के द्वारा बताये मार्ग पर चलते हैं और उनकी आज्ञा को मानते हैं, वे जैन कहलाते हैं। ऐसे जैन के धर्म को जैन धर्म कहते हैं। यह जैन धर्म का शाब्दिक अर्थ है।

जैन धर्म का एक अन्य अर्थ है-''जिन'' द्वारा कहा गया धर्म। जीवात्मा काम, क्रोध आदि से घिरा होता है। अतः आत्मा के स्वाभाविक गुण (अनन्त ज्ञान, दर्शन सुख, वीर्य) प्रकट नहीं हो पाते हैं। जब जीव अपने पुरुषार्थ से कर्मों की निर्जरा कर देता है तो वही जीव परमात्मा बन जाता है। वह सर्वज्ञ और वीतरागी होता है तथा वह जो भी उपदेश देता है, किसी वर्ग या सम्प्रदाय विशेष के लिये नहीं होता है अपितु प्राणी मात्र के हित के लिये होता है। अतः ऐसे ''जिन्'' (सर्वज्ञ, वीतरागी व हितोपदेशी) द्वारा कहा गया जो धर्म है वही जैन धर्म है। इसे श्रमणधर्म अथवा जिनधर्म भी कहते हैं।

धर्म (Dharma or Religion)-

विभिन्न धर्मों में धर्म की व्याख्या अलग-अलग की गई है। जैन धर्म के अनुसार ''वत्थु सहावो धम्मो'' अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई स्वभाव होता है। जैसे अग्नि का स्वभाव उष्णता है और जल का स्वभाव शीतलता है। प्रत्येक वस्तु अपने मूल स्वभाव को कभी नहीं छोड़ती है। अन्य वस्तु का संयोग पाकर स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है। जब यह संयोग नहीं रहता है तो वह वस्तु अपने मूल स्वभाव में लौट आती है। जैसे पानी का स्वभाव शीतल है। यदि

इसे अग्नि का संयोग प्राप्त हो जावे तो इसके स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है अर्थात् गर्म हो जाता है और जब संयोग समाप्त हो जाता है, तो पानी अपने मूल स्वभाव शीतलता में लौट आता है। इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा है व मूल में शुद्ध है, मगर कर्मों के संयोग से यह अशुद्ध होकर संसार में भ्रमण कर रही है। जब कर्मों का संयोग समाप्त हो जावेगा तो यह आत्मा अपने मूल स्वभाव अर्थात् शुद्धता को प्राप्त कर लेगी और सिद्धालय में विराजमान हो जावेगी।

"खमादिभावो य दसविहो धम्मो" अर्थात् क्षमा आदि 10 भावों को भी धर्म कहते हैं। क्षमा आदि दस भावों से ही शुद्धात्म स्वभाव को जानकर उससे लिप्त वैभाविक परिणामों (विभाव) से मुक्त हो पाते हैं। इसलिये क्षमा आदि दस भाव धर्म हैं।

"उत्तमे सुखे धरतीति धर्मः" अर्थात् धर्म वही है जो उत्तम सुख (मोक्ष) में पहुँचा दे। आचार्य समंतभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा भी है-

"देशयामि समीचीनं धर्मं कर्म निवर्हणम् ।
संसार दुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ।।"

अर्थात् प्राणियों को सांसारिक दुःख से छुड़ाकर उत्तम सुख में पहुँचाने वाला धर्म ही "समीचीन धर्म" है।

"चारित्तं खलु धम्मो" चारित्र को भी धर्म कहा गया है। चारित्र को निश्चय से धर्म कहा है क्योंकि चारित्र धारण किये बिना आत्मा से बद्ध पुद्गल कर्मों की निर्जरा सम्भव नहीं है। चारित्र भाव से क्रियात्मक होना चाहिए अर्थात् शुद्ध भाव पूर्वक आचरण में महाव्रत रूप लेना आवश्यक है। आचार्य कुन्दकुन्द ने 'प्रवचनसार' में "चारित्तं खलु धम्मो" से यही निर्देशित किया है।

इस प्रकार धर्म शब्द से दो अर्थों का बोध होता है। एक वस्तु का स्वभाव और दूसरा चारित्र या आचार का । संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसका कोई स्वभाव नहीं हो। जबकि चारित्र केवल चैतन्य आत्मा में ही पाया जाता है। इस प्रकार धर्म का सम्बन्ध आत्मा से है।

वास्तव में धर्म तो वस्तु का स्वभाव ही है और उसकी प्राप्ति के कारणों को भी कथंचित् धर्म कहा जाता है, क्योंकि कारण के बिना कार्य की निष्पत्ति नहीं होती है।

धर्म एक ऐसा विज्ञान है जिसके माध्यम से मानव अपनी चेतना को, मन को केन्द्रित करता है, व्यवस्थित करता है। धर्म के माध्यम से मानव अपने विक्षिप्त मन को शांत करता है और आत्मा में शांति का अनुभव करता है। धर्म प्राणियों को उत्तम सुख में पहुँचाता है।

1.5 धर्म दो प्रकार का होता है (Dharma is of two types)-

(1) व्यवहार धर्म (Practical Dharma)-दान, जप, तप, त्याग आदि व्यवहार धर्म है। अणुव्रत धारण करना व्यवहार धर्म है। पूजा-उपासना करना धर्म का साधन मात्र है। हिंसा नहीं करना, चोरी नहीं करना, झूठ नहीं बोलना आदि भी व्यवहार धर्म है। यह निश्चय धर्म का कारण है।

(2) निश्चय धर्म (Absolute or Ideal Dharma)-परिणामों (भावों) की निर्मलता, समता या वीतरागता निश्चय धर्म है। निश्चय धर्म का सम्बन्ध आत्मा से है, उसकी सुख-शांति से है, वह कषाय मुक्ति स्वरूप है। जितनी मात्रा में कषाय मुक्ति होगी, उतनी मात्रा में समता भाव होकर आत्मिक सुख-शांति भी अवश्य मिलेगी। यह निश्चय धर्म है। व्यवहार धर्म पालने से निश्चय धर्म की प्राप्ति होती है और निश्चय-धर्म मोक्ष का कारण है।

1.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-जैनदर्शन की परिभाषा बताइए ?

प्रश्न 2-जैनदर्शन के मूल सिद्धान्त क्या हैं ?

प्रश्न 3-जैन दर्शन की क्या-क्या विशेषताएँ हैं ?

प्रश्न 4-रत्नकरण्ड श्रावकाचार के अनुसार धर्म की परिभाषा बताइए ?

पाठ-2—णमोकार मंत्र (Namokar Mantra)

2.1 जैनधर्म में व्यक्ति पूजा का नहीं, गुण पूजा का महत्व है। गुणों की पूजा को भी प्रश्रय इसलिए दिया गया है, ताकि वे गुण हमें प्राप्त हो जाये। गुण पूजा का प्रतीक णमोकार महामंत्र है। यह मंत्र किसी ने बनाया नहीं है बल्कि सदा से इसी रूप में चला आ रहा है। इसलिए इसे अनादि कहा जाता है। इसी मंत्र से संसार के सब मंत्रों की उत्पत्ति हुई है और यह बीजाक्षरों का जन्मस्थल है। यह महामंत्र इस प्रकार है।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

क्र-	पद	अक्षर	मात्रा	स्वर	व्यंजन
1	णमो अरिहंताणं	7	11	6	6
2	णमो सिद्धाणं	5	9	5	5
3	णमो आइरियाणं	7	11	7	5
4	णमो उवज्झायाणं	7	12	7	6
5	णमो लोए सव्वसाहूणं	9	15	9	8
	योग	35	58	34	30

यह मंत्र प्राकृत भाषा में है और इसकी रचना ''आर्या'' छन्द में है। इस मंत्र के अंतिम पद में ''लोए'' और ''सव्व'' शब्दों का उपयोग हुआ है। ये शब्द ''अन्त्यदीपक'' हैं। ''अन्त्य'' का अर्थ अन्त में और ''दीपक'' का अर्थ प्रकाशित करना होता है। जिस प्रकार प्रज्वलित दीपक को अन्य वस्तुओं के अन्त में रख देने से वह दीपक पूर्व में रखी सभी वस्तुओं को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए अर्थात् इन शब्दों को सम्पूर्ण क्षेत्र में रहने वाले त्रिकालवर्ती अरिहन्त आदि देवताओं को नमस्कार करने के लिये उन्हें प्रत्येक पद के साथ जोड़ लेना चाहिए। इस प्रकार इस मंत्र का अर्थ निम्नानुसार होता है–

लोक में सब अरिहन्तों को नमस्कार हो।
लोक में सब सिद्धों को नमस्कार हो।
लोक में सब आचार्यों को नमस्कार हो।
लोक में सब उपाध्यायों को नमस्कार हो।
लोक में सब साधुओं को नमस्कार हो।

णमोकार मंत्र का किसी भी अवस्था में कहीं भी स्मरण किया जा सकता है क्योंकि यह मंगलकारक है और सभी मंगलों में प्रथम मंगल है। फिर भी प्रातः जागते ही, रात्रि को सोने से पूर्व तथा मन्दिरजी में इसका पठन–स्मरण अवश्य करना चाहिए। श्रावक की दिनचर्या में सबसे पहला कर्तव्य नमस्कार मंत्र का स्मरण करना बतलाया है–

''ब्रह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् परमेष्ठि-स्तुतिं पठेत्''

अर्थात् प्रातः ब्रह्म–मुहूर्त में उठकर परम मंगल के लिये नमस्कार मंत्र का स्मरण करें। यात्रा शुरू करने, भोजन के प्रारम्भ करने व समाप्त करने आदि के समय भी प्रायः इस मंत्र का स्मरण किया जाता है। मुनि भी इस मंत्र का जाप करते हैं।

नमन का वास्तविक भाव (Actual Meaning of *Naman* or Greetings)–

केवल नमस्कार मंत्र को बोलना अथवा नमस्कार करना सही अर्थों में नमन नहीं है। पाँचों परमेष्ठियों के स्वरूप

को समझकर उनके गुण चिन्तन करते हुए मन में जो समर्पण भाव उत्पन्न होता है वही वास्तविक नमन है। श्रद्धा इस मंत्र का मूल प्रवाह है। यह मंत्र ''णमो'' से शुरू होता है और ''णमो'' अहंकार का विसर्जन है। जो व्यक्ति नमस्कार करता है, समर्पण भाव रखता है, उसके अहंकार को कोई स्थान नहीं रहता है।

जो भी शब्द हम बोलते हैं उससे वातावरण में प्रकम्पन पैदा होता है और उसकी तरंगें हमें बहुत प्रभावित करती हैं। अतः साधक को मंत्र के शब्दों का सही चयन, अर्थ का बोध, शुद्ध उच्चारण और श्रद्धा भावना का योग करना होता है, तभी मंत्र का तदनुसार प्रकम्पन प्रभावशाली और लाभदायक होता है। नमस्कार मंत्र ऐसा मंत्र है जिसमें शब्दों का शक्तिशाली चयन है। इस मंत्र का निश्चित ध्वनि से एकाग्रतापूर्वक जप करने से यह अधिक प्रभावशाली हो सकता है और इसके चिन्तन से आत्मशुद्धि होती है। अतः इसका शुद्ध उच्चारण अपरिहार्य है।

2.2 अरिहंत को पहिले नमस्कार क्यों ? (Why Arihantas are Greeted First)-

इस मंत्र में सर्वप्रथम ''अरिहन्त'' को नमस्कार किया गया है जबकि पंच परमेष्ठी में सबसे ऊँचा स्थान ''सिद्धों'' का है। इसका कारण यह है कि संसार सागर को पार करने का दिव्य उपदेश जीवों को अरिहन्त द्वारा ही दिया जाता है, ''सिद्धों'' द्वारा नहीं। चूँकि ''अरिहन्त'' की कृपा से ही हमें ज्ञान की प्राप्ति होती है और जग का कल्याण होता है, अतः उनके उपकार के अनुरूप सर्वप्रथम ''अरिहन्त'' को नमस्कार करना युक्तिसंगत है।

इसके अतिरिक्त परमात्मा की दो अवस्थाएँ होती हैं-अरिहन्त और सिद्ध। अतः पहली अवस्था को पूर्व में और दूसरी अवस्था को बाद में नमस्कार किया गया है।

णमोकार मंत्र के विभिन्न नाम (Various names of Namokar Mantra)-

णमोकार मंत्र प्राकृत भाषा का मंत्र है। प्राकृत में इसे णमोकार मंत्र कहते हैं। संस्कृत में इसे नमस्कार मंत्र कहते हैं। हिन्दी में इसी का अपभ्रंश नाम नवकार मंत्र है।

इस मंत्र के अनेक नाम हैं। इनमें प्रमुख हैं-पंच नमस्कार मंत्र, महामंत्र, अपराजित मंत्र, मूलमंत्र, मंत्रराज, अनादिनिधन मंत्र, मंगल मंत्र आदि। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

(1) **पंच नमस्कार मंत्र-**जो परम पद (मोक्ष) प्राप्त कर चुके हैं अथवा उस मार्ग पर अग्रसर हैं, ऐसे पांच परमेष्ठियों को इस मंत्र में नमस्कार किया गया है, अतः इसे पंच नमस्कार मंत्र कहते हैं।

(2) **महामंत्र-अपराजित मंत्र-**तीनों लोकों में इस मंत्र के समान कोई मंत्र नहीं है। आचार्य उमास्वामी ने णमोकार मंत्र स्तोत्र में कहा है कि तराजू के एक पलड़े में णमोकार मंत्र और दूसरे में तीन लोक रख दें तो णमोकार मंत्र वाला पलड़ा ही भारी रहेगा। अतः इसे महामंत्र अथवा अपराजित मंत्र भी कहते हैं।

(3) **मूलमंत्र-मंत्रराज-**यह मंत्र संसार के सभी मंत्रों का जनक (मूल) है। इससे 84 लाख मंत्रों की उत्पत्ति हुई है। अतः इसे मूल मंत्र अथवा मंत्रराज भी कहते हैं।

(4) **अनादि निधन मंत्र-**पांचों परमेष्ठी अनन्त काल से होते आ रहे हैं और भविष्य में भी अनन्त काल तक होते रहेंगे। इस प्रकार इनका आदि भी नहीं है और अन्त भी नहीं है। इस मंत्र को किसी ने बनाया नहीं है और न यह कभी नष्ट होगा। अतः यह अनादि-निधन मंत्र कहलाता है। वर्तमान काल की अपेक्षा से आचार्य भूतबलि और पुष्पदन्त ने इस मंत्र को जैनधर्म के महान् ग्रन्थ 'षट्खण्डागम' में सर्व प्रथम प्राकृत भाषा में लिपिबद्ध किया।

(5) **मंगल मंत्र-**यह मंत्र पापों का नाश करने वाला व मंगल करने वाला है।

2.3 णमोकार मंत्र का माहात्म्य (Significance of Namokar Mantra)-

''एसो पंच णमोयारो सव्व-पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवई मंगलं ।।''

यह पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला है और समस्त मंगलों में पहला मंगल है।

मंत्र की विशेषताएँ (Characteristics of Mantra)-

(1) इस मंत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें किसी विशेष व्यक्ति या देवी-देवता को नमस्कार नहीं किया है। जिन्होंने तप-ध्यान करके अपनी आत्मा का कल्याण किया है और परमेष्ठी पद प्राप्त किया है अथवा इस हेतु प्रयासरत रहे हैं अथवा प्रयासरत हैं, ऐसे सभी महापुरुषों को नमस्कार किया गया है।

(2) यह मंत्र किसी धर्म, सम्प्रदाय अथवा जाति विशेष से सम्बन्ध नहीं रखता है। सभी प्राणी चाहे वे किसी भी जाति, संप्रदाय, धर्म, देश के हों अथवा गरीब हों, अमीर हों, इस मंत्र के द्वारा अपना कल्याण कर सकते हैं।

(3) इस मंत्र की एक विशेषता यह भी है कि इसमें किसी प्रकार की याचना नहीं की गई है। केवल नि:स्वार्थ भाव से पंच परमेष्ठी के प्रति भक्तिभाव प्रकट किया गया है। अन्य मंत्रों में कोई न कोई चाहना (इच्छा) प्राय: की जाती है। जैसे "सर्वशांतिं कुरु-कुरु स्वाहा"। इसमें भी शांति की याचना की गई है। यद्यपि यह सार्वजनिक हित के लिये याचना है फिर भी याचना तो की ही गई है। मगर णमोकार मंत्र में किसी से भी किसी भी प्रकार की प्रत्यक्ष या परोक्ष याचना नहीं की गई है।

(4) णमोकार मंत्र को किसी भी स्थान व स्थिति आदि में जपा जा सकता है। चाहे वह स्थान पवित्र हो, अपवित्र हो, चाहे व्यक्ति गतिमान हो या स्थिर हो, खड़ा हो या बैठा हो, सभी स्थितियों में यह मंत्र जपा जा सकता है।

णमोकार मंत्र को पूर्ण श्रद्धा के साथ जपने से यह बहुत ही फलदायक है। अत: आवश्यकता इसी बात की है कि हमें इस मंत्र पर पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिए। राजकुमार जीवंधर ने मरणासन्न कुत्ते को यह मन्त्र सुनाया तो कुत्ते का जीव सुदर्शन नामक यक्षेन्द्र हुआ। पद्मरुचि सेठ ने मरणासन्न बैल को णमोकार मंत्र सुनाया जिसके प्रभाव से वह वृषभध्वज राजकुमार बना। कुछ भव पश्चात् ये दोनों क्रमश: राम और सुग्रीव बने। जिनदत्त सेठ के वचनों को प्रमाणित मानकर अंजन चोर ने परोक्ष रूप से इस मंत्र पर श्रद्धान किया तो उसे आकाशगामिनी विद्या प्राप्त हुई और अंजन से निरंजन बना।

इस मंत्र का कभी अपमान नहीं करना चाहिए। इस मंत्र का अपमान दु:खदायी होता है। सुभौम चक्रवर्ती ने अपने प्राणों की रक्षार्थ णमोकार मंत्र को समुद्र के पानी पर लिखकर अपने पैरों से मिटाकर अपमान किया तो व्यन्तर देव ने उसे लवण समुद्र में डुबो दिया और वह मरकर सातवें नरक में चला गया।

"आचार्यों ने द्वादशांग जिनवाणी का वर्णन करते हुए प्रत्येक की पदसंख्या तथा समस्त श्रुतज्ञान अक्षरों की संख्या का वर्णन किया है। इस महामंत्र में समस्त श्रुतज्ञान विद्यमान है क्योंकि पंचपरमेष्ठी के अतिरिक्त अन्य श्रुतज्ञान कुछ नहीं है। अत: यह महामंत्र समस्त द्वादशांग जिनवाणीरूप है।"

2.4 महामंत्र के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष—

इस मंत्र में 5 पद और 35 अक्षर हैं। णमो अरिहंताणं=7 अक्षर, णमो सिद्धाणं=5, णमो आइरियाणं=7, णमो उवज्झायाणं=7, णमो लोए सव्वसाहूणं= 9 अक्षर, इस प्रकार इस मंत्र में कुल 35 अक्षर हैं। स्वर और व्यंजनों का विश्लेषण करने पर ऐसा प्रतीत होता है—

यथा—

ण्+अ+म्+ओ+अ+र्+इ+ह्+अं+त्+आ+ण्+अं।

ण्+अ+म्+ओ+स्+इ+द्+ध्+आ+ण्+अं।

ण्+अ+म्+ओ+आ+इ+र्+इ+य्+आ+ण्+अं।

ण्+अ+म्+ओ+उ+व्+अ+ज्+झ्+आ+य्+आ+ण्+अं।

ण्+अ+म्+ओ+ल्+ओ+ए+स्+अ+व्+व्+अ+स्+आ+ह्+ऊ+ण्+अं।

इस तरह प्रथम पद में 6 व्यंजन, 6 स्वर, द्वितीय पद में 6 व्यंजन, 5 स्वर, तृतीय पद में 5 व्यंजन, 7 स्वर, चतुर्थ पद में 6 व्यंजन, 7 स्वर, पंचम पद में 8 व्यंजन, 9 स्वर हैं। इस मंत्र में सभी वर्ण अजंत हैं, यहाँ हलन्त एक भी वर्ण नहीं है। अतः 35 अक्षरों में 35 स्वर और 30 व्यंजन होना चाहिए था किन्तु यहाँ स्वर 34 हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि 'णमो अरिहंताणं' इस पद में 6 ही स्वर माने जाते हैं। मंत्रशास्त्र के व्याकरण के अनुसार 'णमो अरिहंताणं' पद के 'अ' का लोप हो जाता है। यद्यपि प्राकृत में 'एङः'-नेत्यनुवर्तते। एङित्येदोतौ। एदोतोः संस्कृतोक्तः संधिः प्राकृते तु न भवति। यथा देवो अहिणंदणो, अहो अच्चरिअं, इत्यादि। सूत्र के अनुसार संधि न होने से 'अ' का अस्तित्व ज्यों का त्यों रहता है। 'अ' का लोप या खंडाकार नहीं होता है, किन्तु मंत्रशास्त्र में 'बहुलम्' सूत्र की प्रवृत्ति मानकर 'स्वरयोरव्यवधाने प्रकृतिभावो लोपो वैकस्य।[2] इस सूत्र के अनुसार 'अरिहंताणं' वाले पद के 'अ' का लोप विकल्प से हो जाता है अतः इस पद में 6 ही स्वर माने जाते हैं। अतः मंत्र में कुल 35 अक्षर होने पर भी 34 ही स्वर माने जाते हैं। इनमें जो द्धा, ज्झा, व्व से संयुक्ताक्षर हैं, उनमें से एक-एक व्यंजन लेने से 30 व्यंजन होते हैं। इस प्रकार से कुल स्वर और व्यंजनों की संख्या 34+30=64 है। मूल वर्णों की संख्या भी 64 ही है। प्राकृत भाषा के नियमानुसार अ, इ, उ और ए मूल स्वर तथा ज झ ण त द ध य र ल व स और ह ये मूल व्यंजन इस मंत्र में निहित हैं। अतएव 64 अनादि मूलवर्णों को लेकर समस्त श्रुत-ज्ञान के अक्षरों का प्रमाण निम्न प्रकार निकाला जा सकता है। गाथा सूत्र निम्न प्रकार है—

चउसट्ठिपदं विरलिय दुगं च दाऊण संगुणं किच्चा।
रूऊणं च कए पुण सुदणाणस्सक्खरा होंति।।

अर्थ — उक्त चौंसठ अक्षरों का विरलन करके प्रत्येक के ऊपर दो का अंक देकर परस्पर सम्पूर्ण दो के अंकों का गुणा करने से लब्ध राशि में एक घटा देने से जो प्रमाण रहता है, उतने ही श्रुतज्ञान के अक्षर होते हैं।

इस नियम से गुणाकार करने पर—

एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता।
सुण्णं णव पण पंच य एक्कं छक्केक्कगो य पणयं च।।

अर्थात् एक आठ चार-चार-छह-सात-चार-चार-शून्य-सात-तीन-सात-शून्य-नौ-पाँच-पाँच-एक-छह-एक-पाँच, यह संख्या आती है। इस गाथा सूत्र के अनुसार 18446744073709551615 ये समस्त श्रुतज्ञान के अक्षर होते हैं।

इस प्रकार णमोकार मंत्र में समस्त श्रुतज्ञान के अक्षर निहित हैं, क्योंकि अनादिनिधन मूलाक्षरों पर से ही उक्त प्रमाण निकाला गया है अतः संक्षेप में समस्त जिनवाणीरूप यह मंत्र है। इसका पाठ या स्मरण करने से कितना महान् पुण्य का बंध होता है तथा केवलज्ञान लक्ष्मी की प्राप्ति भी इस मंत्र की आराधना से होती है। ज्ञानार्णव में श्री शुभचन्द्राचार्य ने इस मंत्र की आराधना को बताते हुए लिखा है—

''इस लोक में जितने भी योगियों ने मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त किया है, उन सबने श्रुतज्ञानभूत इस महामंत्र की आराधना करके ही प्राप्त किया है। इस महामंत्र का प्रभाव योगियों के अगोचर है। फिर भी जो इसके महत्व से अनभिज्ञ होकर वर्णन करना चाहता है, मैं समझता हूँ कि वह वायुरोग से व्याप्त होकर ही बक रहा है। पापरूपी पंक से संयुत भी जीव यदि शुद्ध हुए हैं, तो इस मंत्र के प्रभाव से ही शुद्ध हुए हैं। मनीषीजन भी मंत्र के प्रभाव से ही संसार के क्लेश से छूटते हैं।''

इसलिए इस महामंत्र की महिमा को अचिन्त्य ही समझना चाहिए।

अयं महामंत्रः मंगलाचरणरूपेणात्र संग्रहीतोऽपि अनादिनिधनः, न तु केनापि रचितो ग्रथितो वा।

उक्तं च णमोकारमंत्रकल्पे श्रीसकलकीर्तिभट्टारकैः—

महापंचगुरोर्नाम, नमस्कारसुसम्भवम्।
महामंत्रं जगज्जेष्ठ-मनादिसिद्धमादिदम्।।63।।
महापंचगुरूणां च, पंचत्रिंशदक्षरप्रमम्।
उच्छ्वासैस्त्रिभिरेकाग्र-चेतसा भवहानये।।68।।

श्रीमदुमास्वामिनापि प्रोक्तम्—

ये केचनापि सुषमाद्यरका अनन्ता, उत्सर्पिणी-प्रभृतयः प्रययुर्विवर्ताः।
तेष्वप्ययं परतरः प्रथितप्रभावो, लब्ध्वामुमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः।।3।।

अथवा द्रव्यार्थिकनयापेक्षयानादिप्रवाहरूपेणागतोऽयं महामंत्रोऽनादिः, पर्यायार्थिकनयापेक्षया हुंडावसर्पिणीकालदोषापेक्षया तृतीयकालस्यान्ते तीर्थंकरदिव्यध्वनिसमुद्गतः सादिश्चापि संभवति।

यह मंत्र किसी के द्वारा रचित या गूँथा हुआ नहीं है। प्राकृतिक रूप से अनादिकाल से चला आ रहा है।

''णमोकार मंत्रकल्प'' में श्री सकलकीर्ति भट्टारक ने कहा भी है—

श्लोकार्थ—नमस्कार मंत्र में रहने वाले पाँच महागुरुओं के नाम से निष्पन्न यह महामंत्र जगत् में ज्येष्ठ—सबसे बड़ा और महान है, अनादिसिद्ध है और आदि अर्थात् प्रथम है।।63।।

पाँच महागुरुओं के पैंतीस अक्षर प्रमाण मंत्र को तीन श्वासोच्छ्वासों में संसार भ्रमण के नाश हेतु एकाग्रचित्त होकर सभी भव्यजनों को जपना चाहिए अथवा ध्यान करना चाहिए।।68।।

श्रीमत् उमास्वामी आचार्य ने भी कहा है—

श्लोकार्थ—उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी आदि के जो सुषमा, दुःषमा आदि अनन्त युग पहले व्यतीत हो चुके हैं उनमें भी यह णमोकार मंत्र सबसे अधिक महत्त्वशाली प्रसिद्ध हुआ है। मैं संसार से बहिर्भूत (बाहर) मोक्ष प्राप्त करने के लिए उस णमोकार मंत्र को नमस्कार करता हूँ।।3।।

अथवा द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से अनादि प्रवाहरूप से चला आ रहा यह महामंत्र अनादि है और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा हुंडावसर्पिणी कालदोष के कारण तृतीय काल के अंत में तीर्थंकर की दिव्यध्वनि से उत्पन्न होने के कारण यह सादि भी है।

2.5 परमेष्ठी का स्वरूप एवं पंच परमेष्ठी के मूलगुण—

जो परम अर्थात् इन्द्रों के द्वारा पूज्य, सबसे उत्तम पद में स्थित हैं, वे परमेष्ठी कहलाते हैं। वे पाँच होते हैं—अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु।

अरिहंत का स्वरूप

जिनके चार घातिया कर्म नष्ट हो चुके हैं, जिनमें 46 गुण हैं और 18 दोष नहीं हैं, उन्हें अरिहंत परमेष्ठी कहते हैं।

दोहा— **चौंतीसों अतिशय सहित, प्रातिहार्य पुनि आठ।**
अनंतचतुष्टय गुण सहित, छियालीसों पाठ।।1।।

34 अतिशय + 8 प्रातिहार्य और + 4 अनंतचतुष्टय ये अरिहंत के 46 मूलगुण हैं। उत्तरगुण अनन्त हैं।

सर्व साधारण प्राणियों में नहीं पायी जाने वाली अद्भुत या अनोखी बात को अतिशय कहते हैं। इन 34 अतिशयों में जन्म के 10, केवलज्ञान के 10 और देवकृत 14 होते हैं।

जन्म के 10 अतिशय—

अतिशय रूप सुगंध तन, नाहिं पसेव निहार।
प्रियहित वचन अतुल्यबल, रुधिर श्वेत आकार।।

लक्षण सहसरु आठ तन, समचतुष्क संठान।
वज्रवृषभनाराचजुत, ये जनमत दस जान।।

अतिशय सुन्दर शरीर, अत्यन्त सुगंधित शरीर, पसीना रहित शरीर, मल-मूत्र रहित शरीर, हित-मित-प्रिय वचन, अतुल-बल, सफेद खून, शरीर में 1008 लक्षण, समचतुरस्र संस्थान और वज्रवृषभनाराच संहनन ये 10 अतिशय अरिहंत भगवान के जन्म से ही होते हैं।

केवलज्ञान के 10 अतिशय—

योजन शत इक में सुभिख, गगन-गमन मुख चार।
नहिं अदया, उपसर्ग नहीं, नाहीं कवलाहार।।
सब विद्या ईश्वरपनो, नाहिं बढ़े नख-केश।
अनिमिष दृग छाया रहित, दश केवल के वेष।।

भगवान के चारों ओर सौ-सौ योजन तक सुभिक्षता, आकाश में गमन, एक मुख होकर भी चार मुख दिखना, हिंसा न होना, उपसर्ग नहीं होना, ग्रास वाला आहार नहीं लेना, समस्त विद्याओं का स्वामीपना, नख केश नहीं बढ़ना, नेत्रों की पलकें नहीं लगना और शरीर की परछाई नहीं पड़ना। केवलज्ञान होने पर ये दश अतिशय होते हैं।

देवकृत 14 अतिशय—

देव रचित हैं चार दश, अर्ध मागधी भाष।
आपस माहीं मित्रता, निर्मल दिश आकाश।।
होत फूल फल ऋतु सबै, पृथ्वी काँच समान।
चरण कमल तल कमल हैं, नभतैं जय-जय बान।।
मंद सुगंध बयार पुनि, गंधोदक की वृष्टि।
भूमि विषै कंटक नहीं, हर्षमयी सब सृष्टि।।
धर्मचक्र आगे रहे, पुनि वसु मंगल सार।
अतिशय श्री अरिहंत के, ये चौंतीस प्रकार।।

भगवान की अर्ध-मागधी भाषा, जीवों में परस्पर मित्रता, दिशाओं की निर्मलता, आकाश की निर्मलता, छहों ऋतुओं के फल-फूलों का एक ही समय में फलना-फूलना, एक योजन तक पृथ्वी का दर्पण की तरह निर्मल होना, चलते समय भगवान् के चरणों के नीचे सुवर्ण कमल की रचना, आकाश में जय-जय शब्द, मंद सुगंधित पवन, सुगंधमय जल की वर्षा, पवन कुमार देवों द्वारा भूमि की निष्कंटकता, समस्त प्राणियों को आनन्द, भगवान् के आगे धर्मचक्र का चलना और आठ मंगल द्रव्यों का साथ रहना ये 14 अतिशय देवों द्वारा किये जाने से देवकृत कहलाते हैं और केवलज्ञान होने पर होते हैं।

प्रातिहार्य का लक्षण—

विशेष शोभा की चीजों को प्रातिहार्य कहते हैं।

आठ प्रातिहार्य—

तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छविदार।
तीन छत्र शिर पर फिरें, भामंडल पिछवार।।
दिव्यध्वनी मुखते खिरें, पुष्पवृष्टि सुर होय।
ढोरें चौंसठ चमर जख, बाजें दुंदुभि जोय।।

भगवान के पास अशोक वृक्ष, रत्नमय सिंहासन, भगवान के सिर पर तीन छत्र, पीठ पीछे भामंडल, दिव्यध्वनि, देवों द्वारा पुष्प वर्षा, यक्षदेवों द्वारा चौंसठ चंवर ढोरे जाना और दुंदुभि बाजे बजना ये आठ प्रातिहार्य हैं।

अनन्त चतुष्टय—

चार घातिया कर्मों के नाश से जो चार विशेष गुण प्रकट होते हैं, उन्हें अनंत चतुष्टय कहते हैं।

ज्ञान अनन्त, अनन्त सुख, दरश अनंत प्रमान।
बल अनंत अरिहंत सो, इष्टदेव पहिचान।।

अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत वीर्य ये चार अनंत चतुष्टय हैं अर्थात् भगवान के ये दर्शन-ज्ञानादि अन्त रहित होते हैं। चार घातिया कर्म के नाश से जो चार विशेष गुण प्राप्त होते हैं, उनको अनन्तचतुष्टय कहते हैं।

अठारह दोषों के नाम—

जन्म जरा तिरखा क्षुधा, विस्मय आरत खेद।
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिन्ता स्वेद।।
राग द्वेष अरु मरण जुत, ये अष्टादश दोष।
नाहिं होत अरिहंत के, सो छवि लायक मोष।।

जन्म, बुढ़ापा, प्यास, भूख, आश्चर्य, पीड़ा, दु:ख, रोग, शोक, गर्व, मोह, भय, निद्रा, चिन्ता, पसीना, राग, द्वेष और मरण ये अठारह दोष अरिहंत भगवान में नहीं होते हैं।

सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप

जो आठों कर्मों का नाश हो जाने से नित्य, निरंजन, अशरीरी हैं, लोक के अग्रभाग पर विराजमान हैं, वे सिद्ध परमेष्ठी कहलाते हैं। इनके आठ मूलगुण होते हैं, उत्तरगुण तो अनन्तानंत हैं।

सोरठा— **समकित दरसन ज्ञान, अगुरुलघू अवगाहना।**
सूक्षम वीरज वान, निराबाध गुण सिद्ध के।।

क्षायिक सम्यक्त्व, अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अनंतवीर्य और अव्याबाधत्व ये सिद्धों के आठ मुख्य गुण हैं।

आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

जो पाँच आचारों का स्वयं पालन करते हैं और दूसरे मुनियों से कराते हैं, मुनि संघ के अधिपति हैं और शिष्यों को दीक्षा व प्रायश्चित्त आदि देते हैं, वे आचार्य परमेष्ठी हैं। इनके 36 मूलगुण होते हैं।

छत्तीस मूलगुण—

द्वादश तप, दश धर्मजुत, पालें पंचाचार।
षट् आवश्यक, गुप्ति त्रय, आचारज गुणसार।।

12 तप, 10 धर्म, 5 आचार, 6 आवश्यक और 3 गुप्ति ये आचार्य के 36 मूलगुण हैं। उत्तर गुण अनेक हैं।

12 तप के नाम—

अनशन ऊनोदर करें, व्रत संख्या रस छोर।
विविक्त शयन आसन धरें, काय कलेश सुठोर।।
प्रायश्चित्त धर विनयजुत, वैयावृत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचारि के, धरैं ध्यान मन लाय।।

अनशन (उपवास), ऊनोदर (भूख से कम खाना), व्रतपरिसंख्यान (आहार के समय अटपटा नियम), रसपरित्याग (नमक आदि रस त्याग), विविक्त शय्यासन (एकांत स्थान में सोना, बैठना), कायक्लेश (शरीर से गर्मी, सर्दी आदि सहन करना) ये छह बाह्य तप हैं। प्रायश्चित्त (दोष लगने पर दण्ड लेना), विनय (विनय करना), वैयावृत्य (रोगी आदि

साधु की सेवा करना), स्वाध्याय (शास्त्र पढ़ना) व्युत्सर्ग (शरीर से ममत्व छोड़ना) और ध्यान (एकाग्र होकर आत्मचिन्तन करना) ये छह अंतरंग तप हैं। इस प्रकार ये 12 तप होते हैं।

दस धर्म—

छिमा मारदव आरजव, सत्य वचन चित पाग।
संजम तप त्यागी सरब, आकिंचन तिय त्याग।।

उत्तम क्षमा—क्रोध नहीं करना, **मार्दव**—मान नहीं करना, **आर्जव**—कपट नहीं करना, **सत्य**—झूठ नहीं बोलना, **शौच**—लोभ नहीं करना, **संयम**—छह काय के जीवों की दया पालना, पाँच इन्द्रिय और मन को वश करना, **तप**—बारह प्रकार के तप करना, **त्याग**—चार प्रकार का दान देना, **आकिंचन्य**—परिग्रह का त्याग करना और **ब्रह्मचर्य**—स्त्रीमात्र का त्याग करना।

आचार तथा गुप्ति—

दर्शन ज्ञान चरित्र तप, वीरज पंचाचार।
गोपें मन वच काय को, गिन छत्तिस गुणसार।।

दर्शनाचार—दोषरहित सम्यग्दर्शन, **ज्ञानाचार**—दोषरहित सम्यग्ज्ञान, **चारित्राचार**—निर्दोषचारित्र, **तपाचार**—निर्दोष तपश्चरण और **वीर्याचार**—अपने आत्मबल को प्रगट करना ये पाँच आचार हैं।

मनोगुप्ति—मन को वश में करना, **वचनगुप्ति**—वचन को वश में करना और **कायगुप्ति**—काय को वश में रखना ये तीन गुप्तियाँ हैं।

छह आवश्यक—

समता धर वंदन करें, नानाथुती बनाय।
प्रतिक्रमण, स्वाध्यायजुत, कायोत्सर्ग लगाय।।

समता—समस्त जीवों पर समता भाव और त्रिकाल सामायिक, **वंदना**—किसी एक तीर्थंकर को नमस्कार, **स्तुति**—चौबीस तीर्थंकर की स्तुति, **प्रतिक्रमण**—लगे हुए दोषों को दूर करना, **स्वाध्याय**—शास्त्रों को पढ़ना और **कायोत्सर्ग**—शरीर से ममत्व छोड़ना और ध्यान करना ये छह आवश्यक हैं। (मूलाचार आदि में स्वाध्याय की जगह 'प्रत्याख्यान' नामक क्रिया है, जिसका अर्थ है कि आगे होने वाले दोषों का, आहार-पानी आदि का त्याग करना) यहाँ तक आचार्य के 36 मूलगुण हुए।

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप

जो मुनि 11 अंग और 14 पूर्व के ज्ञानी होते हैं अथवा तत्काल के सभी शास्त्रों के ज्ञानी होते हैं तथा जो संघ में साधुओं को पढ़ाते हैं वे उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं। 11 अंग और 14 पूर्व को पढ़ना-पढ़ाना ही इनके 25 मूलगुण हैं।

ग्यारह अंग—

प्रथमहिं आचारांग गनि, दूजो सूत्रकृतांग।
ठाण अङ्ग तीजो सुभग, चौथो समवायांग।।
व्याख्यापण्णति पांचमों, ज्ञातृकथा षट् जान।
पुनि उपासकाध्ययन है, अन्तःकृत् दश जान।।
अनुत्तरण उत्पाद दश, सूत्रविपाक पिछान।
बहुरि प्रश्न व्याकरण जुत, ग्यारह अंग प्रमाण।।

आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्तिअंग, ज्ञातृकथांग, उपासकाध्ययनांग, अन्तकृद्दशांग,

अनुत्तरोपपादकदशांग, प्रश्नव्याकरणांग और विपाकसूत्राँग ये 11 अंग हैं।

चौदह पूर्वों के नाम—

उत्पादपूर्व अग्रायणी, तीजो वीरजवाद।
अस्तिनास्तिपरवाद पुनि, पंचम ज्ञान प्रवाद।।
छट्ठो कर्मप्रवाद है, सत्प्रवाद पहिचान।
अष्टम आत्मप्रवाद पुनि, नवमों प्रत्याख्यान।।
विद्यानुवाद पूरब दशम, पूर्व कल्याण महंत।
प्राणवाद किरिया बहुल, लोकबिंदु है अन्त।।

उत्पादपूर्व, अग्रायणीपूर्व, वीर्यानुवादपूर्व, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवादपूर्व, कर्मप्रवादपूर्व, सत्प्रवादपूर्व, आत्मप्रवादपूर्व, प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व, विद्यानुवादपूर्व, कल्याणप्रवादपूर्व, प्राणानुवादपूर्व, क्रियाविशालपूर्व और लोकबिंदुपूर्व ये 14 पूर्व हैं। ये बारहवें दृष्टिवाद नामक अंग में वर्णित पूर्वगत के 14 भेद हैं। इन्हें ही 14 पूर्व के नाम से जाना जाता है।

साधु परमेष्ठी का स्वरूप

जो पाँचों इन्द्रियों के विषयों से तथा आरंभ और परिग्रह से रहित होते हैं, ज्ञान, ध्यान और तप में लीन रहते हैं ऐसे दिगम्बर मुनि मोक्षमार्ग का साधन करने वाले होने से साधु परमेष्ठी कहलाते हैं। इनके 28 मूलगुण होते हैं।

अट्ठाइस मूलगुणों के नाम—

पंच महाव्रत समिति पन, पंचेन्द्रिय का रोध।
षट् आवश्यक साधु गुण, सात शेष अवबोध।।

5 महाव्रत, 5 समिति, 5 इन्द्रियविजय, 6 आवश्यक और 7 शेष गुण, ये साधु के 28 मूलगुण हैं।

पाँच महाव्रत—

हिंसा, अनृत, तस्करी, अब्रह्म, परिग्रह पाप।
मन वच तन तें त्यागवो, पंच महाव्रत थाप।।

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँचों पापों का मन वचन काय से सर्वथा त्याग कर देना ये पाँच महाव्रत कहलाते हैं।

पाँच समिति—

ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपण आदान।
प्रतिष्ठापना जुत क्रिया, पाँचों समिति निधान।।

ईर्यासमिति—चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना, **भाषा समिति—**हित-मित-प्रिय वचन बोलना, **एषणासमिति—**निर्दोष आहार लेना, **आदान निक्षेपण समिति—**पिच्छी से पुस्तक आदि को देख-शोधकर उठाना धरना, **प्रतिष्ठापना समिति—**जीव रहित भूमि में मलादि विसर्जित करना, ये पाँच समिति हैं।

इन्द्रियविजय और शेष मूलगुण—

सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत का रोध।
शेष सात मज्जन तजन, शयन भूमि का शोध।।
वस्त्र त्याग कचलुंच अरु, लघु भोजन इक बार।
दाँतुन मुख में ना करें, ठाड़े लेहिं अहार।।

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण—इन पाँचों इन्द्रियों को वश करना ये पंचेन्द्रिय विजय नामक पाँच मूलगुण हैं।

स्नान का त्याग, भूमि पर शयन, वस्त्र त्याग, केशों का लोच, दिन में एक बार लघु भोजन, दांतोन का त्याग और खड़े होकर आहारग्रहण ये 7 शेष गुण हैं। पाँचों परमेष्ठी के सब मिलकर 46+8+36+25+28=143 मूलगुण हो जाते हैं।

2.6 ॐ पंचपरमेष्ठी का संक्षिप्त रूप (Ohm : Brief form of *Panch-Permeshthi*)-

पंचपरमेष्ठी का सबसे छोटा रूप ॐ है। ॐ अर्थात् ओम् में पांचों परमेष्ठी के प्रथम अक्षर (अ, अ, आ, उ और म्) सम्मिलित हैं और इन पांचों अक्षरों से ही ऊँ बना है। ओम् में (अ+अ+आ+उ+म्) होते हैं। इनसे अभिप्राय निम्न प्रकार है–

अरिहन्त	अशरीरी (सिद्ध)	आचार्य	उपाध्याय	मुनि (साधु)
अ +	अ +	आ +	उ +	म्

चत्तारि-दण्डक-

चत्तारि मंगलं — अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा — अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि — अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।।

लोक में चार मंगल हैं — अरिहन्त भगवान मंगल हैं, सिद्ध भगवान मंगल हैं। साधु (आचार्य, उपाध्याय और साधु) मंगल हैं तथा केवली भगवान द्वारा कहा गया धर्म मंगल है। मंगल का अर्थ है जो मल (मोह, राग, द्वेष आदि) को गलावे और सच्चा सुख उत्पन्न करे। उपरोक्त चारों मंगल स्वरूप हैं। इनमें भक्ति भाव होने से परम मंगल होता है।

लोक में चार उत्तम हैं — अरिहन्त भगवान उत्तम हैं, सिद्ध भगवान उत्तम हैं, साधु (आचार्य, उपाध्याय और मुनि) उत्तम हैं तथा केवली भगवान द्वारा कहा गया धर्म उत्तम है। लोगुत्तमा का अर्थ है–लोक में उत्तम (सर्वश्रेष्ठ)। लोक में उपरोक्त चारों उत्तम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हैं।

चार की शरण में जाता हूँ — अरिहन्तों की शरण में जाता हूँ, सिद्धों की शरण में जाता हूँ, साधुओं (आचार्य, उपाध्याय व साधु) की शरण में जाता हूँ और केवली भगवान द्वारा कहे गये धर्म की शरण में जाता हूँ।

विशेष — शरण का अर्थ है सहारा और पव्वज्जामि का अर्थ है प्राप्त होता हूँ अर्थात् जाता हूँ। पंच परमेष्ठी द्वारा बताये गये मार्ग पर चलकर अपनी आत्मा की शरण लेना ही पंच परमेष्ठी की शरण है।

चत्तारि दण्डक में अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवली भगवान द्वारा कहे गये धर्म को ही मंगल स्वरूप कहा गया है। ये चारों ही लोक में सर्व श्रेष्ठ बताये गये हैं और इन चारों को ही जीवों का सहारा (शरण) कहा गया है। इन चार के अतिरिक्त लोक में अन्य कोई मंगल–उत्तम–शरण नहीं है। इस प्रकार इस चत्तारि दण्डक में पंच परमेष्ठियों के महत्त्व को दर्शाया गया है।

किन्तु इसमें अरिहन्त, सिद्ध और साधुओं का ही उल्लेख है, आचार्य व उपाध्याय का उल्लेख नहीं है। इसके कारण निम्न हैं–

(1) सभी आचार्य और उपाध्याय "साधु" शब्द में परोक्ष रूप से सम्मिलित हैं। आचार्य व उपाध्याय अपने मूलगुणों के अलावा साधुओं के 28 मूलगुणों को भी धारण करते हैं, अतः वे "साधु" परमेष्ठी में सम्मिलित हैं। उन्हें छोड़ा नहीं गया है अपितु गौण किया गया है।

(2) मोक्ष पद प्राप्त करने हेतु मात्र साधु होना आवश्यक है, आचार्य या उपाध्याय होना आवश्यक नहीं है।

(3) जब तक आचार्य पद का परिग्रह है, उन्हें केवलज्ञान नहीं हो सकता है। आचार्य पद छोड़ने पर ही केवलज्ञान होता है।

2.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-णमोकार मंत्र में कितने अक्षर, कितने पद और कितनी मात्राएँ हैं ?

प्रश्न 2-महामंत्र णमोकार में अरिहंत परमेष्ठी को पहले नमस्कार क्यों किया है ?

प्रश्न 3-णमोकार मंत्र को और किन-किन नामों से जाना जाता है ?

प्रश्न 4-णमोकार मंत्र का माहात्म्य बताइये ?

प्रश्न 5-पंचपरमेष्ठी का संक्षिप्त रूप बताते हुए उससे ॐ बनाने की प्रक्रिया बताइये ?

प्रश्न 6-परमेष्ठी किसे कहते हैं?

प्रश्न 7-अरिहंत परमेष्ठी के कितने मूलगुण हैं?

प्रश्न 8-जन्म के दश अतिशय और चार अनंत चतुष्टय के नाम बताओ?

प्रश्न 9-सिद्धों के मूल गुण कितने हैं?

प्रश्न 10-आचार्य किसे कहते हैं?

प्रश्न 11-बारह तप के नाम बताओ?

प्रश्न 12-पाँच आचारों के लक्षण कहो?

प्रश्न 13-चौदह पूर्वों के नाम बताओ?

प्रश्न 14-साधु परमेष्ठी के कितने मूलगुण हैं?

प्रश्न 15-षट् आवश्यक क्रिया और सात शेष गुणों के नाम बताओ?

प्रश्न 16-आचार्य, उपाध्याय और साधु में क्या अन्तर है?

पाठ-3 – जैनधर्म की प्राचीनता (Antiquity of Jain Religion)

3.1 प्रवाह की दृष्टि से जैनधर्म अनादि है। समय का चक्र अनादिकाल से अबाधगति से चल रहा है। उसका प्रभुत्व सब पर है। चेतन और अचेतन-सब उससे प्रभावित हैं। धर्म भी इसका अपवाद नहीं है। धर्म शाश्वत होता है, पर उसकी व्याख्या समय के साथ बदलती रहती है। वर्तमान में जैन धर्म का प्रवर्तन भगवान ऋषभदेव से माना जाता है। कुछ विद्वान इसे वैदिक धर्म की शाखा, तो कुछ इसे बौद्ध धर्म की शाखा मानते हैं। पर वर्तमान में हुए शोध-अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि यह न वैदिक धर्म की शाखा है और न बौद्ध धर्म की शाखा है। यह एक स्वतंत्र धर्म है।

विश्व के प्राचीनतम धर्मों में जैनधर्म प्राचीनतम धर्म है। पुरातन भारत के पुरातत्त्व तथा इतिहास का पर्यवेक्षण करने पर यह ज्ञात होता है कि जैन विचारधारा प्राचीन काल से ही अनवरत चल रही है। जैनधर्म सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक धर्म है। यह किसी सम्प्रदाय विशेष का नहीं है। किन्तु यह तो आत्मा के लिए है आत्मा द्वारा प्राप्त किया जाता है, आत्मा में प्रतिष्ठित होता है, इसलिए इसे 'आत्म-धर्म' भी कहा जाता है।

जन-जन को सम्यक् सुख एवं शांति का जिसमें पौरुष बताया जाये वह 'जैनधर्म' कहलाता है। यह धर्म अस्तित्व की अपेक्षा से अनादिनिधन अपौरूषेय अर्थात् स्वयंसिद्ध है।

भगवान ऋष्रभदेव से लेकर भगवान महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर हुए हैं जिन्होंनें जैन धर्म की स्थापना नहीं वरन् जैन तीर्थ (धर्म) का प्रवर्तन किया। लोक भाषा में जन-जन तक पहुँचाया। जिसके माध्यम से अगणित भव्यात्माओं ने अक्षय शांति का साम्राज्य प्राप्त किया। भगवान ऋषभदेव से पूर्व अगणित बार 24-24 तीर्थंकर एक-एक काल में हो चुके हैं, जिन्होंने धर्म ध्वजा को फहराया।

जैनधर्म वैदिक धर्म की शाखा नहीं है, क्योंकि वैदिक मत में वेद सबसे प्राचीन माने जाते हैं। विद्वान वेदों को 5000 वर्ष प्राचीन मानते हैं। वेदों में ऋषभ, अरिष्टनेमि आदि श्रमणों का उल्लेख किया मिलता है। वेदों के पश्चात् उपनिषद, आरण्यक, पुराण आदि में भी इनका वर्णन आता है। यदि इन ग्रंथों की रचना से पूर्व जैनधर्म न होता, भगवान ऋषभ न होते, तो उनका उल्लेख इन ग्रंथों में कैसे होता ? इससे ज्ञात होता है कि जैन धर्म वैदिक धर्म से अधिक प्राचीन है।

जैनधर्म बौद्धधर्म की भी शाखा नहीं है अपितु उससे प्राचीन है। जैनधर्म के प्रवर्तक भगवान महावीर हैं, यह भ्रान्त दृष्टिकोण ही इसे बौद्धधर्म की शाखा मानने का कारण रही है। पर अब इस विषय में हुए शोधों से यह स्पष्ट हो गया कि भगवान महावीर से पूर्व भी जैनधर्म का अस्तित्व था।

डॉ. हर्मन जैकोबी ने अपने ग्रंथ "जैन सूत्रों की प्रस्तावना" में इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। आज पार्श्वनाथ जब पूर्णतः ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध हो चुके हैं तब भगवान महावीर से जैनधर्म का शुभारंभ मानना मिथ्या ही है। जैकोबी लिखते हैं "इस बात से अब सब सहमत हैं कि नाथपुत्त जो वर्धमान अथवा महावीर नाम से प्रसिद्ध हुए, वे बुद्ध के समकालीन थे। बौद्ध ग्रंथों में मिलने वाले उल्लेख हमारे इस विचार को और दृढ़ करते हैं कि नाथपुत्त से पहले भी निर्ग्रन्थों का जो धर्म आज अर्हत् या जैन नाम से प्रसिद्ध हैं-उसका अस्तित्व था।"

यह सत्य है कि "जैनधर्म" इस शब्द का प्रयोग वेदों में, त्रिपिटकों में और आगमों में देखने को नहीं मिलता, जिसके कारण भी कुछ लोग जैनधर्म को प्राचीन न मानकर अर्वाचीन मानते हैं। प्राचीन साहित्य में "जैनधर्म" का नामोल्लेख न मिलने का कारण यह था कि उस समय तक इसे जैनधर्म के नाम से जाना ही नहीं जाता था। उसके बाद उत्तरवर्ती साहित्य में 'जैन' शब्द व्यापक रूप से प्रचलित हुआ। ऋषभ से लेकर महावीर तक इसके प्राचीनतम नाम हमें जो उपलब्ध होते हैं, वे हैं-श्रमण, निर्ग्रन्थ, आर्हत्, व्रात्य आदि।

जैनधर्म का मुख्य उद्देश्य है-सत्य का साक्षात्कार करना। सत्य की उपलब्धि में प्राचीन और नवीन का कोई महत्त्व नहीं होता। जिसके द्वारा आत्म-साक्षात्कार हो सके, उसी का महत्त्व होता है, फिर चाहे वह प्राचीन हो या अर्वाचीन। पर

इतिहास की दृष्टि में प्राचीन और अर्वाचीन का महत्त्व होता है। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैनधर्म प्राग्वैदिक है। जैनधर्म के प्राचीन होने की संपुष्टि हम दो तथ्यों के आधार पर कर सकते हैं-1. साहित्य के आधार पर, 2. पुरातत्त्व के आधार पर।

3.2 साहित्य के आधार पर (On the Basis of Literature)-

भारतीय साहित्य में वेद सबसे प्राचीन माने जाते हैं। वेदों में तथा उनके पार्श्ववर्ती ग्रंथों में प्रयुक्त शब्द यथा-श्रमण, केशी, व्रात्य, अर्हत्, निर्ग्रन्थ आदि जैनधर्म की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं।

* **श्रमण**—ऋग्वेद में 'वातरशन मुनि' शब्द का प्रयोग मिलता है। ये अर्हत् ऋषभ के ही शिष्य हैं। श्रीमद्भागवत् में ऋषभ को श्रमणों के धर्म का प्रवर्तक बताया गया है। उसके लिए श्रमण, ऋषि, ब्रह्मचारी आदि विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं। वातरशन शब्द भी श्रमणों का सूचक है। 'वातरशन ह वा ऋषभः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनो बभूतु:' तैत्तिरीयारण्यक और श्रीमद्भागवत् द्वारा इस तथ्य की पुष्टि होती है। वहाँ वातरशना मुनियों को श्रमण और ऊर्ध्वमन्थी कहा गया है। जिनसेनाचार्य ने वातरशन शब्द का अर्थ निर्ग्रन्थ (निर्वस्त्र) किया है। श्रमण शब्द का उल्लेख वृहदारण्यक उपनिषद और रामायण आदि में भी होता रहा है।

* **केशी**—ऋग्वेद के जिस प्रकरण में वातरशन मुनि का उल्लेख है, उसी में केशी की स्तुति की गई है-

केश्यग्नि केशी विष केशी बिभर्ति रोदसी।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते।।

अर्थात् केशी अग्नि, जल, स्वर्ग और पृथ्वी को धारण करता है। केशी समस्त विश्व के तत्त्वों का दर्शन करता है। केशी ही प्रकाशमान ज्योति (केवलज्ञानी) कहलाता है। यह केशी भगवान ऋषभदेव का वाचक है। उनके केशी होने की परम्परा जैन साहित्य में आज भी उपलब्ध है।

* **व्रात्य**—वैदिक साहित्य में व्रात्य संस्कृति एवं उसके तपस्वियों के उल्लेख आए हैं, जिनका विशेष संबंध श्रमण संस्कृति से होना चाहिए। व्रतों का आचरण करने के कारण वे व्रात्य कहे जाते थे। संहिता काल में व्रात्यों को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। ऋग्वेद में व्रात्यों की प्रशंसा में अनेक मंत्रों की रचना की हैं। व्रात्यों की यह प्रशंसा ऋग्वेद से लेकर अथर्ववेद काल तक प्राप्त होती है। अथर्ववेद में तो स्वतंत्र 'व्रात्य सूक्त' की रचना मिलती है। व्रात्य सूक्त के 15वें काण्ड में 220 मंत्रों द्वारा व्रात्यों की स्तुति की गई है।

ऋषभदेव की स्तुति करते हुए उनके प्रजापति रूप की प्रशंसा इस प्रकार की गई है-"व्रात्य नाम का एक राजा हुआ, उसने राज्य धर्म का प्रारंभ किया। प्रजा, बंधु-बान्धव और प्रजातंत्र सभी का उसी से उदय हुआ। व्रात्य ने सभा, समिति, सेना आदि का निर्माण किया।

* **अर्हन्**—वातरशन, मुनि आदि के समान ऋग्वेद में जैनों के लिए अर्हन् शब्द का प्रयोग भी हुआ है। जो अर्हत् के उपासक थे वे आर्हत् कहलाते थे। अर्हन् शब्द श्रमण संस्कृति का बहुत प्रिय शब्द है। वे अपने तीर्थंकरों को वीतराग आत्माओं को अर्हन् कहते हैं। ऋग्वेद में अर्हन् शब्द का प्रयोग श्रमण नेता के लिए ही हुआ है-

अर्हन् विभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति।।

ऋग्वेद में प्रयुक्त अर्हन् शब्द से यह प्रमाणित होता है कि श्रमण संस्कृति ऋग्वैदिक काल से पूर्ववर्ती है।

यजुर्वेद में तीन तीर्थंकरों ऋषभदेव, अजितनाथ एवं अरिष्टनेमि के नामों का उल्लेख है। भागवतपुराण भी इस बात का समर्थन करता है कि ऋषभ जैनमत के संस्थापक थे। इस प्रकार साहित्य में उपलब्ध ये साक्ष्य जैनधर्म की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं।

3.3 पुरातत्त्व के आधार पर (On the Basis of Archaeology)-

पुरातत्त्ववेत्ता भी अब इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि भारत में वैदिक सभ्यता का जब प्रचार-प्रसार हुआ, उससे पहले यहाँ जो सभ्यता थी, वह अत्यन्त समृद्ध एवं समुन्नत थी। प्राग्वैदिक काल का कोई साहित्य नहीं मिलता। किन्तु पुरातत्त्व की खोजों और उत्खनन के परिणामस्वरूप कुछ नये तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। सन् 1922 में और उसके बाद मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई भारत सरकार की ओर से की गई थी। इन स्थानों पर जो पुरातत्त्व उपलब्ध हुआ है, उससे तत्कालीन भारतवासियों के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज और धार्मिक विश्वासों पर प्रकाश पड़ता है। इन स्थानों पर यद्यपि कोई देवालय-मंदिर नहीं मिले हैं, किन्तु वहाँ पाई गई मुहरों, ताम्रपत्रों तथा पत्थर की मूर्तियों से उनके धर्म का पता चलता है।

मोहन-जोदड़ो में कुछ ऐसी मुहरें मिली हैं, जिन पर योगमुद्रा में योगी-मूर्तियाँ अंकित हैं। एक ऐसी मुहर भी प्राप्त हुई, जिसमें एक योगी कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानलीन हैं। उसके सिर के ऊपर त्रिशूल है। वृक्ष का एक पत्ता मुख के पास है। योगी के चरणों में एक भक्त करबद्ध नमस्कार कर रहा है। उस भक्त के पीछे वृषभ (बैल) खड़ा है। वृषभ के ऊपर वृक्ष है। नीचे सामने की ओर सात योगी कायोत्सर्ग की मुद्रा में भुजा लटकाये ध्यान-मग्न हैं। प्रत्येक के मुख के पास वल्लरी के पत्र लटक रहे हैं।

विद्वान् उक्त मुहर की व्याख्या इस प्रकार करते हैं-भगवान ऋषभदेव कायोत्सर्ग में ध्यानारूढ़ खड़े हैं। कल्पवृक्ष हवा में हिल रहा है और उसका एक पत्ता भगवान के मुख के पास डोल रहा है। उनके सिर पर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह त्रिरत्नरूप त्रिशूल है। सम्राट भरत भगवान के चरणों में भक्ति से झुककर आनन्दाश्रुओं से उनके चरण-प्रक्षालन कर रहे हैं। उनके पीछे वृषभ लांछन है। नीचे सात मुनि भगवान का अनुसरण करके कायोत्सर्ग की मुद्रा में ध्यानलीन हैं। जो चार हजार व्यक्ति ऋषभदेव के साथ मुनि बने थे, उन्हीं के प्रतीक स्वरूप ये सात मुनि हैं। ये भी कल्पवृक्ष के नीचे खड़े हुए हैं और उनके मुख के पास भी पत्ता हिल रहा है। इस मुहर की इससे ज्यादा तर्कसंगत व्याख्या कोई दूसरी नहीं हो सकती।

कायोत्सर्ग मुद्रा जैन परम्परा की ही विशेष देन है। मोहन-जोदड़ों की खुदाई में प्राप्त मूर्तियों की यह विशेषता है कि वे प्रायः कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं, ध्यानलीन हैं और नग्न हैं। खड़े रहकर कायोत्सर्ग करने की पद्धति जैन परम्परा में बहुत प्रचलित है।

धर्मपरम्पराओं में योगमुद्राओं में भी भेद होता है। पर्यङ्कासन या पद्मासन जैन मूर्तियों की विशेषता है। इसी संदर्भ में आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा-प्रभो! आपके पर्यङ्कआसन और नासाग्र दृष्टि वाली योगमुद्रा को भी परतीर्थिक-अन्य मतावलम्बी नहीं सीख पाए हैं तो भला वे और क्या सीखेंगे। प्रोफेसर प्राणनाथ ने मोहन-जोदड़ों की एक मुद्रा पर 'जिनेश्वर' शब्द भी पढ़ा है।

डेल्फी से प्राप्त प्राचीन आर्गिव मूर्ति, जो कायोत्सर्ग मुद्रा में है, ध्यानलीन और उसके दोनों कंधों पर ऋषभ की भांति केश-राशि लटकी हुई है। डॉ. कालिदास नाग ने उसे जैन मूर्ति बतलाया है। वह लगभग दस हजार वर्ष पुरानी है।

मोहन-जोदड़ों से प्राप्त मूर्तियों के सिर पर नाग-फण का अंकन है। वह नाग-वंश के संबंध का सूचक है। सातवें तीर्थंकर भगवान सुपार्श्वनाथ के सिर पर सर्प-मण्डल का छत्र था।

इस प्रकार मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा आदि में जो ध्यानस्थ प्रतिमाएँ मिली हैं, वे जैन तीर्थंकरों की हैं। ध्यानमग्न वीतराग मुद्रा, त्रिशूल और धर्मचक्र, पशु, वृक्ष, नाग, ये सभी जैन कला की अपनी विशेषताएं हैं। खुदाई में प्राप्त ये अवशेष निश्चित रूप से जैनधर्म की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं।

साहित्य और पुरातत्त्व के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जैनधर्म विश्व का प्राचीनतम धर्म है।

वर्तमान में भी उपलब्ध सभी संवत्सरों में वीर निर्वाण संवत् सबसे प्राचीन माना जाता है।

3.4 वैदिक पुराणों में जैन धर्म व संतों का विवरण- (Description of Jain Religion and Jain Saints in Vedic Puranas)-

विष्णुपुराण- अध्याय 18, 41-44

मत्स्यपुराण-अध्याय 24

वैदिक पद्मपुराण-प्रथम सृष्टि खण्ड 13, पृ. 33

वैदिक पद्मपुराण-अध्याय-1

भारतवर्ष में वैदकि आर्यों के पूर्व काल में प्रजापति (ऋषभदेव) के लिए ज्ञान यज्ञ का प्रचार था। ऋग्वेद व अथर्ववेद इसके समर्थक हैं। ऋग्वेद में भी ऐसे श्रमणों का उल्लेख है।

मुनि को नग्न क्षपणक व शन्तिपर्व में भी (मोक्ष धर्म अ. 269, श्लोक 6) में सप्तभंगी का उल्लेख है, इसका अर्थ जैन धर्म प्रचलन में था।

विख्यात विद्वान् श्री विनोबा भावे लिखते हैं ''जैन विचार निःसंशय प्राचीनकाल से है'' (वेद मंत्र 112, 33,101 के अनुसार)

डॉ. जैकोबी के अनुसार 'इंडो-आर्यन-इतिहास के अत्यन्त आरंभ काल में जैनधर्म का उद्भव हुआ था (Introduction outlines of Jainism, p.p.xxx to xxxiii)

''डॉ. हेनरिच जिमर ने जैनधर्म को आर्यों का पूर्ववर्ती धर्म कहा है। जैनधर्म द्राविड़कालीन है जिसका सिन्धु की उपव्त्यका में उपलब्ध सामग्री से ज्ञान होता है। (The Philosophies of India p. 217)

श्री विसेन्ट स्मिथ के अनुसार ''इस बात के स्पष्ट व अकाट्य प्रमाण हैं कि जैनधर्म प्राचीन है और वह प्रारंभ से भी वर्तमान स्वरूप था।''

यजुर्वेद में ऋषभ, अजीत और अरिष्टनेमी नामक तीन तीर्थंकरों का उल्लेख मिलता है। इनका उल्लेख जैनधर्म के पहले, दूसरे और 22वें तीर्थंकर के रूप में किया गया है। भागवत पुराण भी इस बात की पुष्टि करता है कि जैनधर्म के संस्थापक ऋषभ ही थे।

विश्व शांति के संवाहक प्राचीनतम जैनदर्शन जन-जन का दर्शन बन गया और इसीलिए देश में ही नहीं अपितु विदेशों में भी इनके सिद्धान्तों के प्रति पूर्ण समादर रहा। इंडोनेशिया में स्थित बोरोबुदूर (नंदीश्वरद्वीप/समवसरण मंदिर), कंबोडिया, थाईलैण्ड में भी जैन पुरातत्त्व के अवशेष प्राप्त हुए हैं। वियतनाम, म्यान्मार (बर्मा), मेक्सिको से प्राप्त पुरातत्त्व अवशेषों से जैन संस्कृति के वहाँ प्रचलित होने के प्रमाण मिले हैं।

3.5 अर्न्तराष्ट्रीय धर्मों में जैनधर्म (Jain Religion Among International Religions)-

दिनाँक 5 मार्च 2006 को जैनधर्म को अर्न्तराष्ट्रीय धर्मों के संगठन (IRO) में 10वें धर्म के रूप में मान्यता प्रदान की गई।

अमेरिकी संसद ने दिनाँक 27-10-2007 को विधेयक क्र. 747 पास किया, जिसमें अमेरिका व विश्व में दीवाली के त्यौहार को अन्य धर्मों की तरह जैनधर्म के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के निर्वाण के उपलक्ष में जैनों द्वारा महत्त्व रूप से मनाया जाना, ऐसा माना है।

3.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-जैनधर्म की स्थापना किसने की ?

प्रश्न 2-जैनधर्म का मुख्य उद्देश्य क्या है ?

प्रश्न 3-जैन मूर्तियों की क्या विशेषता है ?

पाठ-4 — काल चक्र (Time Cycle)

4.1 यह जीव अनेक बार जीवन-मरण को प्राप्त होता है अर्थात् जन्म लेता है और आयु पूर्ण होने पर मर जाता है। पुन: जन्म लेता है और आयु पूर्ण होने पर पुन: मर जाता है। द्रव्य के इस परिणमन को काल कहते हैं। वस्तुओं और क्षेत्रों में जो परिवर्तन कराता है वह काल कहलाता है।

ज्योतिषी देव (सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र व तारे) मनुष्य लोक में मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं और निरतंर गतिशील रहते हैं। सूर्य-मण्डल के उदय और अस्त से ही दिन-रात होते हैं। इस प्रकार काल का आधार मनुष्य क्षेत्र सम्बन्धी सूर्य-मण्डल है। मनुष्य लोक के बाहर सूर्य आदि स्थिर रहते हैं, अत: वहाँ पर दिन-रात, मास, वर्ष आदि नहीं होते हैं। परन्तु मनुष्य लोक सम्बन्धी काल व्यवहार के आधार से ही वहाँ काल का व्यवहार होता है। जैसे जब यहाँ कार्तिक आदि महीनों में अष्टान्हिका पर्व आते हैं, तब इन्हीं दिनों में स्वर्ग लोक से देवतागण नंदीश्वर द्वीप में पूजा हेतु पहुँच जाते हैं।

काल के दो भेद (Two Divisions of Time-Cycle)-

इस दृश्यमान जगत में काल-चक्र सदा घूमता रहता है। जैन आगम के अनुसार काल के दो भाग हैं। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। जिस प्रकार चलती हुई गाड़ी के पहिये नीचे से ऊपर की ओर फिर ऊपर से नीचे की ओर चलते ही रहते हैं, उसी प्रकार यह जगत् एक बार दु:ख से सुख की ओर और फिर सुख से दु:ख की ओर जाता है। इसे क्रमश: उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी काल कहते हैं। सुख-दु:ख का यह चक्र अनादि काल से चलता आया है और भविष्य में भी चलता रहेगा।

यह काल परिवर्तन केवल भरत व ऐरावत क्षेत्रों के आर्य खण्डों में ही होता है, शेष क्षेत्रों में नहीं होता है।

4.2 अवसर्पिणी काल (*Avsarpini Kal*-The Devolution Epoch)-

जिस काल में जीवों (मनुष्य और तिर्यंच) की आयु, बल, ऊँचाई, सुख, सम्पदा आदि घटती जाती है, वह अवसर्पिणी काल कहलाता है। इसकी अवधि 10 कोड़ा-कोड़ी सागर होती है।

छ: भेद (Six Parts)-

अवसर्पिणी काल के 6 भेद निम्न हैं-

(1) सुषमा-सुषमा (2) सुषमा (3) सुषमा-दुषमा (4) दुषमा-सुषमा (5) दुषमा (6) दुषमा-दुषमा

इन 6 भेदों को इनके क्रम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम और षष्टम काल भी कहते हैं। षट्-कालों की अवधि, इनमें मनुष्यों की आयु, अवगाहना, आहार तथा भूमि की रचना का विवरण आगे तालिका में दिया गया है।

(1) सुषमा-सुषमा (प्रथम) काल (*Sushma-Sushma,* The First Spoke of Extreme Plentitude)- इस काल में सुख ही सुख होता है। इस काल में उत्तम भोग भूमि की व्यवस्था रहती है। इस काल में भूमि धूल, कंटक आदि से रहित होती है, विकलत्रय जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है, बैर रखने वाले जीव भी नहीं होते हैं और दुराचारी व व्यसनी जीव भी नहीं होते हैं। यहाँ दिन-रात का भेद नहीं होता है।

इस काल में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों की ऊँचाई 3 कोस (6000 धनुष) और आयु 3 पल्य होती है इनके शरीर मल-मूत्र व पसीने से रहित होते हैं, जन्म के 21 दिन में ही यौवन को प्राप्त हो जाते हैं, युगल (बालक-बालिका) का जन्म होता है, सन्तान का जन्म होते ही माता-पिता का मरण हो जाता है। मरण के समय पुरुष को छींक और महिला को जंभाई आती है तथा शरीर कर्पूर के समान विलीन हो जाता है। ये तीन दिन बाद हरड़ के बराबर आहार लेते हैं।

इस काल में परिवार, ग्राम, नगर की व्यवस्था नहीं होती है। जीवों की आवश्यकताओं की पूर्ति कल्पवृक्षों से हो जाती है। ये जीव अत्यन्त सुखी होते हैं। ये खेती आदि कोई कार्य नहीं करते हैं, अपितु भोग ही करते हैं। इसी वजह से इस काल को भोग भूमि का काल कहते हैं।

षट्कालों में आयु/ अवगाहना/ आहार, भूमि आदि का विवरण

क्र.	काल	अवधि	आयु		अवगाहना		आहार प्रमाण	आहार अन्तराल	भूमि रचना
			उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य			
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
१.	सुषमा-सुषमा	४ कोड़ा कोड़ी सागर	३ पल्य	२ पल्य	६००० धनुष	४००० धनुष	हरड़ के बराबर	३ दिन	उत्तम भोग भूमि
२.	सुषमा	३ कोड़ा कोड़ी सागर	२ पल्य	१ पल्य	४००० धनुष	२००० धनुष	बहेड़ा के बराबर	२ दिन	मध्यम भोग भूमि
३.	सुषमा-दुषमा	२ कोड़ा कोड़ी सागर	१ पल्य	१ पूर्व कोटि	२००० धनुष	५०० धनुष	आँवले के बराबर	१ दिन	जघन्य भोग भूमि
४.	दुषमा-सुषमा	४२,००० वर्ष कम १ कोड़ा कोड़ी सागर	१ पूर्व कोटि	१२० वर्ष	५०० धनुष	७ हाथ	-	प्रतिदिन	कर्मभूमि
५.	दुषमा	२१,००० वर्ष	१२० वर्ष	२० वर्ष	७ हाथ	३ १/२ हाथ	-	अनेकबार	कर्मभूमि
६.	दुषमा-दुषमा	२१,००० वर्ष	२० वर्ष	१५ वर्ष	३ १/२ हाथ	१ हाथ	-	बारम्बार	कर्मभूमि

इस काल का प्रमाण 4 कोड़ा–कोड़ी सागर होता है। इस काल में शरीर की ऊँचाई, आयु, बल आदि उत्तरोत्तर घटते जाते हैं।

कल्पवृक्ष (*Kalpavriksh*-Wish-Fulfilling Tree)-

जो जीवों को उनकी मन वांछित वस्तुएँ प्रदान करते हैं, वे कल्पवृक्ष कहलाते हैं। कल्पवृक्ष न तो वनस्पति हैं और न ही व्यन्तरदेव हैं। किन्तु इनकी विशेषता यह है कि ये पृथ्वीकायिक होते हुए भी जीवों को उनके पुण्य कर्म का फल देते हैं। भोग भूमि में निम्न दस प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं–

(1) **पानांग**-सुस्वादु और मधुर पेय (जल, दूध आदि) प्रदान करने वाले।

(2) **तूर्यांग**-विभिन्न प्रकार के वाद्य–यंत्र (वीणा, बांसुरी, मृदंग आदि) प्रदान करने वाले।

(3) **भूषणांग**-विभिन्न प्रकार के आभूषण (मुकुट, कुण्डल, अँगूठी आदि) प्रदान करने वाले।

(4) **वस्त्रांग**-उत्तमोत्तम नाना प्रकार के वस्त्र, आसन, बिछावन आदि प्रदान करने वाले।

(5) **भोजनांग**-उत्तम रस व व्यंजन से युक्त अनेक प्रकार के भोजन प्रदान करने वाले।

(6) **आलयांग**-सुन्दर व रमणीय भवन–मकान प्रदान करने वाले।

(7) **दीपांग**-चन्द्रमा के समान शीतल प्रकाश करने वाले दीप आदि प्रदान करने वाले।

(8) **भाजनांग**-बर्तन आदि पात्र प्रदान करने वाले।

(9) **मालांग**-उत्तम पुष्पों की माला प्रदान करने वाले।

(10) **तेजांग**-सूर्य–चन्द्रमा से भी कई गुणा अधिक कांति प्रदान करने वाले। इनके प्रकाश के कारण सूर्य, चन्द्रमा दिखाई नहीं देते हैं। वहाँ इसी कारणवश रात–दिन का भेद नहीं है।

(2) सुषमा (द्वितीय) काल (*Sushma*, The Second Spoke of Plentitude)-इस काल में सुख रहता है, मनुष्यों की ऊँचाई 2 कोस और आयु 2 पल्य होती है। इसमें मध्यम भोग भूमि की व्यवस्था रहती है। शिशु जन्म लेने के 35

दिन में ही यौवन को प्राप्त हो जाते हैं। दो दिन में एक बार बहेड़े के बराबर आहार लेते हैं। इस काल का प्रमाण 3 कोड़ा-कोड़ी सागर है। शेष बातें प्रथम काल के समान रहती हैं।

(3) सुषमा-दुषमा (तृतीय) काल (*Sushma-Dushma*, The Third Spoke of Plentitude-cum-Penury)-इस काल में अधिक सुख और अल्प दुःख रहता है, जघन्य भोग भूमि की व्यवस्था रहती हैए मनुष्यों की ऊँचाई 1 कोस और आयु 1 पल्य रहती है। शिशु जन्म के 49 दिन पश्चात् यौवन को प्राप्त हो जाता है। एक दिन के बाद दूसरे दिन आँवले के बराबर आहार लेते हैं। इस काल की अवधि 2 कोड़ा-कोड़ी सागर होती है और जीवों की ऊँचाई, आयु, बल आदि उत्तरोत्तर घटता जाता है। शेष बातें प्रथम काल की भांति रहती हैं।

जब इस काल में 1/8 पल्य मात्र काल शेष रह जाता है, तब 14 कुलकरों की उत्पत्ति शुरू हो जाती है। ये क्रमशः 1 से 14 तक उत्पन्न होते हैं। ये लोगों को विभिन्न भयों से मुक्ति दिलाते हैं और षट्-कर्म करके जीवन-यापन करना सिखलाते हैं। अंतिम कुलकर की आयु 1 कोटि पूर्व और ऊँचाई 525 धनुष होती है। इस समय कल्पवृक्ष समाप्त हो जाते हैं। यह भोग भूमि की समाप्ति और कर्म भूमि का प्रारम्भ का काल है।

(4) दुषमा-सुषमा (चतुर्थ) काल (*Dushma-Sushma*, The Fourth Spoke of Penury-cum-Plentitude)-इस काल में दुःख अधिक और सुख कम होता जाता है और इस काल में कर्म भूमि की व्यवस्था रहती है। मनुष्य षट्-कर्मों (असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प) से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। मनुष्यों की अधिकतम आयु 1 कोटि पूर्व और ऊँचाई 525 धनुष होती है। इस काल की अवधि 42,000 वर्ष कम 1 कोड़ा-कोड़ी सागर है।

इस काल में 63 शलाका पुरुष (24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलभद्र, 9 नारायण और 9 प्रतिनारायण) जन्म लेते हैं।

(5) दुषमा (पंचम) काल (*Dushma*, The Fifth Spoke of Penury)-यह काल दुःख वाला होता है। इसमें कर्म भूमि की व्यवस्था रहती है।

महावीर भगवान के मोक्ष जाने के 3 साल और साढ़े आठ माह पश्चात् अर्थात् सन् 523 ईसा पूर्व से यह काल प्रारम्भ हुआ है और आजकल यही काल चल रहा है । इसकी अवधि 21,000 वर्ष है। इसमें से अभी तक लगभग 2540[१] वर्ष की अवधि व्यतीत हो चुकी है। इस काल में मनुष्य की अधिकतम ऊँचाई 7 हाथ और अधिकतम आयु 120 वर्ष होती है। इस काल में पापों की बहुलता हो जाती है और मनुष्य की ऊँचाई, आयु, व बल घटता जाता है। इस काल में भरत क्षेत्र से मोक्ष नहीं जाते हैं।

इस काल में द्वादशांगरूपी श्रुतज्ञान का विच्छेद हो जाता है, तीर्थंकर आदि दिव्य आत्माओं का जन्म नहीं होता है और स्वर्गों से देवों का आवागमन बन्द हो जाता है।

इस काल के अन्त तक चतुर्विध संघ का अस्तित्व अवश्य बना रहता है। पंचम काल के अंत में कल्की राजा द्वारा वीरांगज मुनि के हाथ के प्रथम ग्रास को कर के रूप में मांगे जाने पर मुनि चतुर्विध संघ के साथ सल्लेखना ग्रहण करेंगे जिसके साथ ही धर्म का लोप हो जावेगा। जब इस पंचम काल के समाप्त होने में 3 साल और साढ़े आठ माह की अवधि शेष रह जावेगी, तब उसके पश्चात् इस आर्यखण्ड में चतुर्विध संघ, जैन धर्म, राजा और अग्नि का अभाव हो जावेगा और आगामी तृतीय काल में धर्म का उदय आर्यखण्ड में पुनः होगा।

(6) दुषमा-दुषमा (षष्टम) काल (*Dushma-Dushma*, The Sixth Spoke of Extreme Penury)-लगभग 18,460 वर्ष पश्चात् यह काल शुरू होगा। इस काल में कर्म भूमि की व्यवस्था रहती है और दुःख ही दुःख होता है। इस काल की अवधि भी 21,000 वर्ष है। इस काल में मनुष्यों की ऊँचाई अधिकतम साढ़े तीन हाथ और आयु 20 वर्ष है जो क्रमशः घटती जाती है।

इस काल में अग्नि, धर्म और राजा का अभाव हो जाने के कारण लोग कच्चा मांस खाने वाले एवं नग्न अवस्था में वनों में

१. ईसवीं सन् २०१४ तक इतने वर्ष हुए हैं।

घूमने वाले, महापापी, दरिद्री होते हैं। उनके घर, वस्त्र, कुटुम्ब आदि भी नहीं होता है तथा मनुष्य मरकर नरक व तिर्यंच गति में जाते हैं।

प्रलय (Dissolution)-अवसर्पिणी काल के षष्ठम काल में जब 49 दिन की अवधि शेष रह जाती है तब भयदायक घोर प्रलय काल शुरू होता है। प्रथम 7 दिन तक भयंकर वायु चलती है जो वृक्ष, पर्वत आदि को चूर्ण कर देती है। इससे सभी जीव बहुत दुःखी हो जाते हैं। तब कुछ देव व विद्याधर दयालु होकर पुण्यशाली मनुष्यों और तिर्यंचों के 72-72 युगलों और अन्य कुछ जीवों को वहाँ से ले जाकर विजयार्द्ध पर्वत की गुफा आदि स्थानों में रख देते हैं। इनकी ऊँचाई 1 हाथ और आयु 15 वर्ष होती है।

उस समय मेघों के समूह गंभीर गर्जन के साथ 7-7 दिन तक बर्फ (ठंडा जल), क्षार (खारा जल), विष, धूल, धुआँ, वज्र और अग्नि को बरसाते हैं। जिससे भरत क्षेत्र के भीतर आर्य खण्ड में चित्रा पृथ्वी के ऊपर स्थित वृद्धिगत एक योजन (4000 मील) ऊँची भूमि जल जाती है और इस प्रकार सब कुछ नष्ट हो जाता है। यही प्रलय है। यह प्रलय केवल भरत व ऐरावत क्षेत्रों के आर्य खण्डों में ही होती है।

उक्त 49 दिनों के साथ अवसर्पिणी काल समाप्त हो जाता है और अगले दिन श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से उत्सर्पिणी काल प्रारम्भ होता है।

4.3 उत्सर्पिणी काल (*Utsarpini Kal*-The Evolution Epoch)-

जिस काल में मनुष्यों की आयु, ऊँचाई, सुख, सम्पदा और बल आदि में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है, वह उत्सर्पिणी काल कहलाता है। इसकी अवधि 10 कोड़ा-कोड़ी सागर है। अवसर्पिणी काल की भांति इसके भी छः भेद हैं। मगर इनका क्रम उल्टा होता है। ये भेद निम्न हैं-

(1) दुषमा-दुषमा (2) दुषमा (3) दुषमा-सुषमा (4) सुषमा-दुषमा (5) सुषमा (6) सुषमा-सुषमा

(1) दुषमा-दुषमा (*Dushma-Dushma*)-इस काल के प्रारम्भ में जल, दूध, घृत, अमृत, रस और सुगन्धित पवन आदि 7 प्रकार के सुखदायी मेघों की वर्षा 7-7 दिन तक होती है। 49 दिनों की अवधि में सारी पृथ्वी शीतल वातावरण और लता आदि से समृद्ध हो जाती है। शीतल व सुगंधित वातावरण अनुभूत होने के कारण भाद्रपद सुदी पंचमी को मनुष्य व तिर्यंच गुफा से निकल आते हैं और कन्द-मूल-फल आदि खाकर जीवन-यापन करते हैं। इस काल के प्रारम्भ में ऊंचाई 1 हाथ व आयु 15 वर्ष होती है जो उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। इसकी अवधि 21,000 वर्ष है।

(2) दुषमा (*Dushma*)-इस काल के प्रारम्भ में आयु 20 वर्ष और ऊँचाई साढ़े तीन हाथ होती है जो उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। इस काल की अवधि भी 21000 वर्ष होती है। 20,000 वर्ष बीत जाने पर कुलकरों की उत्पति होती है। ये कुलकर 14 होते हैं। ये मनुष्यों को अग्नि जलाने, खाना पकाने आदि की समयोचित शिक्षा देते हैं। अंतिम कुलकर के समय विवाह पद्धति भी चालू हो जाती है। शेष बातें अवसर्पिणी काल के पंचम काल के समान रहती हैं।

(3) दुषमा-सुषमा (*Dushma-Sushma*)-इस काल के शुरू में मनुष्यों की आयु 120 वर्ष और ऊँचाई 7 हाथ होती है और इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है। इस काल में 63 शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं। शेष बातें अवसर्पिणी काल के चतुर्थ काल के समान रहती हैं।

(4) सुषमा-दुषमा (*Sushma-Dushma*)-इस काल के प्रारंभ में मनुष्यों की आयु 1 कोटि पूर्व और ऊँचाई 525 धनुष होती है जो क्रमशः बढ़ती जाती है। इस काल में कल्पवृक्षों की उत्पत्ति हो जाती है और जघन्य भोग भूमि रहती है। शेष बातें अवसर्पिणी काल के तृतीय काल के समान रहती हैं। अन्त में मनुष्यों की आयु बढ़ते-बढ़ते 1 पल्य और ऊँचाई 1 कोस तक हो जाती है।

(5) सुषमा (*Sushma*)–मध्यम भोग भूमि इस काल में होती है। मनुष्यों की आयु, ऊँचाई आदि क्रमशः बढ़ती रहती है। शेष बातें अवसर्पिणी काल के द्वितीय काल के समान होती हैं।

(6) सुषमा-सुषमा (*Sushma-Sushma*)–यह उत्तम भोग भूमि का काल है। इस काल में आयु ऊँचाई आदि उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं। शेष बातें अवसर्पिणी काल के प्रथम काल की भांति होती हैं।

4.4 विभिन्न क्षेत्रों में काल परिवर्तन (Changes of Time-Cycle in Different Regions)–

5 भरत तथा 5 ऐरावत क्षेत्रों के कुल 10 आर्य खण्डों में काल परिवर्तन होता है, शेष क्षेत्रों में नहीं होता है। जम्बूद्वीप के सात क्षेत्रों तथा अन्य में काल परिवर्तन की स्थिति निम्न प्रकार है–

(1) भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में काल परिवर्तन होता है।

(2) ऐरावत क्षेत्र के आर्य खण्ड में काल परिवर्तन होता है।

(3) हेमवत क्षेत्र में सदा जघन्य भोग भूमि (तृतीय कालवत्) रहती है।

(4) हैरण्यवत क्षेत्र में सदा जघन्य भोग भूमि (तृतीय कालवत्) रहती है।

(5) हरि क्षेत्र में सदा मध्यम भोग भूमि (द्वितीय कालवत्) रहती है।

(6) रम्यक क्षेत्र में सदा मध्यम भोग भूमि (द्वितीय कालवत्) रहती है।

(7) विदेह क्षेत्र में उत्तर कुरु और देव कुरु दोनों में सदा उत्तम भोग भूमि (प्रथम कालवत्) रहती है। पूर्व-विदेह और पश्चिम-विदेह क्षेत्र में 16-16 ऐसी कुल 32 कर्म भूमियाँ हैं। इन भूमियों के आर्य खण्डों में सदा चतुर्थ काल (दुषमा-सुषमा) के प्रारम्भवत् काल रहता है और म्लेच्छ खण्डों में जघन्य भोगभूमि (सुखमा-दुखमा कालवत्) रहती है।

(8) भरत व ऐरावत क्षेत्रों में स्थित सभी म्लेच्छ खण्डों एवं विजयार्ध पर्वतों के ऊपर काल परिवर्तन नहीं होता है और वहाँ सदा दुषमा-सुषमा काल के समान काल रहता है।

(9) लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र के दोनों किनारों पर स्थित 96 अन्तर्द्वीपों में जघन्य भोग भूमि (कुभोग भूमि) व्यवस्था रहती है।

(10) ऊर्ध्व लोक स्थित स्वर्गों में सदा प्रथम काल जैसे सुख से अधिक सुख और नरकों में सदा षष्ठम् काल जैसे दुःख से अधिक दुःख प्रवर्तमान रहता है।

कल्पकाल (*Kalpkal*)–अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों की अवधि 10-10 कोड़ा-कोड़ी सागर होती है। इन दोनों कालों का संयुक्त नाम कल्प-काल है। इसकी अवधि 20 कोड़ा-कोड़ी सागर है।

हुण्डावसर्पिणी काल (*Hundavasarpini Kal,* The Epoch of Extra-ordinary Events)–असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों के व्यतीत हो जाने पर हुण्डावसर्पिणी काल आता है। आजकल यही हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है। काल दोष के कारण इसमें कुछ विचित्र अपवाद अथवा असाधारण बातें होती हैं जो आगम के अनुकूल नहीं होती हैं। जैसे–

(1) चतुर्थ काल में 24 तीर्थंकर होते हैं और ये सभी चतुर्थ काल में ही मोक्ष जाते हैं किन्तु इस काल के प्रभाव से तीसरे काल के अंत में कल्पवृक्षों का अंत और कर्मभूमि का व्यवहार प्रारम्भ हो जाता है। इसी कारणवश भगवान आदिनाथ तीसरे काल में उत्पन्न होकर तीसरे काल में ही मोक्ष गये।

(2) तीर्थंकरों पर उपसर्ग नहीं होता है। किन्तु काल दोष के कारण तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी पर उपसर्ग हुए।

(3) सभी तीर्थंकरों का जन्म अयोध्या में होना चाहिए। किन्तु इस काल दोष के कारण केवल 5 तीर्थंकरों

(ऋषभनाथ, अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ और अनन्तनाथ) का जन्म ही अयोध्या में हुआ।

(4) सभी तीर्थंकरों का मोक्ष सम्मेद शिखर से होना चाहिए। किन्तु तीर्थंकर आदिनाथ-वासुपूज्य-नेमिनाथ और महावीर का मोक्ष अन्य स्थानों से हुआ।

(5) तीर्थंकरों के अन्तराल काल में कुछ अवधि के लिये धर्म नहीं रहा । नवमें से सौलहवें तीर्थंकर के अन्तराल काल में चतुर्विध संघ (मुनि, आर्यिका, श्रावक व श्राविका) का अभाव रहने से थोड़ी-थोड़ी अवधि के लिये धर्म का व्युच्छेद हुआ।

(6) चक्रवर्ती का मान भंग हुआ। चक्रवर्ती युद्ध में हारते नहीं हैं, लेकिन काल दोष के कारण चक्रवर्ती भरत अपने भ्राता बाहुबली से हार गये थे।

4.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-अवसर्पिणी काल से क्या आशय है ? इसकी कितनी अवधि है ?

प्रश्न 2-वर्तमान में कौन सा काल किस नाम से चल रहा है ?

प्रश्न 3-कल्पवृक्ष से क्या आशय है ?

प्रश्न 4-कल्पवृक्ष के भेदों के नाम बताइये ?

पाठ-5—कुलकर (मनु)ः एक समाज व्यवस्थापक
(*Kulkar (Manu)* Or Patriarch : A Society Founder)

5.1 कर्म-भूमि के प्रारंभ में आर्य पुरुषों को कुल या कुटुम्ब की भांति इकट्ठे रहकर जीने का उपदेश देने वाले महापुरुष कुलकर कहलाते हैं। प्रजा के जीवन-यापन के उपाय जानने के कारण ये मनु भी कहलाते हैं। प्रत्येक अवसर्पिणी काल के तीसरे काल के अंत होने में जब 1/8 पल्य शेष रह जाता है तब कुलकरों की उत्पत्ति प्रारंभ हो जाती है। इसी प्रकार उत्सर्पिणी काल के दूसरे काल के अंत में ये उत्पन्न होते हैं। इनमें से किसी को जाति स्मरण या किसी को अवधिज्ञान होता है।

कुलकरों की उत्पत्ति (Origin of Patriarchs)—इस भरतक्षेत्र के मध्यवर्ती आर्यखण्ड में अवसर्पिणी का तृतीय काल चल रहा था। इनमें आयु, अवगाहना, ऋद्धि, बल और तेज घटते-घटते जब इस तृतीय काल में पल्योपम के आठवें भाग मात्र काल शेष रह जाता है तब कुलकरों की उत्पत्ति प्रारंभ होती है।

प्रथम कुलकर का नाम 'प्रतिश्रुति' और उनकी देवी का नाम स्वयंप्रभा था। उनके शरीर की ऊँचाई एक हजार आठ सौ धनुष और आयु पल्य के दसवें भाग प्रमाण थी। उस समय आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन सायंकाल में भोगभूमियों को पूर्व दिशा में उदित होता हुआ चन्द्र और पश्चिम दिशा में अस्त होता हुआ सूर्य दिखलाई पड़ा। 'यह कोई आकस्मिक उत्पात है' ऐसा समझकर वे लोग भय से व्याकुल हो गये। उस समय वहाँ पर 'प्रतिश्रुति' कुलकर सबमें अधिक तेजस्वी और प्रजाजनों के हितकारी तथा जन्मांतर के संस्कार से अवधिज्ञान को धारण किये हुए सभी में उत्कृष्ट बुद्धिमान गिने जाते थे। उन्होंने कहा—हे भद्र पुरुषों! तुम्हें जो ये दिख रहे हैं वे सूर्य-चन्द्र नाम के ग्रह हैं, कालवश अब ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्षों की किरण समूह मंद पड़ गई हैं अतः इस समय ये दिखने लगे हैं, ये हमेशा ही आकाश में परिभ्रमण करते रहते हैं, अभी तक ज्योतिरंग कल्पवृक्ष से इनकी प्रभा तिरोहित होने से ये नहीं दिखते थे अतः तुम इनसे भयभीत मत होवो। प्रतिश्रुति के वचनों से उन लोगों को आश्वासन प्राप्त हुआ और उन लोगों ने उनके चरण कमलों की पूजा तथा स्तुति की।

प्रतिश्रुति कुलकर के स्वर्ग जाने के पश्चात् पल्य के अस्सीवें भाग अंतराल के व्यतीत हो जाने पर सुवर्ण सदृश कान्ति वाले 'सन्मति' नामक द्वितीय कुलकर उत्पन्न हुए। इनके शरीर की ऊँचाई एक हजार तीन सौ धनुष एवं आयु 'अमम' के बराबर संख्यात वर्षों की थी। उस समय ज्योतिरंग कल्पवृक्ष नष्टप्रायः हो गये और सूर्य के अस्त होने पर अंधकार तथा तारागणों को देखकर 'ये अत्यन्त भयानक/अदृष्टपूर्व उत्पात प्रकट हुए हैं' इस प्रकार सभी मनुष्य व्याकुल होकर कुलकर के निकट आये। तब सन्मति कुलकर ने कहा कि कालवश ज्योतिरंग कल्पवृक्षों की किरणें सर्वथा प्रणष्ट हो जाने से इस समय आकाश में अंधकार और ताराओं का समूह दिख रहा है। तुम लोगों को इनकी ओर से भय का कोई कारण नहीं है। ये तो सदा ही रहते थे किन्तु कल्पवृक्षों की किरणों से प्रकट नहीं दिखते थे। ये ग्रह, तारा और नक्षत्र तथा सूर्य-चन्द्रमा जम्बूद्वीप में नित्य ही सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा किया करते हैं। तब कुलकर के वचनों से वे सब निर्भय हो गये और उनकी पूजा करके स्तुति करने लगे।

इन कुलकर के स्वर्ग जाने के बाद असंख्यात करोड़ वर्षों का अन्तराल बीत जाने पर इस भरत क्षेत्र में तीसरे कुलकर उत्पन्न हुए। इनका नाम 'क्षेमंकर' था, शरीर की ऊँचाई आठ सौ धनुष और आयु 'अटट' प्रमाण वर्षों बराबर थी, वर्ण सुवर्ण सदृश और सुनंदा नामक महादेवी थी। उस समय व्याघ्र आदि तिर्यंच जीव क्रूरता को प्राप्त हो गये थे, तब भोगभूमिज मनुष्य उनसे भयभीत होकर क्षेमंकर मनु के पास पहुँचे और बोले—हे देव! ये सिंह, व्याघ्रादि पशु बहुत शान्त थे, जिन्हें हम लोग अपनी गोद में बिठाकर अपने हाथ से खिलाते थे, वे पशु आज हम लोगों को बिना किसी

कारण ही सींगों से मारना चाहते हैं, मुख फाड़कर डरा रहे हैं हम क्या करें? तब कुलकर बोले—हे भद्र पुरुषों! अब तुम्हें इन पर विश्वास नहीं करना चाहिए, इनकी संगति छोड़ देना चाहिए, ये कालदोष से विकार को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार से क्षेमंकर कुलकर के वचनों से उन लोगों ने सींग और दाढ़ वाले पशुओं का संसर्ग छोड़ दिया, केवल निरुपद्रवी गाय, भैंस आदि से संसर्ग रखने लगे।

इनकी आयु पूर्ण होने के पश्चात् असंख्यात करोड़ वर्षों का अन्तराल बीत जाने पर सज्जनों में अग्रसर ऐसे 'क्षेमंधर' नामक चौथे कुलकर उत्पन्न हुए। इनकी आयु 'तुटिक' प्रमाण वर्षों की थी और शरीर की ऊँचाई सात सौ पचहत्तर धनुष की थी, इनका वर्ण स्वर्ण के सदृश और इनकी देवी का नाम विमला था। उस समय क्रूरता को प्राप्त हुए सिंहादि मनुष्यों के मांस को खाने लगे, तब सिंहादि के भय से भयभीत हुए भोगभूमिजों को क्षेमंधर मनु ने उनसे सुरक्षित करने के लिए दण्डादि रखने का उपदेश दिया।

इनके अनंतर असंख्यात करोड़ वर्षों के बीत जाने पर प्रजा के पुण्योदय से 'सीमंकर' नाम के पांचवें कुलकर हुए। इनकी आयु 'कमल' प्रमाण वर्षों की एवं शरीर की ऊँचाई सात सौ पचास धनुष की थी, वर्ण स्वर्ण के सदृश एवं 'मनोहरी' नाम की प्रसिद्ध देवी थी। इनके समय कल्पवृक्ष अल्प हो गये और फल भी अल्प देने लगे थे, इस कारण मनुष्यों में अत्यन्त क्षोभ होने लगा था। परस्पर में इन भोगभूमिजों के विसंवाद को देखकर सीमंकर मनु ने कल्पवृक्षों की सीमा नियत करके परस्पर संघर्ष को रोक दिया।

5.2 भोगभूमि की दण्ड व्यवस्था (Penological System of the Land of Enjoyment)—

उपर्युक्त प्रतिश्रुति आदि पाँच कुलकरों ने उन भोगभूमिजों के अपराध में 'हा'/हाय! बुरा कार्य किया, ऐसी दण्ड की व्यवस्था की थी, बस! इतना कहने मात्र से ही प्रजा आगे अपराध नहीं करती थी।

पाँचवें कुलकर के स्वर्ग गमन के पश्चात् असंख्यात करोड़ वर्षों का अन्तराल व्यतीत हो जाने पर 'सीमंधर' नामक छठे कुलकर उत्पन्न हुए। ये 'नलिन' प्रमाण वर्षों की आयु के धारक और सात सौ पच्चीस धनुष ऊँचे थे, इनकी देवी का नाम 'यशोधरा' था। इनके समय में कल्पवृक्ष अत्यन्त थोड़े रह गये और फल भी बहुत कम देने लगे इसीलिए मनुष्यों के बीच नित्य ही कलह होने लगा, तब इन कुलकर ने कल्पवृक्षों की सीमाओं को अन्य अनेक वृक्ष तथा छोटी-छोटी झाड़ियों से चिन्हित कर दिंया।

इनके बाद फिर असंख्यात करोड़ वर्षों का अन्तराल बीत जाने पर 'विमलवाहन' नामक सातवें कुलकर उत्पन्न हुए। इनकी आयु 'पद्म' प्रमाण वर्षों की थी और शरीर की ऊँचाई सात सौ धनुष प्रमाण थी, वर्ण स्वर्ण के सदृश और 'सुमति' नाम की महादेवी थी। इस समय गमनागमन से पीड़ा को प्राप्त हुए भोगभूमिज मनुष्य इन कुलकर के उपदेश से हाथी, घोड़े आदि पर सवारी करने लगे और अंकुश, पलान आदि से उन पर नियंत्रण करने लगे।

सातवें कुलकर के स्वर्ग जाने के बाद असंख्यात करोड़ वर्षों का अन्तराल बीत जाने पर 'चक्षुष्मान्' नामक आठवें कुलकर उत्पन्न हुए। इनकी आयु 'पद्मांग' प्रमाण और ऊँचाई छह सौ पचहत्तर धनुष की थी, इनकी देवी का नाम 'धारिणी' था। इनके समय से पहले के मनुष्य अपनी संतान का मुख नहीं देख पाते थे, उत्पन्न होते ही माता-पिता की मृत्यु हो जाती थी परन्तु अब वे क्षणभर पुत्र का मुख देखकर मरने लगे, उनके लिए यह नई बात थी अतएव भयभीत हुए 'चक्षुष्मान्' कुलकर के पास आये, तब इन्होंने उपदेश दिया कि ये तुम्हारे पुत्र-पुत्री हैं, इनके पूर्ण चन्द्र के समान सुन्दर मुख को देखो। इस प्रकार मनु के उपदेश से स्पष्टरूप से अपने बालकों के मुख को देखकर वे भोगभूमिज तत्काल ही आयु से रहित होकर विलीन हो जाते थे।

आठवें कुलकर के स्वर्गगमन के पश्चात् करोड़ों वर्षों का अन्तराल व्यतीत होने पर 'यशस्वान्' नाम के नौवें कुलकर उत्पन्न हुए। इनकी आयु 'कुमुद' प्रमाण वर्षों की थी और शरीर की ऊँचाई छह सौ पचास धनुष की थी, इनके

'कांतिमाला' नाम की देवी थी। उस समय ये कुलकर प्रजा को अपनी संतान के नामकरण के उत्सव का उपदेश देते थे। तब भोगभूमिज नामकरण करके आशीर्वाद देकर थोड़े समय रहकर आयु के क्षीण होने पर विलीन हो जाते थे।

नवम कुलकर के स्वर्गस्थ होने पर करोड़ों वर्षों का अन्तराल व्यतीत कर दशवें 'अभिचन्द्र' नाम के कुलकर हुए। इनकी आयु 'कुमुदांग' प्रमाण थी और शरीर की ऊँचाई छह सौ पच्चीस धनुष की थी। इनकी देवी का नाम 'श्रीमती' था। ये बालकों के रुदन को रोकने के निमित्त उपदेश देते थे कि तुम लोग इन्हें रात्रि में चन्द्रमा को दिखाकर क्रीड़ा करावो और बोलना सिखाओ, यत्नपूर्वक इनकी रक्षा करो। इनके उपदेश से भोगभूमिज अपनी सन्तानों के साथ वैसा ही व्यवहार करके आयु के अन्त में विलीन होते थे।

5.3 इन कुलकरों की दण्ड-व्यवस्था (Penological System of These Patriarchs) —

सीमंकर आदि पाँच कुलकर क्षोभ से आक्रांत उन युगलों के शिक्षण के निमित्त दण्ड के लिए 'हा'/हाय! बुरा किया। 'मा'/अब ऐसा मत करना, ऐसे खेद प्रकाशक और निषेधसूचक दो शब्दों का उपयोग करते हैं और इतने मात्र से ही प्रजा अपराध छोड़ देती है।

अभिचन्द्र कुलकर के स्वर्गारोहण के पश्चात् उतना ही अन्तराल व्यतीत होने के बाद 'चन्द्राभ' नाम के ग्यारहवें कुलकर उत्पन्न हुए। इनकी आयु 'नयुत' प्रमाण वर्षों की और शरीर की अवगाहना छह सौ धनुष प्रमाण थी। इनकी देवी का नाम 'प्रभावती' था। इनके समय में अतिशीत, तुषार और अतिवायु चलने लगी थी, शीत वायु से अत्यन्त दुःख पाकर वे भोगभूमिज मनुष्य तुषार से ढके हुए चन्द्र आदि ज्योति समूह को नहीं देख पाते थे। इस कारण इनके भय को दूर करते हुए चन्द्राभ कुलकर ने उपदेश दिया कि भोगभूमि की हानि होने पर अब कर्मभूमि निकट आ गई है। काल के विकार से यह स्वभाव प्रवृत्त हुआ है, अब यह तुषार सूर्य की किरणों से नष्ट होगा, यह सुनकर प्रजाजन सूर्य की किरणों से शैत्य–ठण्डी को नष्ट करते हुए कुछ दिनों तक अपनी सन्तान के साथ जीवित रहने लगे।

चन्द्राभ कुलकर के स्वर्ग जाने के बाद अपने योग्य अन्तर को व्यतीत कर 'मरुदेव' नामक बारहवें कुलकर उत्पन्न हुए। इनकी आयु 'नयुतांग' वर्ष प्रमाण और शरीर की ऊँचाई पाँच सौ पचहत्तर धनुष की थी। इनकी देवी का नाम 'सत्या' था। इनके समय में बिजली युक्त मेघ गरजते हुए बरसने लगे। उस समय पूर्व में कभी नहीं देखी गई कीचड़ युक्त जलप्रवाह वाली नदियों को देखकर अत्यन्त भयभीत हुए भोगभूमिज मनुष्यों को मरुदेव कुलकर काल के विभाग को बतलाते हैं अर्थात् काल के विकार से अब कर्मभूमि तुम्हारे निकट है। अब तुम लोग नदियों में नौका डालकर इन्हें पार करो, पहाड़ों पर सीढ़ियों को बनाकर चढ़ो और वर्षा काल में छत्रादि को धारण करो। उन कुलकर के उपदेश से सभी जन नदियों को पारकर, पहाड़ों पर चढ़कर और वर्षा का निवारण करते हुए पुत्र–कलत्र (स्त्री) के साथ जीवित रहने लगे।

("पहले यहाँ युगल संतान उत्पन्न होती थी परन्तु इसके आगे युगल सन्तान की उत्पत्ति को दूर करने की इच्छा से ही मानों मरुदेव ने 'प्रसेनजित्' नाम के पुत्र को उत्पन्न किया था। इसके पूर्व भोगभूमिज मनुष्यों के शरीर में पसीना नहीं आता था परन्तु प्रसेनजित् का शरीर पसीने के कणों से सुशोभित हो उठता था। वीर मरुदेव कुलकर ने अपने पुत्र प्रसेनजित् का विवाह–विधि के द्वारा किसी प्रधान कुल की कन्या से विवाह कराया था। अन्त में मरुदेव पल्य के करोड़वें भाग तक जीवित रहकर स्वर्ग चले गये। तदनन्तर ये 'प्रसेनजित्' तेरहवें कुलकर कहलाये और इन्होंने 'एक करोड़ पूर्व' की आयु वाले, जन्म काल में बालकों के नाल काटने की व्यवस्था करने वाले 'नाभिराज' नामक चौदहवें कुलकर को उत्पन्न किया था और स्वयं पल्य के दस लाख करोड़वें भाग जीवित रहकर स्वर्गस्थ हो गये थे।")

इन बारहवें कुलकर के स्वर्गस्थ होने के बाद समय व्यतीत होने पर जब कर्मभूमि की स्थिति धीरे–धीरे समीप आ रही थी, तब प्रसेनजित् नाम के तेरहवें कुलकर उत्पन्न हुए। इनकी आयु एक 'पर्व' प्रमाण थी और शरीर की ऊँचाई पाँच सौ पचास धनुष की थी। इनके 'अभिमती' नाम की देवी थी। इनके समय में बालकों का जन्म जरायु पटल में वेष्टित

होने लगा था। 'यह क्या है' इस प्रकार के भय से संयुक्त मनुष्यों को इन कुलकर ने जरायु पटल को दूर करने का उपदेश दिया था। उनके उपदेश से सभी भोगभूमिज प्रयत्नपूर्वक उन शिशुओं की रक्षा करने लगे थे।

इनके बाद ही 'नाभिराज' नाम के चौदहवें कुलकर उत्पन्न हुए थे। इनकी आयु 'एक करोड़ पूर्व' वर्ष की थी और शरीर की ऊँचाई पाँच सौ पच्चीस धनुष की थी, इनकी 'मरुदेवी' नाम की पत्नी थी। इनके समय बालकों का नाभिनाल अत्यन्त लम्बा होने लगा था, इसलिए नाभिराय कुलकर उसके काटने का उपदेश देते हैं और वे भोगभूमिज मनुष्य वैसा ही करते हैं। उस समय कल्पवृक्ष नष्ट हो गये, बादल गरजने लगे, मेघ बरसने लगे, पृथ्वी पर स्वभाव से ही उत्पन्न हुए अनेकों वनस्पतियाँ—वनस्पतिकायिक, धान्य आदि दिखलाई देने लगे। धीरे-धीरे बिना बोये ही धान्य सब ओर पैदा हो गये। उनके उपयोग को न समझती हुई प्रजा कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने से अत्यन्त क्षुधा वेदना से व्याकुल हुई नाभिराज कुलकर की शरण में आकर बोली—हे देव! मन-वांछित फल को देने वाले कल्पवृक्षों के बिना हम पुण्यहीन अनाथ लोग किस प्रकार से जीवित रहें? जो ये वृक्ष, शाखा, अंकुर, फल आदि उत्पन्न हुए हैं, इनमें कौन तो खाने योग्य हैं और कौन नहीं है? इनका क्या उपयोग है, यह सब हमें बतलाइये। इस प्रकार के दीन वचनों को सुनकर नाभिराज बोले—हे भद्र पुरुषों! ये वृक्ष तुम्हारे योग्य हैं और ये विषवृक्ष छोड़ने योग्य हैं। तुम लोग इन धान्यों को खाओ, गाय का दूध निकालकर पीयो। ये इक्षु के पेड़ हैं, इन्हें दाँतों से या यंत्रों से पेल कर इनका रस पियो। इस प्रकार से महाराजा नाभिराज ने मनुष्यों की आजीविका के अनेकों उपायों को बताकर उन्हें सुखी किया और हाथी के गंडस्थल पर मिट्टी की थाली आदि अनेक प्रकार के बर्तन बनाकर उन पुरुषों को दिये और बनाने का उपदेश भी दिया। उस समय वहाँ कल्पवृक्षों की समाप्ति हो चुकी थी, प्रजा का हित करने वाले केवल नाभिराज ही उत्पन्न हुए थे इसलिए वे कल्पवृक्ष के समान प्रजा का हित करते थे।

5.4 चौदह कुलकर (Fourteen Patriarchs)-

क्र.सं.	नाम	देवी	उत्सेध (शरीर की अवगाहना)	शिक्षा विषय
1.	प्रतिश्रुति	स्वयंप्रभा	1800 ध.	चन्द्र सूर्योदय से भय मिटाना
2.	सन्मति	यशस्वती	1300 ध.	अंधकार व तारागण से भय हटाना
3.	क्षेमंकर	सुनन्दा	800 ध.	व्याघ्रादि हिंस्र जन्तु की संगति त्याग
4.	क्षेमंधर	विमला	775 ध.	सिंहादि से रक्षण के उपाय
5.	सीमंकर	मनोहरी	750 ध.	कल्पवृक्ष-सीमा
6.	सीमंधर	यशोधरा	725 ध.	तरु गुच्छादि चिन्हित सीमा
7.	विमलवाहन	सुमती	700 ध.	हाथी आदि की सवारी आदि का उपदेश
8.	चक्षुष्मान्	धारिणी	675 ध.	बालक-मुखदर्शन
9.	यशस्वी	कान्तमाला	650 ध.	बालक-नामकरण
10.	अभिचन्द्र	श्रीमती	625 ध.	शिशुरोदन निवारण चन्द्र आदि दिखाना
11.	चन्द्राभ	प्रभावती	600 ध.	शैत्यादि रक्षणोपाय
12.	मरुदेव	सत्या	575 ध.	नावादि द्वारा गमन
13.	प्रसेनजित्	अमितमती	550 ध.	जरायु पटलापहरण
14.	नाभिराज	मरुदेवी	525 ध.	नाभिनालकर्तन

5.5 चौदह कुलकर कहाँ से आये थे (From where Fourteen Patriarchs Arrived ?) —

प्रतिश्रुति आदि को लेकर नाभिराजपर्यंत ये सब चौदह कुलकर अपने पूर्व भव में विदेह क्षेत्र में महाकुल में राजकुमार थे, उन्होंने उस भव में पुण्य बढ़ाने वाले पात्रदान तथा यथायोग्य व्रताचरणरूपी अनुष्ठानों के द्वारा सम्यग्दर्शन प्राप्त होने से पहले ही भोगभूमि की मनुष्य आयु बाँध ली थी, बाद में श्री जिनेन्द्र देव के समीप रहने से क्षायिक सम्यग्दर्शन तथा श्रुतज्ञान की प्राप्ति हुई थी जिसके फलस्वरूप आयु के अंत में मरकर वे इस भरतक्षेत्र में उत्पन्न हुए थे। इन चौदह कुलकरों में से कितने ही कुलकरों को जातिस्मरण था और कितने ही अवधिज्ञानरूपी नेत्र के धारक थे इसलिए उन्होंने विचार कर प्रजा के लिए ऊपर कहे हुए कार्यों का उपदेश दिया था। ये प्रजा के जीवन को जानने से 'मनु' तथा आर्य पुरुषों को कुल की तरह इकट्ठे रहने का उपदेश देने से 'कुलकर', अनेकों वंशों को स्थापित करने से 'कुलंधर' तथा युग की आदि में होने से 'युगादि पुरुष' भी कहे गये थे।

अंतिम कुलकर महाराजा नाभिराज की महारानी मरुदेवी से भगवान् वृषभदेव का जन्म हुआ था। ये ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर भी थे और पन्द्रहवें कुलकर भी माने गये थे। इसी प्रकार ऋषभदेव की रानी यशस्वती ने भरत को जन्म दिया था। ये भरत महाराज चक्रवर्ती भी थे और सोलहवें कुलकर भी कहलाते थे। इस तरह ये सोलह कुलकर भी माने जाते थे।

इन कुलकरों की दण्ड व्यवस्था (Penology of these Patriarchs) — ग्यारहवें से लेकर शेष कुलकरों ने 'हा' 'मा' और 'धिक्' इन तीन दण्डों की व्यवस्था की थी अर्थात् 'खेद है', अब 'ऐसा नहीं करना', तुम्हें 'धिक्कार' है जो रोकने पर भी अपराध करते हो।

भरतचक्री का दण्ड (Penology of Bharat Chakravartee) — भरत चक्रवर्ती के समय लोग अधिक दोष या अपराध करने लगे थे इसलिए उन्होंने वध, बन्धन आदि शारीरिक दण्ड देने की रीति भी चलाई थी।

5.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-कुलकर से क्या आशय है ? ये कितने होते हैं ?

प्रश्न 2-प्रथम और अंतिम कुलकर का नाम बताइये ?

प्रश्न 3-कुलकरों की दण्ड व्यवस्था का उल्लेख कीजिए ?

प्रश्न 4-भरत चक्री की दण्ड व्यवस्था क्या थी ?

पाठ-6–शलाका पुरुष (*Shalaka Purushas* : The Great Personages)

6.1 जो पुरुष पीड़ित किये जाने पर भी अपशब्द या कठोर वचन नहीं बोलते हैं और रत्न–त्रय धारण करके अपनी आत्मा का कल्याण करते हैं, वे महापुरुष कहलाते हैं। जैन आगम में 169 महापुरुष बताये गये हैं। इनमें 63 शलाका पुरुष हैं और 106 अन्य महापुरुष हैं। इन्हें उत्तमपुरुष, दिव्यपुरुष अथवा पुराणपुरुष भी कहते हैं।

शलाका पुरुष (*Shalaka Purushas*)–धर्मतीर्थ सेवन करने वाले अत्यन्त पुण्यवान पुरुष शलाका पुरुष कहलाते हैं। भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में अंतिम कुलकर के पश्चात् पुण्योदय से मनुष्यों में श्रेष्ठ और लोक में प्रसिद्ध 63 शलाका पुरुष होने लगते हैं। ये हैं–24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 नारायण और 9 प्रतिनारायण।

ये सभी शलाका पुरुष वज्रवृषभ–नाराच–संहनन सहित उत्तम शरीर के धारी होते हैं। इनके दाढ़ी–मूँछ के बाल नहीं होते हैं। इनके निहार (मल–मूत्र) भी नहीं होता है।

भरत क्षेत्र की भाँति ऐरावत क्षेत्र में भी 63 शलाका पुरुष होते हैं। भरत व ऐरावत क्षेत्रों के आर्यखण्डों में ये शलाका पुरुष प्रत्येक अवसर्पिणी के चतुर्थ काल में और उत्सर्पिणी के तृतीय काल में होते हैं। विदेह क्षेत्र के 32 आर्यखण्डों में ये तीर्थंकर आदि शलाका पुरुष होते रहते हैं।

6.2 शलाका पुरुषों का विवरण निम्न प्रकार है:-

1. तीर्थंकर (24) (Teerthankars)- इनके नाम व परिचय अगले पाठ में दिये गये हैं।

6.3 चक्रवर्ती (12) (Chakravartees or Universal Monarchs Or Emperors)-

ये छः खण्डों (1 आर्य और 5 म्लेच्छ) के अधिपति होते हैं, 32,000 मुकुटबद्ध राजाओं के स्वामी होते हैं, इनके 14 रत्न (चक्र, दण्ड, मणि आदि) और 9 निधियाँ (काल, पटह, शंख, नाना रत्न आदि) होती हैं। इनके पट–रानी सहित 96,000 रानियाँ होती हैं। पट–रानी बंध्या होती है। वर्तमान अवसर्पिणी काल में 12 चक्रवर्ती हुए हैं जिनके नाम निम्न हैं:–

(1) भरत	(2) सगर	(3) मघवा
(4) सनत्कुमार	(5) शांतिनाथ	(6) कुंथुनाथ
(7) अरनाथ	(8) सुभौम	(9) पद्म
(10) हरिषेण	(11) जयसेन	(12) ब्रह्मदत्त

यदि चक्रवर्ती संयम के साथ मरण करता है तो स्वर्ग अथवा मोक्ष जाता है, अन्यथा नरक में जाता है। इन चक्रवर्तियों में से मघवा और सनत्कुमार स्वर्ग गये हैं, सुभौम और ब्रह्मदत्त नरक गये हैं और शेष 8 मोक्ष गये हैं।

6.4 बलदेव (9) (Baldevs)-

ये नारायण के बड़े भाई होते हैं। इन दोनों में प्रगाढ़ स्नेह होता है। इन्हें बलभद्र या हलधर भी कहते हैं। ये बल में श्रेष्ठ अर्थात् बलशाली और भद्र परिणाम वाले होते हैं। इनके चार महारत्न होते हैं। इन रत्नों के नाम हैं – हलायुध, बाण, गदा और माला। इनके अपार वैभव होता है, इनके 8000 रानियाँ होती हैं। ये अत्यन्त पराक्रमी, रूपवान व यशस्वी होते हैं। इनके नाम हैं:–

(1) विजय	(2) अचल	(3) धर्म
(4) सुप्रभ	(5) सुदर्शन	(6) नन्दीषेण
(7) नंदिमित्र	(8) राम	(9) बलराम

ये मरकर स्वर्ग या मोक्ष जाते हैं। उपरोक्त 9 बलदेवों में से बलराम स्वर्ग गये हैं और शेष 8 मोक्ष गये हैं।

6.5 नारायण (9) (Narayans)-

ये प्रतिनारायण को मारकर तीन खण्डों (एक आर्य व दो म्लेच्छ खण्ड) के स्वामी होते हैं। इन्हें वासुदेव भी कहते हैं। ये अर्द्धचक्री होते हैं। इनके सात रत्न (चक्र, गदा, खड्ग, शक्ति, धनुष, शंख और महामणि) होते हैं, 16 हजार रानियाँ होती हैं, इनका वैभव अपार होता है। ये बलभद्र के छोटे भाई होते हैं। लेकिन भव्य होने के कारण बाद में मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। इनके नाम हैं:-

(1) त्रिपृष्ठ (2) द्विपृष्ठ (3) स्वयंभू
(4) पुरुषोत्तम (5) पुरुष सिंह (6) पुरुष-पुण्डरीक
(7) पुष्पदंत (8) लक्ष्मण (9) श्रीकृष्ण

6.6 प्रतिनारायण (9) (Prati-Narayans)-

जो कर्म भूमि के नीचे के तीन खण्डों (एक आर्य व दो म्लेच्छ खण्ड) को जीतते हैं, प्रतिनारायण कहलाते हैं। इन्हें प्रतिवासुदेव भी कहते हैं। ये अर्द्धचक्री नारायण के जन्मजात शत्रु होते हैं। इनके द्वारा नारायण पर चक्र चलाने पर चक्र नारायण की तीन परिक्रमा करके नारायण के हाथ में आ जाता है। नारायण इस चक्र को प्रतिनारायण पर चला देते हैं जिससे उनकी मृत्यु हो जाती है और प्रतिनारायण की सारी विभूति व राज्य नारायण का हो जाता है।

इनके नाम हैं:-

(1) अश्वग्रीव (2) तारक (3) मेरक
(4) मधुकैटभ (5) निशुम्भ (6) बलि
(7) प्रहरण (8) रावण (9) जरासंध

परस्पर मिलाप (Mutual Meeting)-किसी भी एक समय में इन शलाका पुरुषों में से प्रत्येक 1-1 ही हो सकते हैं अर्थात् 2 या अधिक तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि शलाका पुरुष एक समय में नहीं हो सकते हैं। इस प्रकार एक तीर्थंकर का दूसरे तीर्थंकर से अथवा एक चक्रवर्ती आदि का दूसरे चक्रवर्ती आदि से मिलाप नहीं हो सकता है। चक्रवर्ती और नारायण/प्रतिनारायण का भी मिलाप नहीं होता है। बलदेव, नारायण और प्रतिनारायण का मिलाप होता है।

अधिकतम शलाका पुरुष (Maximum Great Personages)-एक कर्म-भूमि में 63 शलाका पुरुष होते हैं। अढ़ाई-द्वीप की 10 कर्म भूमियों में होने वाले शलाका पुरुषों की अधिकतम संख्या (63×10)=630 है। पांच विदेह क्षेत्रों की 160 कर्म-भूमियों में शलाका पुरुष होते रहते हैं।

6.7 अन्य महापुरुष (Other Great Persons)-

63 शलाका पुरुषों के अतिरिक्त 106 महापुरुष (दिव्यपुरुष) और होते हैं। ये निम्न हैं:-

(1) तीर्थंकरों के पिता -24 (2) तीर्थंकरों की माता - 24
(3) रुद्र - 11 (4) नारद - 9
(5) कामदेव - 24 (6) कुलकर - 14

1. तीर्थंकरों के पिता (24) (Fathers of Teerthankars)-तीर्थंकर चौबीस होते हैं। इनके पिता भी 24 हुए। ये भी दिव्यपुरुष होते हैं।

2. तीर्थंकरों की माता (24) (Mothers of Teerthankars)-चौबीस तीर्थंकरों की मातायें भी 24 होती हैं। इन्हें भी दिव्य महान आत्माओं में गिना जाता है। इनके तीर्थंकर अकेली संतान होती है।

6.8 रुद्र (11) (Rudras)-

जिन दीक्षा लेने के उपरान्त कर्म के तीव्र उदय से विषय-वासना वश संयम से भ्रष्ट होकर रौद्र कार्य करने वाले को रुद्र कहते हैं। इन्हें 11 अंगों का ज्ञान हो जाता है। लेकिन ये दसवें पूर्व (विद्यानुवाद) का अध्ययन करते समय विद्याओं के ग्रहण करने के निमित्त से तप से भ्रष्ट होकर मिथ्यात्व को ग्रहण कर नरक गामी होते हैं। इनके नाम हैं:-

(1) भीमावलि	(2) जितशत्रु	(3) रुद्र
(4) वैश्वानर	(5) सुप्रतिष्ठ	(6) अचल
(7) पुंडरीक	(8) अजितंधर	(9) अजित नाभि
(10) पीठ	(11) सात्यकि पुत्र	

6.9 नारद (9) (Narads)-

ये कलह प्रिय और युद्ध प्रिय होते हैं। एक स्थान की बात को दूसरे स्थान पर पहुँचाने में कुशल होते हैं। नारायण व प्रतिनारायण को लड़ाने में अहम् भूमिका निभाते हैं। बाल ब्रह्मचारी होते हैं। धर्म-कार्य में तत्पर रहते हुए भी हिंसा व कलह आदि में रुचि रखने के कारण नरक गामी होते हैं। जिनेन्द्र भक्ति के प्रभाव से शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। इनके नाम निम्न हैं:-

(1) भीम	(2) महाभीम	(3) रुद्र
(4) महारुद्र	(5) काल	(6) महाकाल
(7) दुर्मुख	(8) नरमुख	(9) अधोमुख

6.10 कामदेव (24) (Kamdevs)-

तत्कालीन पुरुषों में सबसे सुन्दर आकृति अर्थात् अनुपम सौन्दर्य को धारण करने वाले कामदेव होते हैं। ये उसी भव से मोक्ष जाते हैं। अन्य मत के अनुसार ये मोक्ष/स्वर्ग जाते हैं। इनके नाम हैं:-

(1) बाहुबली	(2) प्रजापति	(3) श्रीधर
(4) दर्शनभद्र	(5) प्रसेन चन्द्र	(6) चन्द्रवर्ण
(7) अग्नि मुख	(8) सनत्कुमार	(9) वत्सराज
(10) कनक प्रभ	(11) मेघप्रभ	(12) शांतिनाथ
(13) कुंथुनाथ	(14) अरनाथ	(15) विजयराज
(16) श्रीचंद	(17) नलराज	(18) हनुमान
(19) बलिराज	(20) वसुदेव	(21) प्रद्युम्न
(22) नागकुमार	(23) जीवन्धर	(24) जम्बू स्वामी

6.11 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-शलाका पुरुष से क्या आशय है ? ये कौन-कौन से होते हैं ?

प्रश्न 2-बारह चक्रवर्तियों के नाम लिखिए ?

प्रश्न 3-नौ नारायण कौन-कौन से हैं ?

इकाई – 2 जैन तीर्थंकरों की शाश्वत परम्परा
(The Eternal Tradition of Jain Teerthankars)

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है-

(1) शाश्वत तीर्थंकर परम्परा

(2) आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव

(3) तीर्थंकर नेमिनाथ

(4) तीर्थंकर पार्श्वनाथ

पाठ-1 – शाश्वत तीर्थंकर परम्परा (The Eternal Teerthankar Tradition)

1.1 संसार सागर को स्वयं पार करने वाले और दूसरों को पार करने का मार्ग बताने वाले तथा धर्म तीर्थ के प्रवर्तक महापुरुष तीर्थंकर कहलाते हैं। ये स्वयं तो मोक्ष प्राप्त करते ही हैं, अन्यों को भी मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग बताते हैं। तीर्थंकर बनने के संस्कार 16 कारण भावनाओं के भाने से उत्पन्न होते हैं। मनुष्य भव में किसी तीर्थंकर या केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में ही ऐसा होता है। ऐसे व्यक्ति प्रायः देवगति में जाते हैं। यदि पूर्व में नरकायु का बन्ध हुआ है तो वह जीव केवल प्रथम नरक तक में ही जन्म लेता है और बाद के भव में मनुष्य गति से तीर्थंकर बनकर वह मुक्ति को प्राप्त होता है। इस प्रकार देव व नरक गति का जीव ही अगले भव में तीर्थंकर बनता है। मनुष्य या तिर्यंच गति का जीव अगले भव में तीर्थंकर नहीं बनता है।

1.2 केवली (Omniscient)-

चार घातिया कर्मों के क्षय होने से जिन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है, उन्हें केवली कहते हैं। इन्हें अरहन्त भी कहते हैं। इन्हें तीनों लोकों और तीनों कालों के समस्त पदार्थों का एक साथ ज्ञान होता है। सभी केवलियों का शरीर केवलज्ञान होने पर परमौदारिक अर्थात् निगोद जीवों से रहित हो जाता है और पृथ्वी से 5000 धनुष ऊँचा चला जाता है।

सभी केवलियों की 2 अवस्थाएँ होती हैं–सयोगकेवली और अयोगकेवली।

(1) सयोग केवली (*Sayog Kevali*-Omniscient having Vibrations)- जब तक केवली भगवान विहार और उपदेश आदि क्रियाएँ करते रहते हैं और तीनों योगों (मन, वचन व काय) से युक्त होते हैं, वे सयोग केवली कहे जाते हैं। ये 13 वें गुणस्थानवर्ती होते हैं।

(2) अयोग केवली (*Ayog Kevali*-Omniscient without Vibrations)- आयु के अंतिम समय में जब केवली उपदेश व विहार आदि क्रियाओं का त्याग कर देते हैं और योग से रहित हो जाते हैं, तब इन्हें अयोग केवली कहते हैं। इनका गुणस्थान 14 वां है।

सात प्रकार के केवली (Seven Types of Omniscients)-

1. तीर्थंकर केवली (Teerthankar Omniscient)- तीर्थंकर प्रकृति नामकर्म वाले तथा साक्षात् उपदेश आदि के द्वारा धर्म की प्रभावना करने वाले तीर्थंकर केवली कहलाते हैं। जैसे भगवान महावीर आदि। इनके गणधर होते हैं और देवों द्वारा इनके समवसरण की रचना की जाती है। इनके 5, 3 अथवा 2 कल्याणक होते हैं।

2. सामान्य केवली (General Omniscient)- तीर्थंकर केवली के अतिरिक्त अन्य केवली सामान्य केवली कहलाते हैं।

3. सातिशय केवली (Omniscient with Excellences)- तीर्थंकर प्रकृति रहित, 25 अतिशय (10 केवलज्ञान,

14 देवकृत तथा 1 वज्रवृषभ-नाराच संहनन), प्रातिहार्य, गन्धकुटी और अनन्त चतुष्टय सहित केवली को सातिशय केवली (गन्धकुटी युक्त केवली) कहते हैं।

4. मूक-केवली (Silent Omniscient)- जिनकी वाणी नहीं खिरती है।

5. उपसर्ग-केवली (Omniscient after bearing Infliction)- जो संयम धारण करने के पश्चात् उपसर्ग सहन करते हुए घातियाँ कर्मों को जीतकर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। जैसे -देशभूषण केवली, कुलभूषण केवली।

6. अन्तकृत् केवली (Omniscient, who gets Salvated within 48 minutes)- जो भीषण उपसर्गों को जीतकर केवलज्ञान प्राप्ति के अन्तर्मुहूर्त पश्चात् ही सम्पूर्ण कर्मों का अन्त कर लेते हैं अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जैसे सुकौशल मुनि। महावीर भगवान के तीर्थ में नमि, मतंग, सुदर्शन आदि ऐसे 10 केवली हुए हैं।

7. अनुबद्ध-केवली (Serially-Linked Omniscients)- एक केवली के मोक्ष जाते ही तुरन्त पश्चात् दूसरे को केवलज्ञान होने पर वह दूसरा केवली अनुबद्ध केवली कहलाता है। महावीर स्वामी के बाद तीन अनुबद्ध केवली हुए हैं:- (1) इन्द्रभूति (गौतम गोत्रीय), (2) सुधर्म स्वामी और (3) जम्बू स्वामी।

अभी तक अनन्त जीवों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। महावीर स्वामी के पश्चात् 3 अनुबद्ध केवली और 5 अन्य केवली हुए हैं। वर्तमान अवसर्पिणी काल में सर्वप्रथम केवलज्ञान आदिनाथ भगवान को हुआ था जो कैलाश पर्वत से मोक्ष गये तथा अंतिम केवली का नाम श्रीधर है जो कुण्डलगिरि से मोक्ष गये।

1.3 केवली भगवान व तीर्थंकर भगवान में अन्तर (Difference between Omniscient Lord and Teerthankar Lord)-

तीर्थंकर और केवली में मुख्यतया निम्न अन्तर हैं:-

1. सभी तीर्थंकर केवली होते हैं, किन्तु सभी केवली तीर्थंकर नहीं होते हैं।
2. भगवान बनने के लिये केवली होना आवश्यक है, तीर्थंकर नहीं।
3. एक काल में 24 तीर्थंकर होते हैं जबकि केवली अनेक हो सकते हैं।
4. एक समय में एक ही तीर्थंकर होता है जबकि केवली अनेक हो सकते हैं।
5. सभी तीर्थंकरों की वाणी खिरती है, जबकि कुछ केवलियों की वाणी नहीं खिरती है।
6. निम्न बातें तीर्थंकरों के होती हैं, किन्तु केवलियों के नहीं होती हैं:-

(1) तीर्थंकर की माता को 16 स्वप्न आते हैं।
(2) तीर्थंकर को जन्म से ही मति, श्रुत और अवधि ज्ञान होता है।
(3) तीर्थंकर के जन्म के 10 अतिशय होते हैं।
(4) तीर्थंकर अपने माता-पिता की अकेली संतान होते हैं।
(5) तीर्थंकरों को दीक्षा लेते ही मनःपर्यय ज्ञान हो जाता है।
(6) तीर्थंकरों के समवसरण की रचना होती है।
(7) तीर्थंकरों के गणधर होते हैं।*
(8) तीर्थंकरों के कल्याणक होते हैं और देव इन्हें मनाते हैं।
(9) तीर्थंकरों के चिन्ह होते हैं।

प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में 24-24 तीर्थंकर होते हैं। सभी तीर्थंकरों की देशना एक सी होती है। उनके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष के अवसर पर देवतागण महान उत्सव मनाते हैं। इन पांचों उत्सवों को पंच-कल्याणक कहते हैं।

* एक जगह सामान्य केवली के गणधर का कथन भी आया है। (सुदर्शन केवली)

1.4 पंचकल्याणक (*Panchkalyanak*, Five Auspicious Events)-

प्रत्येक तीर्थंकर के जीवन काल में पांच प्रसिद्ध घटनाओं (गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष) के अवसर आते हैं जिन पर देव विशेष उत्सव मनाते हैं। देव स्वर्ग से चलकर मध्य-लोक में आते हैं। देव अपने मूल शरीर से कहीं नहीं जाते हैं, सभी कार्यों में उनका उत्तर (वैक्रियिक) शरीर ही आता है। मगर 16 स्वर्गों से ऊपर के अहमिन्द्र देव नहीं आते हैं क्योंकि इनका मध्यलोक में आवागमन नहीं है। ये पांचों अवसर जगत के लिये अत्यन्त कल्याणकारी होते हैं, अतः इनको कल्याणक कहते हैं।

भरत व ऐरावत क्षेत्रों में होने वाले तीर्थंकरों के 5 कल्याणक होते हैं जबकि विदेह क्षेत्र में होने वाले तीर्थंकरों के 5, 3 अथवा 2 कल्याणक होते हैं। विदेह क्षेत्र में जो मनुष्य पूर्व भव से तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लेते हैं, उनके पांच कल्याणक होते हैं किन्तु जो गृहस्थ अवस्था में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करते हैं, उनके तप, ज्ञान और मोक्ष तीन कल्याणक होते हैं। जो मनुष्य मुनि अवस्था में तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है, उसके ज्ञान व मोक्ष नामक केवल दो कल्याणक ही होते हैं।

चूँकि इस पंचमकाल में तीर्थंकर नहीं होते हैं, अतः हम प्रत्यक्ष रूप से "कल्याणक" नहीं देख सकते हैं, फिर भी नवनिर्मित जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा करने के लिये जो पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव किये जाते हैं उन्हें हम देख सकते हैं। ये महोत्सव उन्हीं प्रधान पांच कल्याणकों की सत्य प्रतिलिपि है जिसके द्वारा प्रतिमा में तीर्थंकरत्व की स्थापना की जाती है।

इन पांच कल्याणकों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

(1) गर्भकल्याणक (*Garbhkalyanak*, Auspicious Event of Conception)-सौधर्म इन्द्र अपने अवधिज्ञान से यह जान लेता है कि तीर्थंकर का गर्भावतरण होने वाला है। भगवान के गर्भ में आने से 6 माह पूर्व से जन्म तक (अर्थात् 15 माह तक) कुबेर द्वारा प्रतिदिन चार बार साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा की जाती है जिन्हें याचक स्वतंत्रतापूर्वक ले जाते हैं। गर्भ वाले दिन माता को 16 स्वप्न आते हैं। जिस पर भगवान का अवतरण निश्चित मानकर माता-पिता प्रसन्न होते हैं। गर्भावतरण को जानकर सौधर्म इन्द्र व देव स्वर्ग से चलकर धरती पर आते हैं और उत्सव मनाते हैं। तत्पश्चात् सौधर्म इन्द्र दिक्कुमारी देवियों को जिनमाता की सेवा में नियुक्त कर माता-पिता को भेंट आदि दे करके वापस स्वर्ग को लौट जाता है। दिक्कुमारियाँ माता की परिचर्या करती हैं। गर्भ अवस्था में माता को तनिक भी कष्ट नहीं होता है।

(2) जन्म कल्याणक (*Janmkalyanak*, Auspicious Event of Birth)-तीर्थंकर के जन्म के उत्सव को जन्म कल्याणक कहते हैं। तीर्थंकर का जन्म होने पर चारों निकायों के देवों के भवनों में उनके अपने वाद्य यंत्र (घंटा, दुंदुभि आदि) स्वयं बजने लगते हैं और सौधर्म इन्द्र का आसन कम्पायमान होता है जिससे उन्हें तीर्थंकर का जन्म होना निश्चित हो जाता है। सौधर्म इन्द्र अपनी इन्द्राणी (शची) सहित एक लाख योजन प्रमाण ऐरावत हाथी पर बैठ कर चारों प्रकार के असंख्यात देवों के साथ भूमि पर आता है और साथ में साढ़े बारह करोड़ जाति के वाद्य यंत्रों की मीठी ध्वनि, देवों द्वारा जय-जयकार की ध्वनि आदि होती है। सौधर्म इन्द्र अपनी इन्द्राणी (शची) को प्रसूति-गृह में भेजकर बालक को मंगवाते हैं। शची वहाँ पर तीर्थंकर की माता को मायामयी निद्रा में सुलाकर तीर्थंकर बालक को ले आती है और उसके स्थान पर माया-बालक को रख देती है। तीर्थंकर बालक को देखकर तृप्ति नहीं होने से इन्द्र अपने हजार नेत्र बनाकर बालक को निहारता है। पुनः वह तीर्थंकर बालक को लेकर इन्द्र सुमेरु पर्वत पर जाता है और वहाँ उनका पाण्डुक शिला पर 1008 कलशों द्वारा अभिषेक करता है। अभिषेक हेतु जल क्षीर सागर से देवता पंक्तिबद्ध होकर लाते हैं। यह जल दूध के समान श्वेत और त्रसजीव रहित होता है।

बालक (तीर्थंकर) के दाहिने पैर के अंगूठे में स्थित चिन्ह को देखकर सौधर्म इन्द्र इसे ही तीर्थंकर का चिन्ह

निश्चित करता है। यही चिन्ह तीर्थंकर की प्रतिमा पर अंकित किया जाता है। सौधर्मइन्द्र बालक के अँगूठे में अमृत भर देता है और ताण्डव नृत्य आदि अनेक मायामयी लीलाएँ करता है। तत्पश्चात् बालक को वस्त्र-आभूषण से सजाकर वापस प्रसूतिगृह में पहुँचाकर इन्द्र आदि देव तीर्थंकर के माता-पिता की भक्ति कर वस्त्र-आभूषण आदि भेंट कर उन्हें प्रणाम कर वापस देवलोक लौट जाते हैं। दीक्षा लेने तक तीर्थंकर के लिये वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि सामग्री प्रतिदिन स्वर्ग से देवों द्वारा लायी जाती है।

(3) तप कल्याणक (*Tapkalyank*, Auspicious Event of Initiation)-कुछ दिन राज्य आदि विभूति का उपभोग कर किसी कारणवश तीर्थंकर को वैराग्य भाव उत्पन्न हो जाता है। उस समय ब्रह्म स्वर्ग से लौकान्तिक देव आकर तीर्थंकर के वैराग्य की प्रशंसा करते हैं और उनकी स्तुति करते हैं।

कुबेर द्वारा निर्मित पालकी में तीर्थंकर को बैठाकर तपोवन को ले जाते हैं। पालकी को 7-7 कदम की दूरी तक मनुष्य और विद्याधर ले जाते हैं और बाद में देवता पालकी को आकाश मार्ग से ले जाते हैं। तपोवन में पहुंचकर तीर्थंकर वस्त्र-आभूषण आदि त्याग देते हैं और "नमः सिद्धेभ्यः" बोलकर पंचमुष्टि केश-लोंच करते हैं। इन्द्र इन केशों को रत्न-पिटारे में ले जाकर क्षीरसागर में क्षेपण करता है। तीर्थंकर स्वयं दीक्षा ले लेते हैं क्योंकि उनके कोई गुरु नहीं होता है और वे स्वयं जगद्गुरु हैं। नियम लेकर आहार के लिये नगर में जाते हैं और आहार देने वाले के यहाँ पंचाश्चर्य प्रकट होते हैं। जैन साधु देवताओं से आहार ग्रहण नहीं करते हैं क्योंकि वे मनुष्यों की भाँति संयम धारण नहीं कर सकते हैं।

पंचाश्चर्य (Showering of Five Wonderful Things)-तीर्थंकर के आहार पर देवताओं के द्वारा आहारदाता के यहाँ 5 आश्चर्ययुक्त कार्य किये जाते हैं । ये कार्य हैं-

(1) रत्नों की वृष्टि होना

(2) दुन्दुभि-बाजे बजना

(3) मन्द-सुगन्धित पवन चलना

(4) जय-जयकार की ध्वनि होना और

(5) आकाश से पुष्पों की वर्षा होना।

(4) ज्ञान कल्याणक (*Gyankalyanak*, Auspicious Event of Omniscience)-तपस्या करते हुए तीर्थंकर शुक्लध्यान में स्थिर होकर चार घातिया कर्मों का नाश कर केवलज्ञान आदि चतुष्टय लक्ष्मी प्राप्त करते हैं। उनका शरीर भूतल से 5000 धनुष ऊँचा चला जाता है और सिंहासन, भामण्डल, छत्र आदि आठ प्रातिहार्य प्रकट होते हैं। केवलज्ञान होने पर 10 अतिशय होते हैं और देवताओं द्वारा 14 अतिशय किये जाते हैं।

तीर्थंकर को केवलज्ञान होने पर इन्द्र की आज्ञा से कुबेर समवसरण की रचना करता है। भगवान का जब विहार होता है तो भगवान के चरणों के नीचे देव स्वर्णकमलों की रचना करते हैं और भगवान इनको स्पर्श नहीं करते हुए आकाश मार्ग में ही चलते हैं।

(5) निर्वाण (मोक्ष) कल्याणक (*Nirvan Or Mokshakalyanak*, Auspicious Event of Salvation)-जब तीर्थंकर की आयु पूर्ण होने वाली होती है, तब उनका समवसरण विघटित हो जाता है और वे योग-निरोध द्वारा ध्यान में निश्चलता कर शेष चार अघातिया कर्मों का भी नाश कर देते हैं व निर्वाण धाम को प्राप्त होते हैं अर्थात् लोक के अग्र भाग में सिद्धालय में विराजमान हो जाते हैं। अरहन्त भगवान के शरीर छूटने को पंडित-पंडित मरण की संज्ञा है, उसे निर्वाण अथवा मोक्ष भी कहते हैं। देव निर्वाण कल्याणक की पूजा करते हैं। वृषभदेव, वासुपूज्य और नेमिनाथ भगवान पद्मासन से मोक्ष गये हैं। शेष 21 तीर्थंकर खड्गासन से मोक्ष गये हैं।

तीर्थंकरों के मूँछ-दाढ़ी नहीं होती हैं किन्तु सिर पर बाल होते हैं। केवलज्ञान होने पर इनके नख और केशों में वृद्धि नहीं होती है। तीर्थंकरों का शरीर अशुद्ध धातु रहित होता है और केवलज्ञान होने पर परमौदारिक (निगोदिया जीवों से रहित) हो जाता है। केवलज्ञान से पूर्व तक इनके आहार तो होता है, किन्तु निहार (मल-मूत्र) नहीं होता है। इनके नेत्र सदा आधे खुले हुए रहते हैं और ये पलक नहीं झपकाते हैं। ये जन्म से ही तीन ज्ञान (मति, श्रुत और अवधि) के धारी होते हैं। दीक्षा लेने पर इन्हें मनःपर्ययज्ञान और चारों घातिया कर्मों का नाश करने पर केवलज्ञान हो जाता है।

जन्म के समय सौधर्म इन्द्र इन्हें पाण्डुक शिला पर ले जाकर महोत्सवपूर्वक इनका अभिषेक करता है। इन्द्रादि देव इनकी पूजा 1008 नामों से करते हैं। तीर्थंकर अपनी माता की अकेली सन्तान होते हैं। ये माता का दूध नहीं पीते हैं, अपितु अपने हाथ के अँगूठे (अमृतमयी) को चूसते हैं। इनके खाने की वस्तुएँ और वस्त्र आदि भी देव लाते हैं। ये सिद्ध के अलावा किसी को प्रणाम नहीं करते हैं। इनका कोई गुरु नहीं होता है। ये स्वयं ही दीक्षा ले लेते हैं। किसी को दीक्षा देते भी नहीं हैं। दीक्षा लेकर अपनी मुनि अवस्था के दौरान मौन रहते हैं।

भरत क्षेत्र में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के कल्पकाल में 24-24 तीर्थंकर होते हैं। वैसे तो अभी तक अनन्त कल्पकाल (अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी) बीत चुके हैं और इनमें अनन्त तीर्थंकर हो चुके हैं, फिर भी व्यवहार में भूत, वर्तमान व भविष्य-कालीन 24-24 तीर्थंकर कहे गये हैं।

1.5 भूतकालीन 24 तीर्थंकर (24 Teerthankars of The Past)-

वर्तमान में चल रहे अवसर्पिणी काल से पूर्व उत्सर्पिणी के कल्पकाल में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में जो 24 तीर्थंकर हुए, वे भूतकालीन 24 तीर्थंकर कहलाते हैं। इनके नाम निम्न प्रकार है-

(1) श्री निर्वाणनाथ	(2) श्री सागरनाथ	(3) श्री महासाधुनाथ
(4) श्री विमल प्रभनाथ	(5) श्री धरनाथ	(6) श्री सुदत्तनाथ
(7) श्री अमलप्रभनाथ	(8) श्री उद्धरनाथ	(9) श्री अंगिरनाथ
(10) श्री सन्मतिनाथ	(11) श्री सिंधुनाथ	(12) श्री कुसुमांजलिनाथ
(13) श्री शिवगणनाथ	(14) श्री उत्साहनाथ	(15) श्री ज्ञानेश्वरनाथ
(16) श्री परमेश्वरनाथ	(17) श्री विमलेश्वरनाथ	(18) श्री यशोधरनाथ
(19) श्री कृष्णमतिनाथ	(20) श्री ज्ञानमतिनाथ	(21) श्री शुद्धमतिनाथ
(22) श्री भद्रनाथ	(23) श्री अतिक्रांतनाथ	(24) श्री शांतनाथ

1.6 भविष्यत्कालीन 24 तीर्थंकर (24 Teerthankars of the Future)-

अभी अवसर्पिणी काल का पांचवां काल चल रहा है। अतः इस काल में कोई तीर्थंकर अब नहीं होगा। आगामी उत्सर्पिणी काल के तृतीय काल में 24 तीर्थंकर होंगे। राजा श्रेणिक का जीव महापद्म नामक प्रथम तीर्थंकर बनेगा। भविष्य में होने वाले 24 तीर्थंकरों के नाम निम्न हैं-

(1) श्री महापद्मनाथ	(2) श्री सुरदेवनाथ	(3) श्री सुपार्श्वनाथ
(4) श्री स्वयंप्रभनाथ	(5) श्री सर्वात्मभूतनाथ	(6) श्री देवपुत्रनाथ

(7) श्री कुलपुत्रनाथ	(8) श्री उदंकनाथ	(9) श्री प्रौष्ठिल्यनाथ
(10) श्री जय कीर्ति नाथ	(11) श्री मुनिसुव्रतनाथ	(12) श्री अरनाथ
(13) श्री निष्पापनाथ	(14) श्री निष्कषायनाथ	(15) श्री विपुलनाथ
(16) श्री निर्मलनाथ	(17) श्री चित्रगुप्तनाथ	(18) श्री समाधिगुप्तनाथ
(19) श्री स्वयंभूनाथ	(20) श्री अनिवर्तकनाथ	(21) श्री जयनाथ
(22) श्री विमलनाथ	(23) श्री देवपालनाथ	(24) श्री अनंतवीर्यनाथ

1.7 वर्तमान 24 तीर्थंकर (24 Teerthankars of The Present)-

वर्तमान में अवसर्पिणी काल का पंचम काल चल रहा है। इससे पूर्व के चतुर्थ काल में भरत क्षेत्र में जो 24 तीर्थंकर हुए हैं, उन्हें ही वर्तमान 24 तीर्थंकर कहते हैं। इनके नाम व लांछन (चिन्ह) निम्न प्रकार हैं-

नाम	चिन्ह	नाम	चिन्ह
(1)श्री ऋषभदेव जी	बैल	(2) श्री अजितनाथ जी	हाथी
(3) श्री संभवनाथ जी	घोड़ा	(4) श्री अभिनन्दननाथ जी	बन्दर
(5) श्री सुमतिनाथ जी	चकवा	(6) श्री पद्मप्रभ जी	कमल
(7) श्री सुपार्श्वनाथ जी	साथिया	(8) श्री चन्द्रप्रभ जी	चन्द्रमा
(9) श्री पुष्पदन्तजी	मगर	(10) श्री शीतलनाथजी	कल्पवृक्ष
(11) श्री श्रेयांसनाथ जी	गेंडा	(12) श्री वासुपूज्य जी	भैंसा
(13) श्री विमलनाथ जी	शूकर	(14) श्री अनन्तनाथ जी	सेही
(15) श्री धर्मनाथ जी	वज्रदंड	(16) श्री शान्तिनाथ जी	हिरण
(17) श्री कुंथुनाथ जी	बकरा	(18) श्री अरनाथ जी	मछली
(19) श्री मल्लिनाथ जी	कलश	(20) श्री मुनिसुव्रतनाथ जी	कछुवा
(21) श्री नमिनाथ जी	नीलकमल	(22) श्री नेमिनाथ जी	शंख
(23) श्री पार्श्वनाथ जी	सर्प	(24) श्री महावीरस्वामी जी	सिंह

1.8 तीर्थंकरों के चिन्ह (Symbols of Teerthankars)-

भगवान के जन्म के 10 अतिशय होते हैं जिनमें एक अतिशय उनके शरीर में शुभ 1008 चिन्ह होना है। सुमेरु पर्वत पर अभिषेक करते समय सौधर्म इन्द्र इनके दायें पैर के अँगूठे में चिन्ह (लांछन) देखता है और इस चिन्ह से ही तीर्थंकर की पहचान होती है। 24 तीर्थंकरों के ये चिन्ह अलग-अलग होते हैं जो सामान्यतया पशु-पक्षी आदि तिर्यंचों के होते हैं। इस चिन्ह से तीर्थंकर के पूर्व भव का कोई संबंध नहीं है। मूर्ति पर चिन्ह से यह मालूम हो जाता है कि यह मूर्ति कौन से तीर्थंकर की है। तीर्थंकरों के उपरोक्त चिन्हों में से साथियां, अर्द्धचन्द्र, कल्पवृक्ष, वज्रदण्ड, कलश तो अजीव हैं, कमल, नीलकमल और शंख एकेन्द्रिय जीव हैं और शेष 16 पंचेन्द्रिय जीव हैं।

तीर्थंकरों के वर्ण (Colours of Teerthankars)-वर्तमान चौबीसी के तीर्थंकरों के वर्ण निम्न प्रकार हैं-

श्वेत वर्ण वाले	1. चन्द्रप्रभु,	2. पुष्पदन्त
लाल वर्ण वाले	1. पद्मप्रभु,	2. वासुपूज्य
श्याम वर्ण वाले	1. मुनिसुव्रतनाथ	2. नेमिनाथ

हरित वर्ण वाले 1. सुपार्श्वनाथ, 2. पार्श्वनाथ

स्वर्ण वर्ण वाले शेष 16 तीर्थंकर

तीर्थंकरों के मोक्ष जाने का आसन (Postures of Salvation of Teerthankars)-

श्री ऋषभदेव, वासुपूज्य और नेमिनाथ तीर्थंकर पद्मासन से मोक्ष गये हैं और शेष 21 तीर्थंकर कायोत्सर्ग आसन (खड्गासन) से मोक्ष गये हैं।

बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर (Celibate Teerthankars)-वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी ये पांच तीर्थंकर बाल ब्रह्मचारी थे और शेष का विवाह हुआ था।

तीन पदवी के धारी तीर्थंकर (Teerthankars with Three Ranks)-श्री शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ तीन-तीन पदवियों (तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव) के धारी थे।

अधिक नाम वाले तीर्थंकर (Teerthankars with more Names)-

वर्तमान 24 तीर्थंकरों में से 3 के नाम एक से अधिक हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

(1) भगवान ऋषभदेव को आदिनाथ व वृषभनाथ भी कहते हैं। ये आदि शुरू में हुए हैं, इस कारण इन्हें आदिनाथ कहते हैं और इनके वृषभ (बैल) का लांछन है, अतः इन्हें वृषभनाथ भी कहते हैं।

(2) भगवान पुष्पदंतनाथ का दूसरा नाम सुविधिनाथ है।

(3) भगवान महावीर के वीर-वर्धमान-सन्मति-महावीर और अतिवीर ये पाँच नाम हैं।

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का जीवन दर्शन
(Life-sketch of First Teerthankar Bhagwan Rishabhdev)

जन्मभूमि—अयोध्या (उत्तर प्रदेश)

पिता—महाराज नाभिराय | **माता—**महारानी मरुदेवी

वर्ण—क्षत्रिय | **वंश—**इक्ष्वाकु

देहवर्ण—तप्त स्वर्ण सदृश | **चिन्ह—**बैल

आयु—चौरासी (84) लाख पूर्व वर्ष | **अवगाहना—**दो हजार (2000) हाथ

गर्भ—आषाढ़ कृ. 2 | **जन्म—**चैत्र कृ.9

तप—चैत्र कृ.9

दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—प्रयाग-सिद्धार्थवन, वट वृक्ष (अक्षयवट)

प्रथम आहार—हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस द्वारा (इक्षुरस)

केवलज्ञान—फाल्गुन कृ.11 | **मोक्ष—**माघ कृ.14

मोक्षस्थल—कैलाश पर्वत | **समवसरण में गणधर—**श्री वृषभसेन आदि 84

मुनि—चौरासी हजार | **गणिनी—**आर्यिका ब्राह्मी

आर्यिका—तीन लाख पचास हजार (350000) | **श्रावक—**तीन लाख (300000)

श्राविका—पांच लाख (500000) | **जिनशासन यक्ष—**गोमुख देव

यक्षी—चक्रेश्वरी देवी

दूसरे तीर्थंकर भगवान अजितनाथ का जीवन दर्शन

(Life-sketch of Second Teerthankar Bhagwan Ajitnath)

जन्मभूमि—अयोध्या (उत्तर प्रदेश)

पिता—महाराज जितशत्रु

माता—महारानी विजया

वर्ण—क्षत्रिय

वंश—इक्ष्वाकु

देहवर्ण—तप्त स्वर्ण सदृश

चिन्ह—हाथी

आयु—बहत्तर (72) लाख पूर्व वर्ष

अवगाहना—अट्ठारह सौ (1800) हाथ

गर्भ—ज्येष्ठ कृ. अमावस्या

जन्म—माघ शु. 10

तप—माघ शु. 9

दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—सहेतुक वन एवं सप्तपर्ण वृक्ष

प्रथम आहार—साकेतनगरी के राजा ब्रह्म द्वारा (खीर)

केवलज्ञान—पौष शु.11

मोक्ष—चैत्र शु.5

मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत

समवसरण में गणधर—श्री सिंहसेन आदि 90

मुनि—एक लाख (100000)

गणिनी—आर्यिका प्रकुब्जा

आर्यिका—तीन लाख बीस हजार (320000)

श्रावक—तीन लाख (300000)

श्राविका—पांच लाख (500000)

जिनशासन यक्ष—महायक्ष देव

यक्षी—रोहिणी देवी

तीसरे तीर्थंकर भगवान संभवनाथ का जीवन दर्शन

(Life-sketch of Third Teerthankar Bhagwan Sambhavnath)

जन्मभूमि—श्रावस्ती (जिला-बहराइच) उत्तर प्रदेश

पिता—महाराज दृढ़राज

माता—महारानी सुषेणा

वर्ण—क्षत्रिय

वंश—इक्ष्वाकु

देहवर्ण—तप्त स्वर्ण सदृश

चिन्ह—घोड़ा

आयु—साठ (60) लाख पूर्व वर्ष

अवगाहना—सोलह सौ (1600) हाथ

गर्भ—फाल्गुन शु.8

जन्म—कार्तिक शु. 15

तप—मगसिर शु.15

दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—सहेतुक वन एवं शाल्मलि वृक्ष

प्रथम आहार—श्रावस्ती के राजा सुरेन्द्रदत्त द्वारा (खीर)

केवलज्ञान—कार्तिक कृ.4

मोक्ष—चैत्र शु.6

मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत

समवसरण में गणधर—श्री चारूषेण आदि 105

मुनि—दो लाख (200000)

गणिनी—आर्यिका धर्मार्या

आर्यिका—तीन लाख बीस हजार (320000)

श्रावक—तीन लाख (300000)

श्राविका—पांच लाख (500000)

जिनशासन यक्ष—त्रिमुखदेव

यक्षी—प्रज्ञप्तिदेवी

चौथे तीर्थंकर भगवान अभिनंदननाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Fourth Teerthankar Bhagwan Abhinandannath)

जन्मभूमि—अयोध्या (उत्तर प्रदेश)

पिता—महाराज स्वयंवरराज
माता—महारानी सिद्धार्था

वर्ण—क्षत्रिय
वंश—इक्ष्वाकु

देहवर्ण—तप्त स्वर्ण सदृश
चिन्ह—बंदर

आयु—पचास (50) लाख पूर्व वर्ष
अवगाहना—चौदह सौ (1400) हाथ

गर्भ—वैशाख शु. 6
जन्म—माघ शु. 12

तप—माघ शु. 12

दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—सहेतुक वन एवं असन वृक्ष

प्रथम आहार—साकेत नगरी के राजा इन्द्रदत्त द्वारा (खीर)

केवलज्ञान—पौष शु. 14
मोक्ष—वैशाख शु.6

मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत
समवसरण में गणधर—श्री वज्रनाभि आदि 103

मुनि—तीन लाख (300000)
गणिनी—आर्यिका मेरुषेणा

आर्यिका—तीन लाख तीस हजार छह सौ (330600)
श्रावक—तीन लाख (300000)

श्राविका—पांच लाख (500000)
जिनशासन यक्ष—यक्षेश्वर देव

यक्षी—वज्रश्रृंखला देवी

पाँचवें तीर्थंकर भगवान सुमतिनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Fifth Teerthankar Bhagwan Sumatinath)

जन्मभूमि—अयोध्या (उत्तर प्रदेश)

पिता—महाराज मेघरथ
माता—महारानी सुमंगला देवी

वर्ण—क्षत्रिय
वंश—इक्ष्वाकु

देहवर्ण—तप्त स्वर्ण सदृश
चिन्ह—चकवा

आयु—चालीस (40) लाख पूर्व वर्ष
अवगाहना—बारह सौ (1200) हाथ

गर्भ—श्रावण शु.2
जन्म—चैत्र शु. 11

तप—वैशाख शु.9

दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—सहेतुक वन एवं प्रियंगुवृक्ष

प्रथम आहार—सौमनस नगर के राजा पद्म द्वारा (खीर)

केवलज्ञान—चैत्र शु.11
मोक्ष—चैत्र शु.11

मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत

समवसरण में गणधर—श्री अमर आदि 116
मुनि—तीन लाख बीस हजार (320000)

गणिनी—आर्यिका अनंतमती
आर्यिका—तीन लाख तीस हजार (330000)

श्रावक—तीन लाख (300000)
श्राविका—पांच लाख (500000)

जिनशासन यक्ष—तुंबुरू देव
यक्षी—पुरुषदत्ता देवी

छठे तीर्थंकर भगवान पद्मप्रभ का जीवन दर्शन

(Life-sketch of Sixth Teerthankar Bhagwan Padmaprabh)

जन्मभूमि—कौशाम्बी (जिला-कौशाम्बी) उत्तर प्रदेश

पिता—महाराजा धरणराज

माता—महारानी सुसीमा

वर्ण—क्षत्रिय

वंश—इक्ष्वाकु

देहवर्ण—पद्मरागमणि सदृश

चिन्ह—लाल कमल

आयु—तीस (30) लाख पूर्व वर्ष

अवगाहना—एक हजार (1000)हाथ

गर्भ—माघ कृ.6

जन्म—कार्तिक कृ. 13

तप—कार्तिक कृ.13

दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—मनोहर वन (प्रभाषगिरि) एवं प्रियंगुवृक्ष

प्रथम आहार—वर्द्धमान नगर के राजा सोमदत्त द्वारा (खीर)

केवलज्ञान—चैत्र शु.15

मोक्ष—फाल्गुन कृ.4

मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत

समवसरण में गणधर—श्री वज्रचामर आदि 110

मुनि—तीन लाख तीस हजार (330000)

गणिनी—आर्यिका रतिषेणा

आर्यिका—चार लाख तीस हजार (430000)

श्रावक—तीन लाख (300000)

श्राविका—पांच लाख (500000)

जिनशासन यक्ष—कुसुमदेव

यक्षी—मनोवेगा देवी

सातवें तीर्थंकर भगवान सुपार्श्वनाथ का जीवन दर्शन

(Life-sketch of Seventh Teerthankar Bhagwan Suparshvanath)

जन्मभूमि—वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

पिता—महाराजा सुप्रतिष्ठ

माता—महारानी पृथ्वीषेणा

वर्ण—क्षत्रिय

वंश—इक्ष्वाकु

देहवर्ण—मरकतमणि सम (हरा)

चिन्ह—स्वस्तिक

आयु—बीस (20) लाख पूर्व वर्ष

अवगाहना—आठ सौ (800) हाथ

गर्भ—भाद्रपद शु. 6

जन्म—ज्येष्ठ शु. 12

तप—ज्येष्ठ शु. 12

दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—सहेतुक वन एवं शिरीष वृक्ष

प्रथम आहार—सोमखेट नगर के राजा महेन्द्रदत्त द्वारा (खीर)

केवलज्ञान—फाल्गुन कृ.6

मोक्ष—फाल्गुन कृ.7

मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत

समवसरण में गणधर—श्रीबल आदि 95

मुनि—तीन लाख (300000)

गणिनी—आर्यिका मीनार्या

आर्यिका—तीन लाख तीस हजार (330000)

श्रावक—तीन लाख (300000)

श्राविका—पांच लाख (500000)

जिनशासन यक्ष—वरनंदिदेव

यक्षी—काली देवी

आठवें तीर्थंकर भगवान चन्द्रप्रभु का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Eighth Teerthankar Bhagwan Chandraprabhu)

जन्मभूमि—चन्द्रपुरी (जिला-बनारस) उत्तर प्रदेश

पिता—महाराजा महासेन
माता—महारानी लक्ष्मणा
वर्ण—क्षत्रिय
वंश—इक्ष्वाकु
देहवर्ण—कुंदपुष्प सम श्वेत
चिन्ह—चन्द्रमा
आयु—दस (10) लाख पूर्व वर्ष
अवगाहना—छह सौ (600) हाथ
गर्भ—चैत्र कृ. 5
जन्म—पौष कृ. 11
तप—पौष कृ. 11
दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—सर्वर्तुकवन एवं नागवृक्ष
प्रथम आहार—नलिन नगर के राजा सोमदत्त द्वारा (खीर)
केवलज्ञान—फाल्गुन कृ.7
मोक्ष—फाल्गुन शु. 7
मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत
समवसरण में गणधर—श्री श्रीदत्त आदि 93
मुनि—ढाई लाख (25000)
गणिनी—आर्यिका वरुणा
आर्यिका—तीन लाख अस्सी हजार (380000)
श्रावक—तीन लाख (300000)
श्राविका—पांच लाख (500000)
जिनशासन यक्ष—विजयदेव
यक्षी—ज्वालामालिनी देवी

नवमें तीर्थंकर भगवान पुष्पदंतनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Ninth Teerthankar Bhagwan Pushpdantnath)

जन्मभूमि—काकन्दी (उत्तर प्रदेश)

पिता—महाराजा सुग्रीव
माता—महारानी जयरामा
वर्ण—क्षत्रिय
वंश—इक्ष्वाकु
देहवर्ण—कुंदपुष्प सम श्वेत
चिन्ह—मगर
आयु—दो लाख पूर्व वर्ष
अवगाहना—चार सौ (400) हाथ
गर्भ—फाल्गुन कृ.9
जन्म—मगसिर शु.1
तप—मगसिर शु. 1
दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष — पुष्पकवन एवं नागवृक्ष
प्रथम आहार—शैलपुर के राजा पुष्पमित्र द्वारा (खीर)
केवलज्ञान—कार्तिक शु.2
मोक्ष—भाद्रपद शु.8
मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत
समवसरण में गणधर—श्री विदर्भ आदि 88
मुनि—दो लाख (200000)
गणिनी—आर्यिका घोषार्या
आर्यिका—तीन लाख अस्सी हजार (380000)
श्रावक—दो लाख (200000)
श्राविका—पांच लाख (500000)
जिनशासन यक्ष—अजित देव
यक्षी—महाकाली देवी

दसवें तीर्थंकर भगवान शीतलनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Tenth Teerthankar Bhagwan Sheetalnath)

जन्मभूमि—भद्रपुरी

पिता—महाराजा दृढ़रथ
माता—महारानी सुनन्दा
वर्ण—क्षत्रिय
वंश—इक्ष्वाकु
देहवर्ण—तप्त स्वर्ण सदृश
चिन्ह—श्रीवृक्ष (कल्पवृक्ष)
आयु—एक लाख (100000) पूर्व वर्ष
अवगाहना—तीन सौ साठ (360) हाथ
गर्भ—चैत्र कृ. 8
जन्म—माघ कृ. 12
तप—माघ कृ. 12
दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—सहेतुक वन एवं बेलवृक्ष
प्रथम आहार—अरिष्ट नगर के राजा पुनर्वसु द्वारा (खीर)
केवलज्ञान—पौष कृ. 14
मोक्ष—आश्विन शु. 8
मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत
समवसरण में गणधर—श्री अनगार आदि 81
मुनि—एक लाख (100000)
गणिनी—आर्यिका धरणा
आर्यिका—तीन लाख अस्सी हजार (380000)
श्रावक—दो लाख (200000)
श्राविका—तीन लाख (300000)
जिनशासन यक्ष—ब्रह्मेश्वर देव
यक्षी—मानवी देवी

ग्यारहवें तीर्थंकर भगवान श्रेयांसनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Eleventh Teerthankar Bhagwan Shreyansnath)

जन्मभूमि—सिंहपुरी (जिला-वाराणसी) उत्तर प्रदेश

पिता—महाराजा विष्णुमित्र
माता—महारानी नन्दा
वर्ण—क्षत्रिय
वंश—इक्ष्वाकु
देहवर्ण—तप्त स्वर्ण सदृश
चिन्ह—गैंडा
आयु—चौरासी (84) लाख वर्ष
अवगाहना—तीन सौ बीस (320) हाथ
गर्भ—ज्येष्ठ कृ. 6
जन्म—फाल्गुन कृ. 11
तप—फाल्गुन कृ. 11
दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—मनोहर उद्यान एवं तुंबुरू वृक्ष
प्रथम आहार—सिद्धार्थ नगर के राजा नंद द्वारा (खीर)
केवलज्ञान—माघ कृ. अमावस
मोक्ष—श्रावण शु. 15
मोक्षस्थल—सम्मेदशिखर पर्वत
समवसरण में गणधर—श्री कुन्थु आदि 77
मुनि—चौरासी हजार (84000)
गणिनी—आर्यिका धारणा
आर्यिका—एक लाख बीस हजार (120000)
श्रावक—दो लाख (200000)
श्राविका—चार लाख (400000)
जिनशासन यक्ष—कुमार देव
यक्षी—गौरी देवी

बारहवें तीर्थंकर भगवान वासुपूज्य का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Twelfth Teerthankar Bhagwan Vasupoojya)

जन्मभूमि—चंपापुर (जि.-भागलपुर) बिहार
पिता—महाराजा वसुपूज्य
माता—महारानी जयावती
वर्ण—क्षत्रिय
वंश—इक्ष्वाकु
देहवर्ण—पद्मरागमणि सदृश
चिन्ह—भैंसा
आयु—बहत्तर लाख (72) वर्ष
अवगाहना—दो सौ अस्सी (280) हाथ
गर्भ—आषाढ़ कृ.6
जन्म—फाल्गुन कृ. 14
तप—फाल्गुन कृ.14
दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—मनोहर उद्यान एवं कदंब वृक्ष
प्रथम आहार—महानगर के राजा सुंदर द्वारा (खीर)
केवलज्ञान—माघ शु.2
मोक्ष—भाद्रपद शु.14
मोक्षस्थल—चंपापुर (मंदारगिरि)
समवसरण में गणधर—श्री धर्म आदि 66
मुनि—बहत्तर हजार (72000)
गणिनी—आर्यिका सेनार्या
आर्यिका—एक लाख छह हजार (106000)
श्रावक—दो लाख (200000)
श्राविका—चार लाख (400000)
जिनशासन यक्ष—षण्मुख देव
यक्षी—गांधारी देवी

तेरहवें तीर्थंकर भगवान विमलनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Thirteenth Teerthankar Bhagwan Vimalnath)

जन्मभूमि—कांपिल्यपुरी (कंपिलाजी) जि. फरूक्खाबाद (उ.प्र.)
पिता—महाराजा कृतवर्मा
माता—महारानी जयश्यामा
वर्ण—क्षत्रिय
वंश—इक्ष्वाकु
देहवर्ण—तप्त स्वर्ण सदृश
चिन्ह—सूकर
आयु—साठ (60) लाख वर्ष
अवगाहना—दो सौ चालीस (240) हाथ
गर्भ—ज्येष्ठ कृ.10
जन्म—माघ शु. 4
तप—माघ शु. 4
दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—सहेतुक वन एवं जामुन वृक्ष
प्रथम आहार—नंदनपुर के राजा कनकप्रभ द्वारा (खीर)
केवलज्ञान—माघ शु.6
मोक्ष—आषाढ़ कृ. 8
मोक्षस्थल—सम्मेदशिखर पर्वत
समवसरण में गणधर—श्रीमंदर आदि 55
मुनि—अड़सठ हजार (68000)
गणिनी—आर्यिका पद्मा
आर्यिका—एक लाख तीन हजार (103000)
श्रावक—दो लाख (200000)
श्राविका—चार लाख (400000)
जिनशासन यक्ष—पाताल देव
यक्षी—वैरोटी देवी

चौदहवें तीर्थंकर भगवान अनन्तनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Fourteenth Teerthankar Bhagwan Anantnath)

जन्मभूमि—अयोध्या (उ.प्र.)

पिता—महाराजा सिंहसेन

माता—महारानी जयश्यामा

वर्ण—क्षत्रिय

वंश—इक्ष्वाकु

देहवर्ण—तप्त स्वर्ण सदृश

चिन्ह—सेही

आयु—तीस (30) लाख वर्ष

अवगाहना—दो सौ (200) हाथ

गर्भ—कार्तिक कृ.1

जन्म—ज्येष्ठ कृ.12

तप—ज्येष्ठ कृ. 12

दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—सहेतुक वन एवं पीपल वृक्ष

प्रथम आहार—साकेत पुर के राजा विशाख द्वारा (खीर)

केवलज्ञान—चैत्र कृ. अमावस

मोक्ष—चैत्र कृ. अमावस

मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत

समवसरण में गणधर—श्री जय आदि 50

मुनि—छ्यासठ हजार (66000)

गणिनी—आर्यिका सर्वश्री

आर्यिका—एक लाख आठ हजार (108000)

श्रावक—दो लाख (200000)

श्राविका—चार लाख (400000)

जिनशासन यक्ष—किन्नर देव

यक्षी—अनंतमती देवी

पन्द्रहवें तीर्थंकर भगवान धर्मनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Fifteenth Teerthankar Bhagwan Dharmanath)

जन्मभूमि—रत्नपुरी (जिला फैजाबाद) उत्तर प्रदेश

पिता—महाराजा भानुराज

माता—महारानी सुप्रभा

वर्ण—क्षत्रिय

वंश—इक्ष्वाकु

देहवर्ण—तप्त स्वर्ण सदृश

चिन्ह—वज्रदंड

आयु—दस (10) लाख वर्ष

अवगाहना—एक सौ अस्सी (180) हाथ

गर्भ—वैशाख शु. 13

जन्म—माघ शु. 13

तप—माघ शु. 13

दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—शालवन एवं सप्तपर्ण

प्रथम आहार—पाटलिपुत्र नगर के राजा धन्यषेण द्वारा (खीर)

केवलज्ञान—पौष शु. 15

मोक्ष—ज्येष्ठ शु. 4

मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत

समवसरण में गणधर—श्री अरिष्टसेन आदि 43

मुनि—चौंसठ हजार (64000)

गणिनी—आर्यिका सुव्रता

आर्यिका—बासठ हजार चार सौ (62400)

श्रावक—दो लाख (200000)

श्राविका—चार लाख (400000)

जिनशासन यक्ष—किंपुरुषदेव

यक्षी—मानसी देवी

सोलहवें तीर्थंकर भगवान शान्तिनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Sixteenth Teerthankar Bhagwan Shantinath)

जन्मभूमि — हस्तिनापुर (जि. मेरठ) उत्तर प्रदेश

पिता — महाराजा विश्वसेन | **माता** — महारानी ऐरावती

वर्ण — क्षत्रिय | **वंश** — कुरु

देहवर्ण — तप्त स्वर्ण सदृश | **चिन्ह** — हरिण

आयु — एक लाख (100000) वर्ष | **अवगाहना** — एक सौ साठ (160) हाथ

गर्भ — भाद्रपद कृ. 7 | **जन्म** — ज्येष्ठ कृ. 14

तप — ज्येष्ठ कृ. 14

दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष — सहस्राम्रवन एवं नंद्यावर्त वृक्ष

प्रथम आहार — मंदिरपुर के राजा सुमित्र द्वारा (खीर)

केवलज्ञान — पौष शु. 10 | **मोक्ष** — ज्येष्ठ कृ. 14

मोक्षस्थल — सम्मेद शिखर पर्वत

समवसरण में गणधर — श्री चक्रायुध आदि 36 | **मुनि** — बासठ हजार (62000)

गणिनी — आर्यिका हरिषेणा | **आर्यिका** — साठ हजार तीन सौ (60300)

श्रावक — दो लाख (200000) | **श्राविका** — चार लाख (400000)

जिनशासन यक्ष — गरुड़देव | **यक्षी** — महामानसी देवी

सत्रहवें तीर्थंकर भगवान कुंथुनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Seventeenth Teerthankar Bhagwan Kunthunath)

जन्मभूमि — हस्तिनापुर (जि. मेरठ) उत्तर प्रदेश

पिता — महाराजा सूरसेन | **माता** — महारानी श्रीकांता

वर्ण — क्षत्रिय | **वंश** — कुरुवंश

देहवर्ण — तप्त स्वर्ण सदृश | **चिन्ह** — बकरा

आयु — पंचानवे हजार (95000) वर्ष | **अवगाहना** — एक सौ चालीस (140) हाथ

गर्भ — श्रावण कृ.10 | **जन्म** — वैशाख शु. 1

तप — वैशाख शु. 1

दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष — सहेतुक वन एवं तिलक वृक्ष

प्रथम आहार — हस्तिनापुर के राजा धर्ममित्र द्वारा (खीर)

केवलज्ञान — चैत्र शु. 3 | **मोक्ष** — वैशाख शु. 1

मोक्षस्थल — सम्मेदशिखर पर्वत | **समवसरण में गणधर** — श्री स्वयंभू आदि 35

मुनि — साठ हजार (60000) | **गणिनी** — आर्यिका भाविता

आर्यिका — साठ हजार तीन सौ पचास (60350) | **श्रावक** — दो लाख (200000)

श्राविका — तीन लाख (300000) | **जिनशासन यक्ष** — गंधर्व देव

यक्षी — जया देवी

अठारहवें तीर्थंकर भगवान अरनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Eighteenth Teerthankar Bhagwan Aranath)

जन्मभूमि—हस्तिनापुर (जिला मेरठ) उत्तर प्रदेश

पिता—महाराजा सुदर्शन
माता—महारानी मित्रसेना
वर्ण—क्षत्रिय
वंश—कुरुवंश
देहवर्ण—तप्त स्वर्ण सदृश
चिन्ह—मछली
आयु—चौरासी हजार (84000) वर्ष
अवगाहना—एक सौ बीस (120) हाथ
गर्भ—फाल्गुन कृ.3
जन्म—मगसिर शु.14
तप—मगसिर शु. 10
दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—सहेतुक वन एवं आम्र वृक्ष
प्रथम आहार—चक्रपुर के राजा अपराजित द्वारा (खीर)
केवलज्ञान—कार्तिक शु. 12
मोक्ष—चैत्र कृ. अमावस्या
मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत
समवसरण में गणधर—श्री कुंभार्य आदि 30
मुनि—पचास हजार (50000)
गणिनी—आर्यिका यक्षिला
आर्यिका—साठ हजार (60000)
श्रावक—एक लाख साठ हजार (160000)
श्राविका—तीन लाख (300000)
जिनशासन यक्ष—महेन्द्र देव
यक्षी—विजया देवी

उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Nineteenth Teerthankar Bhagwan Mallinath)

जन्मभूमि—मिथिलानगरी
पिता—महाराजा कुंभराज
माता—महारानी प्रजावती
वर्ण—क्षत्रिय
वंश—इक्ष्वाकु
देहवर्ण—तप्त स्वर्ण सदृश
चिन्ह—कलश
आयु—पचपन हजार (55000) वर्ष
अवगाहना—सौ हाथ
गर्भ—चैत्र शु. 1
जन्म—मगसिर शु.11
तप—मगसिर शु. 11
दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—श्वेतवन एवं अशोक वृक्ष
प्रथम आहार—मिथिला नगरी के राजा नंदिषेण द्वारा (खीर)
केवलज्ञान—पौष कृ. 2
मोक्ष—फाल्गुन शु. 5
मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत
समवसरण में गणधर—श्री विशाख आदि 28
मुनि—चालीस हजार (40000)
गणिनी—आर्यिका बंधुषेणा
आर्यिका—पचपन हजार (55000)
श्रावक—एक लाख (100000)
श्राविका—तीन लाख (300000)
जिनशासन यक्ष—कुबेर देव
यक्षी—अपराजिता देवी

बीसवें तीर्थंकर भगवान मुनिसुव्रतनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Twentieth Teerthankar Bhagwan Munisuvratnath)

जन्मभूमि—राजगृही (जिला नालंदा) बिहार
पिता—महाराजा सुमित्र
माता—महारानी सोमा
वर्ण—क्षत्रिय
वंश—हरिवंश
देहवर्ण—वैडूर्यमणि सदृश
चिन्ह—कछुआ
आयु—तीस हजार (30000) वर्ष
अवगाहना—अस्सी (80) हाथ
गर्भ—श्रावण कृ. 2
जन्म—वैशाख कृ. 12
तप—वैशाख कृ. 10
दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—नील वन एवं चंपक वृक्ष
प्रथम आहार—राजगृह के राजा वृषभसेन द्वारा (खीर)
केवलज्ञान—वैशाख कृ. 9
मोक्ष—फाल्गुन कृ. 12
मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत
समवसरण में गणधर—श्री मल्लि आदि 18
मुनि—तीस हजार (30000)
गणिनी—आर्यिका पुष्पदंता
आर्यिका—पचास हजार (50000)
श्रावक—एक लाख (100000)
श्राविका—तीन लाख (300000)
जिनशासन यक्ष—वरूण देव
यक्षी—बहुरूपिणी देवी

इक्कीसवें तीर्थंकर भगवान नमिनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Twenty First Teerthankar Bhagwan Naminath)

जन्मभूमि—मिथिलानगरी
पिता—महाराजा विजय
माता—महारानी वप्पिला (वर्मिला)
वर्ण—क्षत्रिय
वंश—इक्ष्वाकु
देहवर्ण—तप्त स्वर्ण सदृश
चिन्ह—नीलकमल
आयु—दस हजार (10000) वर्ष
अवगाहना—साठ (60) हाथ
गर्भ—आश्विन कृ.2
जन्म—आषाढ़ कृ.10
तप—आषाढ़ कृ.10
दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—चैत्रवन एवं वकुलवृक्ष
प्रथम आहार—वीरपुर नगर के राजा दत्त द्वारा (खीर)
केवलज्ञान—मगसिर शु. 11
मोक्ष—वैशाख कृ. 14
मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत
समवसरण में गणधर—श्री सुप्रभार्य आदि 17
मुनि—बीस हजार (20000)
गणिनी—आर्यिका मंगिनी
आर्यिका—पैंतालीस हजार (45000)
श्रावक—एक लाख (100000)
श्राविका—तीन लाख (300000)
जिनशासन यक्ष—श्री विद्युत्प्रभ देव
यक्षी—चामुण्डी देवी

बाइसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Twenty Second Teerthankar Bhagwan Neminath)

जन्मभूमि—शौरीपुरबटेश्वर (उत्तर प्रदेश)

पिता—महाराजा समुद्र विजय

माता—महारानी शिवादेवी

वर्ण—क्षत्रिय

वंश—हरिवंश

देहवर्ण—वैडूर्यमणि सदृश

चिन्ह—शंख

आयु—एक हजार (1000) वर्ष

अवगाहना—चालीस (40) हाथ

गर्भ—कार्तिक शु. 6

जन्म—श्रावण शु. 6

तप—श्रावण शु. 6

दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष—सहस्राम्रवन एवं बांस वृक्ष

प्रथम आहार—द्वारावती के राजा वरदत्त द्वारा (खीर)

केवलज्ञान—आश्विन शु. 1

मोक्ष—आषाढ़ शु. 7

मोक्षस्थल—ऊर्जयंतपर्वत (गिरनार)

समवसरण में गणधर—श्री वरदत्त आदि 11

मुनि—अठारह हजार (18000)

गणिनी—आर्यिका राजीमती (राजुलमती)

आर्यिका—चालीस हजार (40000)

श्रावक—एक लाख (100000)

श्राविका—तीन लाख (300000)

जिनशासन यक्ष—सर्वाण्हदेव

यक्षी—कूष्माण्डी देवी

तेइसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Twenty Third Teerthankar Bhagwan Parshvanath)

जन्मभूमि—वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

पिता—महाराजा अश्वसेन

माता—महारानी वामादेवी (ब्राह्मी)

वर्ण—क्षत्रिय

वंश—उग्रवंश

देहवर्ण—मरकतमणि सदृश (हरा)

चिन्ह—सर्प

आयु—सौ वर्ष (100)

अवगाहना—नौ हाथ (9)

गर्भ—वैशाख कृ. 2

जन्म—पौष कृ. 11

तप—पौष कृ. 11

दीक्षा वन एवं वृक्ष—अश्ववन एवं देवदारूवृक्ष

प्रथम आहार— गुल्मखेट नगर के राजा धन्य द्वारा (खीर)

केवलज्ञान स्थल—अहिच्छत्र

केवलज्ञान—चैत्र कृ. 4 (14)

मोक्ष—श्रावण शु. 7

मोक्षस्थल—सम्मेद शिखर पर्वत

समवसरण में गणधर—श्री स्वयंभू आदि 10

मुनि—सोलह हजार (16000)

गणिनी—आर्यिका सुलोचना

आर्यिका—छत्तीस हजार (36000)

श्रावक—एक लाख (100000)

श्राविका—तीन लाख (300000)

जिनशासन यक्ष—धरणेन्द्र देव

यक्षी—पद्मावती देवी

चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का जीवन दर्शन
(Life-sketch of Twenty Fourth Teerthankar Bhagwan Mahaveer Swami)

जन्मभूमि — कुंडलपुर-जिला नालन्दा (बिहार)

पिता — महाराजा सिद्धार्थ	**माता** — महारानी प्रियकारिणी (त्रिशला)
वर्ण — क्षत्रिय	**वंश** — नाथवंश
देहवर्ण — तप्त स्वर्ण सदृश	**चिन्ह** — सिंह
आयु — बहत्तर (72) वर्ष	**अवगाहना** — सात (7) हाथ (अरत्नि)
गर्भ — आषाढ़ शु. 6	**जन्म** — चैत्र शु. 13

तप — मगसिर कृ. 10

दीक्षा-केवलज्ञान वन एवं वृक्ष — षण्डवन (मनोहरवन) एवं साल वृक्ष

प्रथम आहार — कूल ग्राम के राजा वकुल द्वारा (खीर)

विशेष आहार — कौशाम्बी में महासती चंदना द्वारा (खीर)

केवलज्ञान — वैशाख शु. 10 (ऋजुकूला नदी के तट पर)

वीरशासन जयंती — (दिव्यध्वनि दिवस) श्रावण कृ.1 राजगृही

मोक्षकल्याणक — कार्तिक कृ. अमावस्या	**मोक्ष स्थल** — पावापुरी
समवसरण में गणधर — श्री इन्द्रभूति आदि 11	**मुनि** — चौदह हजार (14000)
गणिनी — आर्यिका चन्दना	**आर्यिका** — छत्तीस हजार (36000)
श्रावक — एक लाख (100000)	**श्राविका** — तीन लाख (300000)
जिनशासन यक्ष — मातंग देव (गुह्यकदेव)	**यक्षी** — सिद्धायिनी देवी

1.9 विद्यमान बीस तीर्थंकर (Existent Twenty Teerthankars)-

जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड द्वीप और पुष्करार्ध द्वीप में क्रमशः 1, 2 और 2 ऐसे कुल 5 विदेह क्षेत्र हैं।

प्रत्येक विदेह क्षेत्र दो-दो भागों में बंटा हुआ है-पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह। पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी और पश्चिम विदेह में सीतोदा नदी के बहने से इनके दो-दो भाग हो गये हैं। प्रत्येक भाग में क्रमशः 4 वक्षार पर्वत और 3 विभंगा नदियों के कारण उनके आठ-आठ भाग हो गये हैं जिन्हें देश भी कहते हैं। इस प्रकार एक विदेह क्षेत्र में 4 हिस्से और 32 देश हैं। प्रत्येक देश में एक आर्यखण्ड व 5 म्लेच्छखण्ड हैं।

इन 32 देशों के प्रत्येक आर्यखण्ड में अधिकतम 1-1 तीर्थंकर हो सकते हैं और कम से कम चारों हिस्सों में 1-1 तीर्थंकर होते हैं। इस प्रकार एक विदेह क्षेत्र में एक समय में अधिक से अधिक 32 तीर्थंकर हो सकते हैं और कम से कम 4 तीर्थंकर होते हैं। इस प्रकार पाँचों विदेह क्षेत्रों में अधिक से अधिक 160 तीर्थंकर हो सकते हैं और कम से कम 20 तीर्थंकर होते हैं।

विदेह क्षेत्र के प्रत्येक हिस्से में आठ-आठ देश हैं। प्रत्येक देश में अधिक से अधिक एक-एक तीर्थंकर हो सकते हैं अर्थात् एक हिस्से में एक समय में अधिकतम 8 तीर्थंकर हो सकते हैं।

जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर की ओर जो 8 देश हैं, उनमें किसी एक में सीमंधर स्वामी विराजमान हैं, दक्षिण की ओर के 8 देशों में से किसी एक में युगमंधर स्वामी विराजमान हैं। इसी प्रकार सीतोदा नदी के उत्तर की ओर के आठ देशों में से किसी एक में बाहुस्वामी और दक्षिण की ओर के 8 देशों में से किसी एक में सुबाहुस्वामी विराजमान हैं। इसी प्रकार अन्य 4 विदेह क्षेत्रों में भी प्रत्येक में 4-4 तीर्थंकर विराजमान हैं।

इस प्रकार इन की संख्या 20 से कम कभी नहीं होती है और ये बीस तीर्थंकर सदा विद्यमान रहते हैं। इसी वजह से इन्हें विद्यमान 20 तीर्थंकर कहते हैं।

विद्यमान 20 तीर्थंकरों के नाम व चिन्ह (Names & Symbols of Existent 20 Teerthankars)-

1. सीमंधर स्वामी (बैल)
2. युगमंधर स्वामी (हाथी)
3. बाहु स्वामी (हिरण)
4. सुबाहु स्वामी (बन्दर)
5. संजात स्वामी (सूर्य)
6. स्वयंप्रभ स्वामी (चन्द्रमा)
7. ऋषभानन स्वामी (सिंह)
8. अनन्तवीर्य स्वामी (हाथी)
9. सूरिप्रभ स्वामी (वृषभ)
10. विशाल प्रभ स्वामी (इन्द्र)
11. वज्रधर स्वामी (शंख)
12. चन्द्रानन स्वामी (गो)
13. चन्द्रबाहु स्वामी (कमल)
14. भुजंगम स्वामी (चन्द्रमा)
15. ईश्वर स्वामी (सूर्य)
16. नेमिप्रभ स्वामी (सूर्य)
17. वीरसेन स्वामी (हाथी)
18. महाभद्र स्वामी (चन्द्रमा)
19. देवयश स्वामी (स्वस्तिक)
20. अजितवीर्य स्वामी (कमल)

विदेह क्षेत्र के तीर्थंकर 5, 3 अथवा 2 कल्याणकों वाले होते हैं।

एक समय में होने वाले तीर्थंकरों की अधिकतम संख्या (Maximum Number of Teerthankars At A Time)-

जम्बूद्वीप में भरत, ऐरावत व विदेह क्षेत्र की क्रमशः 1, 1 और 32 इस प्रकार कुल 34 कर्मभूमियाँ और अढ़ाई-द्वीप में कुल 170 कर्मभूमियाँ होती हैं। इनमें प्रत्येक में एक काल में एक-एक तीर्थंकर हो सकते हैं। इस प्रकार किसी एक समय में होने वाले तीर्थंकरों की अधिकतम संख्या 170 है। ऐसा कहा जाता है कि भगवान अजितनाथ के समय 170 तीर्थंकर हुए थे।

1.10 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-केवली और तीर्थंकर भगवान में अन्तर बताइये ?

प्रश्न 2-तीर्थंकर के पाँचों कल्याणकों के नाम बताइये ?

प्रश्न 3-वर्तमान के बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर कौन-कौन से थे ?

प्रश्न 4-तीन पदवी के धारी तीर्थंकरों के नाम बताइये ?

प्रश्न 5-एक से अधिक नाम वाले तीर्थंकर कौन-कौन से हैं ?

प्रश्न 6-भगवान अजितनाथ और सुमतिनाथ के चिन्ह क्या-क्या है ?

प्रश्न 7-विद्यमान तीर्थंकर कितने और कहाँ हैं ?

पाठ-2—आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव (First Teerthankar Bhagwan Rishabhdev)

2.1 श्री महाराज नाभिराज की मरुदेवी नाम की रानी थी जो कि अपने रूप, सौंदर्य, कांति, शोभा, द्युति और विभूति आदि गुणों से इन्द्राणी के समान थी। उस मरुदेवी के विवाह के समय इन्द्र के द्वारा प्रेरित हुए उत्तम देवों ने बड़ी विभूति के साथ उनका विवाहोत्सव मनाया था। उस समय संसार में महाराज नाभिराज ही सबसे अधिक पुण्यवान् थे और मरुदेवी ही सबसे अधिक पुण्यवती थी क्योंकि जिनके स्वयंभू भगवान ऋषभदेव पुत्र होंगे उनके समान पुण्यशाली और कौन हो सकता है? उस समय उत्तम भोगों का अनुभव करते हुए वे दोनों दम्पत्ति ऐसे जान पड़ते थे मानों भोगभूमि की नष्ट हुई लक्ष्मी को ही साक्षात् दिखला रहे हों।

अयोध्या की रचना (Creation of Ayodhya)—जब सर्वत्र कल्पवृक्षों का अभाव हो गया तब नाभिराज और मरुदेवी से अलंकृत स्थान में उनके पुण्य के द्वारा बुलाये हुए इन्द्र ने अयोध्या नगरी की रचना की। उस समय जो मनुष्य जहाँ-तहाँ बिखरे हुए रहते थे, देवों ने उन सबको लाकर उस नगरी में बसाया और सबकी सुविधा के लिए अनेक प्रकार के उपयोगी स्थानों की रचना की। उस नगरी के मध्य में देवों ने सर्वतोभद्र नामक 81 मंजिल का राजमहल बनाया था। वह राजमहल इन्द्रपुरी के साथ स्पर्धा करने वाला था और बहुमूल्य अनेक विभूतियों से सहित था।

अनन्तर उस अयोध्या नगरी में सब देवों ने मिलकर किसी शुभ दिन, शुभ मुहूर्त, शुभयोग और शुभ लग्न में हर्षित होकर पुण्याहवाचन किया। जिन्हें अनेक संपदाओं की परम्परा प्राप्त हुई थी, ऐसे महाराज नाभिराज ने मरुदेवी के साथ आनन्दित होकर पुण्याहवाचन के समय ही उस अतिशय ऋद्धियुक्त अयोध्या नगरी में निवास करना प्रारंभ किया था। "इन दोनों के सर्वज्ञ ऋषभदेव पुत्र जन्म लेंगे" यह समझकर इन्द्र ने अभिषेकपूर्वक उन दोनों की बड़ी पूजा की थी।

2.2 भगवान ऋषभदेव का गर्भावतार (Conception of Bhagwan Rishabhdev)—

छह महीने बाद ही भगवान ऋषभदेव यहाँ स्वर्ग से अवतार लेंगे, ऐसा जानकर देवों ने बड़े आदर के साथ आकाश से रत्नों की वर्षा की थी। इन्द्र की आज्ञा से नियुक्त हुए कुबेर ने हरिन्मणि, इन्द्रनील मणि, पद्मराग मणि आदि उत्तम-उत्तम रत्नों की धारा को नाभिराज के आंगन में वर्षाया था। इस प्रकार स्वामी ऋषभदेव के स्वर्गावतरण से छह महीने पहले से लेकर पीछे भी नौ महीने तक अर्थात् पन्द्रह महीने तक रत्न तथा सुवर्ण की वर्षा होती रही थी।

माता के सोलह स्वप्न (Sixteen Dreams of Mother)—किसी दिन महारानी मरुदेवी ने राजमहल में सोते समय रात्रि के पिछले प्रहर में जिनेन्द्रदेव के जन्मसूचक सोलह स्वप्न देखे। (1) ऐरावत हाथी (2) शुभ्रबैल (3) सिंह (4) हाथी के द्वारा स्वर्णमय कलशों से अभिषिक्त होती हुई कमलासन पर बैठी लक्ष्मी (5) दो पुष्पमालाएँ (6) पूर्ण चन्द्र मंडल (7) उदित होता हुआ सूर्य (8) कमल पत्र से आवृत स्वर्ण के दो कलश (9) सरोवर में क्रीड़ा करती हुई दो मछलियाँ (10) कमलयुक्त सुन्दर तालाब (11) लहरों से युक्त गंभीर समुद्र (12) रत्न निर्मित उत्कृष्ट सिंहासन (13) रत्नों से दैदीप्यमान स्वर्ग का विमान (14) नागेन्द्र भवन (15) किरणों से शोभित रत्नों की राशि (16) निर्धूम अग्नि। इस प्रकार सोलह स्वप्नों को देखने के बाद मरुदेवी ने देखा कि स्वर्ण के समान पीली कांति का धारक, उन्नत कंधों वाला बैल हमारे मुख कमल में प्रवेश कर रहा है।

अनंतर मंगलवाद्यों की ध्वनि और सुप्रभात आदि मंगल स्तोत्रों से प्रबोध को प्राप्त हुई वह रानी उठकर बैठ गई। अनंतर हर्षित हुई वह मरुदेवी मंगल स्नान कर वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो अपने पति के पास पहुँची और विनय से महाराज नाभिराज के दर्शन कर अर्धासन पर सुखपूर्वक बैठकर महाराज नाभिराज से इस प्रकार निवेदन किया—हे देव! आज रात्रि के पिछले प्रहर में मैंने सोलह स्वप्न देखे हैं और उन स्वप्नों को क्रमशः सुनाकर कहा कि हे देव! आप इन स्वप्नों का फल कहिये। महाराज नाभिराज भी अवधिज्ञान से इन स्वप्नों का फल जानकर कहने लगे—हे देवि!

सुनो, ऐरावत हाथी के देखने से तुम्हारे उत्तम पुत्र होगा, उत्तम बैल देखने से वह समस्त लोक में ज्येष्ठ होगा, सिंह के देखने से अनन्त बल से युक्त होगा, मालाओं के देखने से समीचीन धर्म के तीर्थ का चलाने वाला होगा, लक्ष्मी के देखने से सुमेरु पर्वत के मस्तक पर देवों द्वारा अभिषेक को प्राप्त होगा, पूर्ण चन्द्रमा के देखने से समस्त लोगों को आनन्द देने वाला होगा, सूर्य के देखने से देदीप्यमान प्रभा का धारक होगा, दो कलश देखने से अनेक निधियों को प्राप्त होगा, मछलियों का युगल देखने से सुखी होगा, सरोवर के देखने से अनेक लक्षणों से शोभित होगा, समुद्र को देखने से केवली होगा, सिंहासन के देखने से जगत् का गुरु होकर साम्राज्य को प्राप्त करेगा, देवों का विमान देखने से वह स्वर्ग से अवतीर्ण होगा, नागेन्द्र का भवन देखने से वह अवधिज्ञानरूपी लोचनों से सहित होगा, चमकते हुए रत्नों की राशि देखने से गुणों की खान होगा और निर्धूम अग्नि के देखने से कर्मरूपी ईंधन को जलाने वाला होगा तथा तुम्हारे मुख में जो वृषभ ने प्रवेश किया है उसका फल यह है कि तुम्हारे निर्मल गर्भ में तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव अपना शरीर धारण करेंगे। इस प्रकार महाराजा नाभिराज के वचनों को सुनकर रानी मरुदेवी परमानन्द से रोमांच को प्राप्त हो गई थी।

जब अवसर्पिणी के तीसरे सुषमादुःषमा नामक काल में चौरासी लाख पूर्व तीन वर्ष आठ मास और एक पक्ष बाकी रह गया था, तब आषाढ़ कृष्णा द्वितीया के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में वज्रनाभि नाम के अहमिंद्र देव-देवायु का अन्त होने पर सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर मरुदेवी के गर्भ में अवतीर्ण हुए और वहाँ सीप के संपुट में मोती की तरह सब बाधाओं से रहित होकर स्थित हो गये। उस समय समस्त इन्द्र अपने-अपने यहाँ होने वाले चिन्हों से भगवान के गर्भावतार का समय जानकर वहाँ आये और सभी ने नगरी की तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान के माता-पिता को नमस्कार किया। महाराज नाभिराज का आंगन देवों से खचाखच भर गया। सौधर्म इन्द्र देवों के साथ संगीत, नृत्य आदि अनेकों उत्सवों से गर्भकल्याणक उत्सव मनाकर माता-पिता की पूजा कर अपने-अपने स्थानों पर चले गये। उसी समय से लेकर इन्द्र की आज्ञा से दिक्कुमारी देवियाँ उस समय होने योग्य कार्यों के द्वारा दासियों के समान माता मरुदेवी की सेवा करने लगीं।

2.3 भगवान ऋषभदेव का जन्म (Birth of Bhagwan Rishabhdev)—

नव महीने व्यतीत होने पर श्री, ह्री आदि देवियों से सेवित माता मरुदेवी ने चैत्र कृष्णा नवमी के दिन सूर्योदय के समय उत्तराषाढ़ नक्षत्र और ब्रह्म नामक महायोग में मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानों से शोभायमान, बालक होने पर भी गुणों से वृद्ध तथा तीनों लोकों के एकमात्र स्वामी दैदीप्यमान पुत्र श्री ऋषभदेव को उत्पन्न किया। उस समय समस्त दिशाएँ निर्मल हो गईं, प्रजा का हर्ष बढ़ गया, कल्पवृक्षों से स्वयं ही पुष्प बरसने लगे, देवों के स्थानों में बिना बजाये स्वयं ही दुन्दुभि आदि बाजे बजने लगे एवं शीतल तथा सुगन्धित वायु मन्द-मन्द बहने लगी, अकस्मात् सभी देवों के आसन कम्पित होने लगे एवं देवों के मस्तक में लगे हुए मुकुट स्वयमेव नम्रीभूत हो गये। कल्पवासी देवों के घरों में घंटा, ज्योतिषी देवों के यहाँ सिंहनाद, व्यन्तर देवों के यहाँ भेरी शब्द एवं भवनवासी देवों के यहाँ शंखध्वनि होने लगी। आसन के कम्पित होने से इन्द्र ने भी अपने अवधिज्ञान से तीर्थंकर सूर्य के उदय को जानकर आसन से उतर कर भक्तिभाव से परोक्ष में ही भगवान को नमस्कार किया।

इन्द्र का आगमन (Arrival of Indra)—तदनन्तर सौधर्म स्वर्ग के सौधर्म इन्द्र ने इन्द्राणी सहित एक लाख योजन विस्तृत ऐरावत हाथी पर चढ़कर अनेक देवों से परिवृत हो प्रस्थान किया। इन्द्र की आज्ञा पाकर स्वर्गों से हाथी, घोड़े आदि की सात प्रकार की सेनाएँ, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद आदि सभी प्रकार के देव, इन्द्र को चारों ओर से घेर कर चलने लगे। सभी देव-देवेन्द्र अपने-अपने विमानों और पृथक्-पृथक् वाहनों पर चढ़कर जय-जय शब्दोच्चारण करते हुए समस्त आकाशरूपी आंगन को व्याप्त कर आ रहे थे। देवों से घिरे हुए सौधर्म इन्द्र अयोध्या नगरी की प्रदक्षिणा देकर अयोध्यापुरी में पहुँच गये।

प्रसूतिगृह से जिनबालक का लाना (Bringing out of the *Jin*-Child from the Delivery Room)—

इन्द्राणी ने बड़े ही उत्सव से प्रसूतिगृह में प्रवेश किया और वहीं जिन बालक के साथ-साथ माता मरुदेवी के दर्शन किये। पहले कई बार प्रदक्षिणा देकर जगद्गुरु जिनेन्द्रदेव को नमस्कार किया और अपने को गुप्त रखते हुए ही अनेक प्रकार से जिनमाता की स्तुति की और उसे मायामयी नींद से युक्त कर दिया। उसके आगे मायामयी दूसरा बालक रखकर तेजपुंज जगद्गुरु भगवान को दोनों हाथों से उठाकर वह परम आनन्द को प्राप्त हुई और भगवान के शरीर का बार-बार स्पर्श करते हुए महान् पुण्यबंध करके अपनी स्त्रीपर्याय का छेद कर दिया। जिनबालकरूपी सूर्य को लेकर जाती हुई उस इन्द्राणी के आगे-आगे अष्ट मंगल द्रव्य धारण करने वाली दिक्कुमारी देवियाँ चल रही थीं और वे ऐसी मालूम पड़ती थीं कि मानों भगवान की ऋद्धियाँ ही हों। अपने को कृतकृत्य मानती हुई इन्द्राणी ने आदर सहित जिन सूर्य को इन्द्र के हाथों में विराजमान कर दिया।

इन्द्र का भगवान को गोद में लेकर मेरु पर्वत पर गमन (Movement of Indra to Meru Mountain with Bhagwan in his lap) — भगवान को गोद में लेकर सौधर्म इन्द्र हर्ष से नेत्रों को प्रफुल्लित करते हुए भगवान के सुन्दर रूप को देखते हुए और अनेक प्रकार से स्तुति करते हुए भी तृप्त नहीं हुआ, तब उसने अपने एक हजार नेत्र और बना लिये पुनः शीघ्रता से मेरु पर्वत पर चलने का इशारा करने के लिए इन्द्र ने अपना हाथ ऊँचा उठाया। उस समय हे ईश! आपकी जय हो! आप समृद्धिमान हो! इत्यादि मंगल शब्दों को जोर-जोर से कहते हुए देवों ने इतना अधिक कोलाहल किया था कि समस्त दिशाएँ बहरी हो गई थीं। आकाश मार्ग से जाते हुए देवगण स्तुति, नृत्य, संगीत आदि से मार्ग में करोड़ों उत्सव मना रहे थे। भगवान सौधर्म इन्द्र की गोद में बैठे हुए थे। ऐशान इन्द्र सफेद छत्र लगाकर उनकी सेवा कर रहा था और सानत्कुमार तथा माहेन्द्र स्वर्ग के इन्द्र प्रभु के दोनों ओर क्षीरसागर की लहरों के समान सफेद चमर ढोर रहे थे। उस समय की विभूति देखकर अन्य मिथ्यादृष्टि देव इन्द्र को प्रमाण मानकर समीचीन जैनमार्ग में श्रद्धा करने लगे थे। मेरुपर्वतपर्यन्त नीलमणियों से बनाई गई सीढ़ियाँ ऐसी शोभायमान हो रही थीं मानो आकाश ही भक्ति से सीढ़ीरूप पर्याय को प्राप्त हो गया हो। क्रम-क्रम से वे इन्द्रगण ज्योतिष पटल को उल्लंघन कर निन्यानवे हजार योजन ऊँचे उस सुमेरु पर्वत पर जा पहुँचे।

2.4 पांडुकशिला पर जिन बालक का जन्म महोत्सव (Birth Ceremony of the *Jin*-Child on Panduk-Rock) —

सौधर्म इन्द्र ने बड़े प्रेम से देवों के साथ-साथ उस गिरिराज सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा दी और पांडुक वन में ऐशान दिशा में स्थित पांडुक नामक शिला पर जिनेन्द्र भगवानरूपी सूर्य को विराजमान किया। पुनः विक्रिया से एक हजार भुजाएँ बना लीं और सभी कलशों से एक साथ अभिषेक कर दिया।

नामकरण (Naming Ceremony) — ये भगवान जगत भर में ज्येष्ठ हैं और जगत् का हित करने वाले धर्मरूपी अमृत की वर्षा करेंगे, इसलिए ही इन्द्र ने उनका 'ऋषभदेव' यह सार्थक नाम रखा था तथा उनके 'पुरुदेव', 'आदिनाथ', 'वृषभदेव' आदि नाम भी प्रसिद्ध हुए।

अनन्तर भगवान की सेवा के लिए समान अवस्था, समान रूप और समान वेष वाले देवकुमारों को भगवान के साथ क्रीड़ा करने के लिए छोड़ दिया तथा स्नान कराने, वस्त्राभूषण पहनाने, शरीर संस्कार करने और क्रीड़ा कराने के लिए अनेक देवियों को धाय बनाकर नियुक्त करके वे इन्द्रादि अपने-अपने स्थान को चले गये।

भगवान ऋषभदेव की बाल्यावस्था (Childhood of Bhagwan Rishabhdev) — भगवान ऋषभदेव अपनी पहली शैशव अवस्था में कभी मन्द-मन्द हँसते थे, कभी मणिमयी पृथ्वी पर धीरे-धीरे गिरते पड़ते पैरों से चलते हुए देव बालकों के साथ-साथ रत्नों की धूलि में क्रीड़ा करते हुए माता-पिता का हर्ष बढ़ा रहे थे। जन्म से ही मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानों के धारी होने से वे संसार की स्थिति को समझने वाले और समस्त वाङ्मय को प्रत्यक्ष करने वाले, सरस्वती के एकमात्र स्वामी थे, इसलिए समस्त लोक के गुरु हो गये थे। उनका शरीर असाधारण, मल, मूत्र, पसीना से रहित, तपाये हुए सुवर्ण के सदृश था, उनके शरीर में दूध के समान रुधिर,

समचतुरस्र नामक उत्तम संस्थान, वज्रवृषभनाराच नामक उत्तम संहनन था, सुन्दरता और सुगंधि की परम सीमा को पहुँच चुका था, एक हजार आठ लक्षणों से अलंकृत, अप्रमेय महाशक्तिशाली था, वे भगवान प्रिय तथा हितकारी वचन बोलने वाले थे, वे माता का दूध नहीं पीते थे किन्तु इन्द्र के द्वारा हाथ के अँगूठे में स्थापित अमृत को पीते थे अर्थात् अँगूठे को चूसते हुए वृद्धि को प्राप्त होते थे।

भगवान के लिए देवोपनीत भोजन-वस्त्र आदि (Divinely-Supplied Foods-Clothes etc. for Bhagwan)— भगवान का कोमल बिस्तर, कोमल आसन, वस्त्र, आभूषण, अनुलेपन, भोजन, वाहन तथा यान आदि सभी वस्तुएँ देवनिर्मित थीं। ''सौधर्म स्वर्ग में इन्द्र के रहने के भवन की ईशान दिशा में 'सुधर्मा' नामक सभामंडप है, इसके मध्य इन्द्र का सिंहासन है, इस आस्थान मण्डप के आगे मानस्तंभ हैं, ये मानस्तंभ एक योजन चौड़े, छत्तीस योजन ऊँचे पीठकर सहित वज्रमयी एक-एक कोश विस्तार वाले हैं और बारह धारा-पहलू सहित गोल हैं। इन मानस्तंभों में रत्नों की सांकल से लटकते 'करंडक' हैं। इनमें तीर्थंकरों के पहनने आदि के वस्त्र, आभरण आदि हैं। भगवान के लिए भोग-उपभोग योग्य वस्तुओं को इन्द्रादि देवगण, इन्हीं पिटारे से लाते हैं।

2.5 भगवान ऋषभदेव का विवाह-महोत्सव (Marriage Ceremony of Bhagwan Rishabhdev)—

भगवान की यौवन अवस्था का प्रारंभ देखकर महाराज नाभिराज मन में विचार करने लगे कि चूँकि इनका धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करने में भारी उद्योग है, ये नियम से सब परिग्रह छोड़कर वन में जाकर दीक्षा ग्रहण करेंगे तथापि तपस्या करने के लिए जब तक इनकी काललब्धि आती है, तब तक इनके लिए लोक-व्यवहार के अनुरोध से योग्य पत्नी का विचार करना चाहिए। यह निश्चित कर महाराज नाभिराज बड़े ही आदर के साथ भगवान के पास जाकर भगवान से कहने लगे कि हे देव! मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ सो आप सावधान होकर सुनिये। आप जगत् के अधिपति हैं, इसलिए आपको जगत् का उपकार करना चाहिए। आप जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा हैं तथा स्वयंभू हैं—अपने आप उत्पन्न हुए हैं। आपकी उत्पत्ति में हम माता-पिता केवल निमित्तमात्र हैं। यह प्रजा महापुरुषों का ही अनुगमन करती है इसलिए हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ! किसी इष्ट कन्या के साथ विवाह करने के लिए मन कीजिए क्योंकि ऐसा करने से प्रजा की सन्तति का उच्छेद नहीं होगा और उसी से धर्म की सन्तति बढ़ेगी, इस प्रकार धीर-वीर महाराज नाभिराज के वचन सुनकर भगवान ने हँसते हुए 'ओम्' कहकर उनके वचन स्वीकार कर लिये।

भगवान की अनुमति जानकर राजा नाभिराज ने इन्द्र की अनुमति से सुशील, सुन्दर लक्षणों वाली, सती यशस्वती और सुनन्दा नाम की दो कन्याओं के साथ भगवान का पाणिग्रहण किया था। ये दोनों कन्यायें राजा कच्छ और महाकच्छ की बहनें थीं। भगवान के विवाह के समय इन्द्र ने देवों सहित अनेकों उत्सव मनाये थे।

2.6 भगवान ऋषभदेव को पुत्र-पुत्रियों की प्राप्ति (The Sons and Daughters born to Bhagwan Rishabhdev)—

किसी समय यशस्वती महादेवी राजमहल में सो रही थीं, उस समय रात्रि के पिछले भाग में उन्होंने स्वप्न में ग्रसी हुई पृथ्वी, सुमेरु पर्वत, चन्द्रमा सहित सूर्य, हंस सहित सरोवर तथा चंचल लहरों वाला समुद्र देखा। अनन्तर मंगल वाद्य गीतों के साथ प्रबोध को प्राप्त हुई रानी ने अपने पतिदेव भगवान ऋषभदेव के मुख से 'देवि! तुम्हें चक्रवर्ती पुत्र होगा' इस फल को सुनकर अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हो गईं। क्रमश: नौ महीने व्यतीत होने पर उन यशस्वती महादेवी ने महापुण्यशाली पुत्र को जन्म दिया। उस समय उत्तम शुभ नक्षत्र आदि थे और चैत्र कृष्णा नवमी का दिन था। ये ही पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत महाराज हुए थे।

अनन्तर यशस्वती महादेवी से भरत के पीछे जन्म लेने वाले ऋषभसेन, अनन्तवीर्य आदि निन्यानवे पुत्र हुए। वे सभी चरम शरीरी, महाप्रतापी थे तथा 'ब्राह्मी' नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई थी। भगवान ऋषभदेव की दूसरी पत्नी 'सुनन्दा' से भगवान 'बाहुबली' पुत्र हुए और 'सुन्दरी' नाम की पुत्री हुई थी। ये बाहुबली स्वामी चौबीस कामदेवों में से पहले कामदेव हुए थे। इन एक सौ एक पुत्र और दो पुत्रियों सहित भगवान ऋषभदेव अतिशय शोभायमान हो रहे थे और महाराज नाभिराज तथा महारानी मरुदेवी अत्यन्त प्रसन्न थे। जब ये पुत्र-पुत्रियाँ योग्य अवस्था को प्राप्त हो गये, तब भगवान ऋषभदेव ने इन्हें सम्पूर्ण गुणों से और संस्कारों से संस्कारित कर दिया। कर्मयुग के प्रारंभ में भगवान ने अपने पुत्रों के कंठ, वक्ष:स्थल आदि को विभूषित करने वाले ऐसे हार, कंकण, मुद्रिका आदि अनेकों आभूषण बनवाकर पुत्रों को विभूषित किया था।

2.7 ब्राह्मी-सुन्दरी का विद्याध्ययन (Studies of Brahmi and Sundari)—

किसी समय भगवान ऋषभदेव सिंहासन पर सुख से बैठे हुए थे कि उन्होंने अपना चित्त कला और विद्याओं के उपदेश में लगाया। उसी समय उनकी ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों पुत्रियाँ मांगलिक वेषभूषा धारण कर पिता के पास पहुँची और विनय से भगवान को प्रणाम किया। भगवान ने भी उन दोनों कन्याओं को आशीर्वाद देकर बड़े प्रेम से उन्हें अपनी गोद में बिठा लिया, उनके मस्तक पर हाथ फेरा और पुत्रियों के साथ कुछ विनोद करने लगे, अनन्तर बोले-हे पुत्रियों! तुम दोनों विद्या ग्रहण करने में प्रयत्न करो क्योंकि विद्या ग्रहण करने का यही काल है। ऐसा कहकर बराबर उन्हें आशीर्वाद देकर भगवान ने अपने चित्त में स्थित श्रुतदेवता को आदरपूर्वक सुवर्ण के विस्तृत पट्टे पर स्थापित किया, फिर भगवान ने 'सिद्धं नम:' मंगलाचरणपूर्वक अपने दाहिने हाथ से ' अ आ' आदि वर्णमाला लिखकर ब्राह्मी को शुद्ध अक्षरावली लिखने का उपदेश दिया, जिसका नाम सिद्धमातृका है, जो स्वर-व्यंजन के भेद से दो भेदरूप है और समस्त विद्याओं में पाई जाती है तथा भगवान ने अपने बायें हाथ से 'इकाई दहाई' आदि संख्या को लिखते हुए सुन्दरी को अंकगणित लिखने का उपदेश दिया। वाङ्मय के बिना न कोई शास्त्र है और न कोई कला है, इसलिए भगवान ने सबसे पहले उन पुत्रियों को वाङ्मय का उपदेश दिया था। व्याकरणशास्त्र, छंदशास्त्र और अलंकारशास्त्र इन तीनों के समूह को वाङ्मय कहते हैं। भगवान के द्वारा बनाया गया व्याकरणशास्त्र बहुत विस्तृत था, जिसमें सौ से अधिक अध्याय थे। भगवान ने सबसे प्रथम ब्राह्मी कन्या को वर्णमालाएं पढ़ाई थीं, यही कारण है कि आज भी इसे ब्राह्मी लिपि कहते हैं। पिता के अनुग्रह से ये दोनों कन्यायें समस्त विद्याओं को पढ़कर सरस्वती देवी के अवतार लेने के लिए पात्रता को प्राप्त हो गई थीं।

2.8 भरत आदि पुत्रों का विद्याध्ययन (Studies of Bharat etc. Sons)—

जगद्‌गुरु भगवान ऋषभदेव ने इसी प्रकार अपने भरत आदि पुत्रों को भी विनयी बनाकर क्रम से आम्नाय के अनुसार अनेक शास्त्र पढ़ाये। बड़े-बड़े अध्यायों सहित अर्थशास्त्र, नृत्यशास्त्र, चित्रकला संबंधी शास्त्र, वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र, कामशास्त्र, आयुर्वेद, तंत्र परीक्षा, रत्न परीक्षा आदि अनेकों विषयों को पढ़ाया और अधिक कहने से क्या? लोक का उपकार करने वाले जो शास्त्र थे, भगवान ने उन सभी को अपने पुत्रों को पढ़ाया था। इस प्रकार अपने इष्ट—स्त्री पुत्र और पुत्रियों से घिरे हुए सुखों का अनुभव करते हुए भगवान का गृहस्थाश्रम में बहुत कुछ काल व्यतीत हो चुका था अर्थात् बीस लाख पूर्व वर्षों का कुमार काल पूर्ण हो गया था।

इसी बीच में काल प्रभाव से महौषधि, दीप्तौषधि, कल्पवृक्ष तथा सब प्रकार की औषधियाँ शक्तिहीन हो गयी थीं। मनुष्यों के निर्वाह के लिए जो बिना बोए उत्पन्न होने वाले धान्य थे, वे भी काल के प्रभाव से प्राय: विरलता को प्राप्त हो गये थे। कल्पवृक्षों के रस, वीर्य आदि के नष्ट होने से व्याकुल हुई प्रजा जीवित रहने की इच्छा से महाराज नाभिराज के समीप गयी पुन: नाभिराज की आज्ञा से प्रजा भगवान ऋषभदेव के समीप गयी और उन्हें नमस्कार करके निवेदन करने

लगी कि हे तीन लोक के स्वामी! हम लोग जीविका प्राप्त करने की इच्छा से आपकी शरण में आये हैं अत: उपाय को बतलाकर हम लोगों की रक्षा कीजिए।

इस प्रकार प्रजाजनों के दीन वचन सुनकर हृदय दया से प्रेरित हो रहा है, ऐसे भगवान आदिनाथ अपने मन में विचार करने लगे—

''पूर्व और पश्चिम विदेह क्षेत्र में जो स्थिति वर्तमान में है, वही स्थिति आज यहाँ प्रवृत्त करने योग्य है, उसी से यह प्रजा जीवित रह सकती है। वहाँ जिस प्रकार असि, मषि आदि छह कर्म हैं, जैसी क्षत्रिय आदि वर्णों की स्थिति है और जैसी ग्राम, घर आदि की पृथक्-पृथक् रचना है, उसी प्रकार यहाँ पर भी होना चाहिए, इन्हीं उपायों से प्राणियों की आजीविका चल सकती है। कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर अब यह कर्मभूमि प्रकट हुई है, इसलिए यहाँ प्रजा को असि, मषि आदि छह कर्मों के द्वारा ही आजीविका करना उचित है।''

शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न के समय तथा सूर्य आदि ग्रहों के अपने-अपने उच्च स्थानों में स्थित रहने और जगद्गुरु भगवान के हर प्रकार की अनुकूलता होने पर इन्द्र ने प्रथम ही मांगलिक काम किया और फिर उसी अयोध्यापुरी के बीच में जिनमंदिर की रचना की, इसके बाद पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर इस प्रकार चारों दिशाओं में भी यथाक्रम से जिनमंदिरों की रचना की। तदनन्तर कौशल आदि महादेश, अयोध्या आदि नगर, वन और सीमा सहित ग्राम तथा खेड़ों आदि की रचना की थी। देशों के मध्य भाग में कोट, प्राकार, परिखा, गोपुर और अटारी आदि से शोभायमान राजधानी सुशोभित हो रही थी। उस समय इन्द्र बड़े अच्छे ढंग से नगर, गाँवों आदि का विभाग कर 'पुरन्दर' इस सार्थक नाम को प्राप्त हुआ था, अनन्तर भगवान की आज्ञा से नगर, गाँव आदि में प्रजा को बसाकर कृतकृत्य होता हुआ वह इन्द्र प्रभु की आज्ञा लेकर स्वर्ग को चला गया।

2.9 भगवान द्वारा प्रजा को षट्कर्म का उपदेश (Teaching of Six Professions to People by Bhagwan)—

असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प ये छह कार्य प्रजा की आजीविका के कारण हैं। भगवान ऋषभदेव ने अपनी बुद्धिकुशलता से प्रजा के लिए इन्हीं छह कर्मों द्वारा आजीविका करने का उपदेश दिया था, सो ठीक ही है क्योंकि उस समय जगद्गुरु भगवान सरागी ही थे, वीतरागी नहीं थे अर्थात् सांसारिक कार्यों का उपदेश सराग अवस्था में दिया जा सकता है। उन छह कर्मों में तलवार आदि शस्त्र धारण कर सेवा करना असिकर्म कहलाता है, लिखकर आजीविका करना मसिकर्म है, जमीन को जोतना, बोना कृषि कर्म है, शास्त्र पढ़ाकर या नृत्य, गान आदि द्वारा आजीविका करना विद्या कर्म है, व्यापार करना वाणिज्य है और हस्त की कुशलता से चित्र खींचना आदि करना शिल्पकर्म है।

उसी समय आदिब्रह्मा भगवान ऋषभदेव ने तीन वर्णों की स्थापना की थी जो कि विपत्ति से रक्षा करना आदि गुणों के द्वारा क्रम से क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र कहलाते हैं। त्रैवर्णिकों के विवाह, जातिसंबंध तथा व्यवहार आदि सभी कार्य भगवान की आज्ञानुसार ही होते थे। उस समय संसार में जितने भी पाप रहित आजीविका के उपाय थे, वे सब भगवान की सम्मति से प्रवृत्त हुए थे। इस प्रकार से भगवान ऋषभदेव कर्मयुग का प्रारंभ करने से 'कृतयुग' कहलाये और आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा के दिन कृतयुग को प्रारंभ करने से 'प्रजापति' कहलाये थे। भगवान ने मनुष्यों को इक्षुरस संग्रह करने का उपदेश दिया था इसलिए जगत् के लोग उन्हें 'इक्ष्वाकु' कहने लगे। काश्य—तेज के रक्षक होने से 'काश्यप' कहलाये। प्रजा की आजीविका के उपायों का भी मनन करने से 'मनु' और कुलों की व्यवस्था करने से 'कुलकर' और 'कुलधर' भी कहलाये। उस समय प्रजा तीनों जगत् के स्वामी भगवान ऋषभदेव को 'विधाता', 'विश्वकर्मा' और 'स्रष्टा' आदि अनेक नामों से पुकारती थी।

2.10 भगवान का राज्याभिषेक महोत्सव (The Coronation Ceremony of Bhagwan)—

सुखपूर्वक प्रजा का अनुपालन करते हुए कितना ही समय व्यतीत हो जाने पर देवों ने आकर भगवान का सम्राट पद पर

अभिषेक करके महान् उत्सव मनाया। अभिषेक के लिए शुद्ध पवित्र गंगा-सिंधु आदि नदियों का, नन्दा-नन्दोत्तरा आदि वापियों का एवं क्षीरसमुद्र, नन्दीश्वर समुद्र, स्वयंभूरमण समुद्र आदि का भी जल लाया गया था और सुवर्ण घटों से गीत, नृत्य, वाद्य आदि महोत्सवपूर्वक अभिषेक प्रारंभ किया गया था। नाभिराज को आदि लेकर जो बड़े-बड़े राजा थे, उन सभी ने 'सब राजाओं में श्रेष्ठ ये ऋषभदेव वास्तव में राजा के योग्य हैं' ऐसा मानकर उनका एक साथ अभिषेक प्रारंभ किया। नगर-निवासीजनों ने भी, किसी ने कमलपत्र के दोने से, किसी ने मिट्टी के घड़े से सरयू नदी का जल लेकर भगवान के चरणों का अभिषेक किया।

तदनन्तर भगवान की आरती उतारकर स्वर्ग से लाये गये वस्त्र-आभूषण आदि से भगवान को अलंकृत किया। 'महामुकुटबद्ध राजाओं के अधिपति भगवान ऋषभदेव ही हैं' ऐसा कहते हुए महाराज नाभिराज ने अपने मस्तक का मुकुट अपने हाथ से उतारकर भगवान के मस्तक पर धारण कराया था तदनन्तर इन्द्रगण पूर्ववत् 'आनन्द' नामक नाटक को करके देवों के साथ अपने स्थान को चले गये। भगवान का यह राज्यकाल तिरेसठ लाख पूर्व वर्षों का था जो कि पुत्र-पौत्रों के साथ सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था।

2.11 भगवान ऋषभदेव का वैराग्य (Detachment of Bhagwan Rishabhdev) —

किसी समय भगवान ऋषभदेव सभा-मंडप के मध्य भाग में स्थित सिंहासन पर विराजमान थे, उस समय भगवान की सेवा करने के लिए सौधर्म इन्द्र देवों और अप्सराओं के साथ पूजा की सामग्री लेकर भगवान के यहाँ आया और भगवान की आराधना करने की इच्छा से अप्सराओं और गन्धर्वों का नृत्य कराना प्रारंभ कर दिया। भगवान राज्य और भोगों से किस प्रकार विरक्त होंगे? यह विचार कर इन्द्र ने उस समय नृत्य करने के लिए एक ऐसे पात्र को नियुक्त किया, जिसकी आयु अत्यन्त क्षीण हो गई थी। वह अत्यन्त सुन्दरी 'नीलांजना' नाम की देवनर्तकी रस, भाव और लय सहित फिरकी लगाती हुई नृत्य कर रही थी कि इतने में ही आयुरूपी दीपक के क्षय होने से वह बिजली के समान क्षणभर में अदृश्य हो गई। उसके नष्ट होते ही इन्द्र ने रसभंग के भय से उस स्थान पर उसी के समान शरीर वाली दूसरी देवी खड़ी कर दी जिससे नृत्य ज्यों का त्यों चलता रहा। यद्यपि दूसरी देवी खड़ी कर देने के बाद भी वही नृत्य का परिक्रम था तथापि भगवान ने उसी समय उसके स्वरूप का अन्तर जान लिया था। तत्क्षण ही भोगों से विरक्त और अत्यन्त संवेग तथा वैराग्य भावना को प्राप्त हुए भगवान मन में चिन्तवन करने लगे कि बड़े आश्चर्य की बात है कि यह जगत् विनश्वर है, लक्ष्मी बिजलीरूपी लता के समान चंचल है, यौवन, शरीर, आरोग्य और ऐश्वर्य आदि सभी चलाचल हैं। उस समय विशुद्धियों ने भगवान के हृदय में अपना स्थान जमा लिया था और वे ऐसी मालूम होती थीं कि मानों मुक्तिलक्ष्मी के द्वारा प्रेरित हुई उसकी सखियाँ ही द्वादश अनुप्रेक्षारूप से सामने आकर उपस्थित हुई हों। जगद्गुरु भगवान के अन्तःकरण की समस्त चेष्टाएं इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से जान ली थीं। उसी समय भगवान के वैराग्य की प्रशंसा करने के लिए और उनके तप कल्याणक की पूजा करने के लिए 'लौकांतिक देव' ब्रह्मलोक से उतरे। ये लौकांतिक देव सारस्वत, आदित्य, वन्हि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट इस तरह आठ प्रकार के हैं। ये सभी देवों में उत्तम देवर्षि कहलाते हैं। पूर्व भव में सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के अभ्यास से ग्यारह अंग, चौदह पूर्व के पारंगत, विरक्त और बालब्रह्मचारी होते हैं, पाँचवे स्वर्ग के अन्तभाग में निवास करने वाले हैं और नियम से एक भवावतारी होते हैं। उन देवों ने प्रथम ही कल्पवृक्ष के पुष्पों से भगवान् के चरणों की पूजा की और फिर अनेकों अर्थों से भरे हुए स्तोत्रों से भगवान की स्तुति करने लगे। वे देव अपने इतने ही नियोग से कृतार्थ होकर अपने स्वर्ग को चले गये।

इतने में ही आसनों के कम्पायमान होने से समस्त इन्द्र अपने वाहनों और अपने-अपने निकाय के देवों के साथ आये और अयोध्यापुरी को चारों ओर से घेरकर आकाश में ही अपने-अपने निकाय के अनुसार ठहर गये। अनन्तर इन्द्रों ने क्षीरसागर के जल से उनका महाभिषेक किया और दिव्य आभूषण-वस्त्र आदि से उन्हें अलंकृत किया। भगवान ऋषभदेव ने साम्राज्यपद पर अपने बड़े पुत्र भरत का अभिषेक कर इस भारतवर्ष को उनसे सनाथ किया और युवराज

पद पर बाहुबली को स्थापित किया। उस समय भगवान ऋषभदेव का तप कल्याणक महोत्सव और भरत का राज्याभिषेक हो रहा था, इन दोनों प्रकार के उत्सवों के समय स्वर्गलोक और पृथ्वीलोक दोनों ही हर्ष से विभोर हो रहे थे। भगवान ने दोनों ही पुत्रों को राज्य समर्पित करके अपने शेष पुत्रों के लिए यह पृथ्वी विभक्त कर बाँट दी थी।

2.12 भगवान का दीक्षा के लिए वनगमन (Bhagwan's Departure to the Forest for Initiation) —

भगवान ऋषभदेव, इन्द्र के द्वारा बनाई गई 'सुदर्शन' नामक पालकी पर आरूढ़ हुए। उस समय भगवान की उस पालकी को प्रथम ही राजा लोग सात पैंड तक ले चले और फिर विद्याधर लोग आकाश में सात पैंड तक ले चले अनन्तर वैमानिक और भवनत्रिक देवों ने अत्यन्त हर्षित होकर वह पालकी अपनी कंधों पर रखी और शीघ्र ही उसे आकाश में ले गये। भगवान ऋषभदेव के माहात्म्य की प्रशंसा करना इतना ही पर्याप्त है कि उस समय देवों के अधिपति इन्द्र भी स्वयं उनकी पालकी ढो रहे थे। यक्ष जाति के देव सुगंधित पुष्पों की वर्षा कर रहे थे, शीतल पवन चल रही थी और करोड़ों मंगल वाद्य बज रहे थे। भगवान के प्रस्थान करने पर यशस्वती सुनन्दा रानियाँ मंत्रियों सहित भगवान के पीछे-पीछे चलने लगीं, उस समय शोक से उनके नेत्रों में आँसू भर रहे थे। यशस्वती और सुनन्दा महादेवियाँ अन्तःपुर की मुख्य-मुख्य स्त्रियों से परिवृत्त होकर पूजा की सामग्री लेकर भगवान के पीछे-पीछे जा रही थीं। उस समय महाराज नाभिराज भी मरुदेवी तथा सैकड़ों राजाओं से परिवृत्त होकर भगवान के तप कल्याणक का उत्सव देखने के लिए उनके पीछे-पीछे जा रहे थे। सम्राट् भरत भी नगरनिवासी, मंत्री, उच्चवंश में उत्पन्न हुए राजा और अपने छोटे-छोटे भाइयों के साथ-साथ बड़ी भारी विभूति लेकर भगवान के पीछे-पीछे चल रहे थे। इस प्रकार जगद्गुरु भगवान ऋषभदेव अत्यन्त विस्तृत 'सिद्धार्थक' नामक वन में जा पहुँचे। वह वन अयोध्यापुरी से न तो बहुत दूर था और न बहुत निकट था। इन्द्रों की सेना भी आकाश और पृथ्वी को व्याप्त करती हुई उस सिद्धार्थक वन में जा पहुँची। यह वन अशोक, चंपक, सप्तपर्ण, आम्र और वटवृक्षों से व्याप्त अनेक पक्षियों के कलकल रवों से मनोहर था। उस वन में देवों ने पहले से ही चन्द्रकान्तमणि से निर्मित, घिसे हुए चन्दन द्वारा दिये गये मांगलिक छींटों से चर्चित विस्तृत एक शिला स्थापित कर रखी थी। उस पर इन्द्राणियों ने अपने हाथों से रत्नों के चूर्ण के चौक बनाये थे। उस शिला पर बड़े-बड़े वस्त्रों से आश्चर्यकारी मण्डप बनाया गया जो कि धूपघट, मंगल द्रव्य और ध्वजाओं से मनोहर था। पालकी से उतरकर उस शिला पर विराजमान होकर भगवान ने देवेन्द्रों, मनुष्यों से भरी हुई उस सभा को उपदेश दिया और शोकातुर प्रजा को समझाया कि हे प्रजाजनों! तुम लोग शोक छोड़ो क्योंकि जब प्राणियों का शरीर से वियोग निश्चित है, तब अन्य वस्तुओं के वियोग की बात ही क्या? अतिशय चतुर भरत को मैंने आप लोगों की रक्षा करने में नियुक्त किया है, आप लोग निरन्तर धर्म में स्थिर रहते हुए उनकी सेवा करें। भगवान के ऐसा कहने के बाद प्रजा ने उनकी पूजा की। प्रजा ने जिस स्थान पर भगवान की पूजा की, वह स्थान आगे चलकर पूजा के कारण 'प्रयाग' नाम को प्राप्त हुआ।

प्रभु ने कुटुम्ब के लोगों तथा नम्रीभूत राजाओं का मोह त्यागकर अन्तरङ्ग-बहिरंग परिग्रह का त्याग कर दिया। भगवान पूर्व दिशा की ओर मुँह कर पद्मासन से विराजमान हुए और 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' इस मंत्र के द्वारा सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार कर पंचमुष्ठियों से केशलोंच किया। चैत्र कृष्णा नवमी के दिन शुभमुहूर्त, शुभलग्न और उत्तराषाढ़ नक्षत्र में सायंकाल के समय भगवान ने दीक्षा धारण की थी। भगवान के मस्तक पर निवास करने से पवित्र हुए केशों को इन्द्र ने रत्न के पिटारे में रखकर आदरपूर्वक उन्हें क्षीर समुद्र में क्षेपण किया।

2.13 भगवान ऋषभदेव का प्रथम आहार (The first food of Bhagwan Rishabhdev) —

जगद्गुरु भगवान ऋषभदेव को योग धारण किये हुए जब छह माह पूर्ण हो गये, तब यतियों की चर्या — आहार लेने की विधि बतलाने के उद्देश्य से शरीर की स्थिति के अर्थ निर्दोष आहार ढूंढने के लिए निकले।

भगवान जिस ओर जाते थे, वहीं-वहीं के लोग प्रसन्न होकर बड़े संभ्रम से आकर उन्हें प्रणाम करते थे। उस समय सभी

लोग आहारदान की विधि से अनभिज्ञ थे। भगवान क्यों विहार कर रहे हैं? ये भी नहीं समझते थे। कितने ही लोग भगवान के पीछे-पीछे चलने लगते थे, तो कितने ही लोग महान् अनर्घ्य रत्नों को भेंट में लाकर प्रार्थना करते कि हे देव! प्रसन्न होइये और हमारी तुच्छ पूजा स्वीकार कीजिए, कितने ही लोग करोड़ों पदार्थ, करोड़ों वाहन समीप में ले आते किन्तु भगवान को उनसे कुछ प्रयोजन न होने से वे चुपचाप आगे चले जाते। कितने ही गन्ध, वस्त्र, आभरण आदि ले आते और कितने ही अज्ञानी नवयौवन कन्याओं को ले आते और उनसे विवाह करने की प्रार्थना करने लगते कितने ही भोजन सामग्री ले आते थे।

इस प्रकार जगत् को आश्चर्य करने वाली गूढ़चर्या से उत्कृष्ट चर्या धारण करने वाले भगवान के छह महीने और भी व्यतीत हो गये। इस तरह एक वर्ष पूर्ण होने पर भगवान ऋषभदेव कुरुजांगल देश के आभूषण के समान सुशोभित हस्तिनापुर नगर में पहुँचे। वहाँ के स्वामी राजा सोमप्रभ कुरुवंश के शिखामणि थे और उनके छोटे भाई राजा 'श्रेयांस कुमार' थे। उन श्रेयांस कुमार को रात्रि के पिछले प्रहर में कुछ उत्तम-उत्तम स्वप्न हुए जिसका फल पुरोहित के वचनों से सुनकर दोनों भाई भगवान की कथा करते हुए बैठी ही थे कि इतने में भगवान ऋषभदेव अकेले ही विहार करते हुए हस्तिनापुर में आ गये। सिद्धार्थ नामक द्वारपाल से प्रभु के आगमन का समाचार सुनकर दोनों भाई राजमहल के आँगन तक बाहर और दूर से ही नम्रीभूत होकर भगवान के चरणों को भक्ति से नमस्कार किया, प्रदक्षिणाएँ दीं और जल से चरणों का प्रक्षालन कर पूजा करके अर्घ्य समर्पण करने लगे।

भगवान् के रूप को देखकर राजा 'श्रेयांस कुमार' को जातिस्मरण हो गया, जिससे उन्हें अपने पूर्व भव संबंधी श्रीमती और वज्रजंघ का समस्त वृत्तांत याद हो आया अर्थात् इससे पूर्व आठवें भव में भगवान आदिनाथ का जीव राजा वज्रजंघ था और राजा श्रेयांस कुमार का जीव रानी श्रीमती था। इन युगल दम्पत्तियों ने बड़ी भक्ति से चारण ऋद्धिधारी युगल मुनियों को आहार दान दिया था। उसका राजा श्रेयांस को इस समय स्मरण हो गया। इससे मुनियों के आहारदान की सारी विधि को समझकर राजा श्रेयांस शीघ्र ही भगवान को आहारदान देने में तत्पर हो गये थे। मुनिराज का पड़गाहन करना, उन्हें ऊँचे स्थान पर विराजमान करना, उनके चरण धोना, उनकी पूजा करना, उन्हें नमस्कार करना, अपने मन, वचन, काय की शुद्धि और आहार की शुद्धि का निवेदन करना, ये दान देने वाले की नवधा भक्ति कहलाती है। "इस प्रकार नवधा भक्ति पूर्वक राजा सोमप्रभ, उनकी रानी लक्ष्मीमती और श्रेयांस कुमार आदरपूर्वक भगवान के हाथ की अंजलि में इक्षुरस का आहार दे रहे थे।" उस समय इस महादान के प्रभाव से आकाश से देवों के द्वारा पंचाश्चर्य वृष्टि की गई थी। वह दिन वैशाख शुक्ला तृतीया का था। यही कारण है कि आज भी उस दिन को 'अक्षय तृतीया' कहते हैं।

तदनन्तर देवों से समीचीन दान और उसके फल की घोषणा सुनकर महाराज भरत भी वहाँ आकर श्रेयांस को दानतीर्थ प्रवर्तक मानकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। चार ज्ञान के धारक भगवान इस प्रकार से एक हजार वर्ष तक तपश्चरण करते रहे।

2.14 भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान का उदय (Acquirement of Omniscience by Bhagwan Rishabhdev) —

किसी समय विचार करते हुए भगवान 'पुरिमतालपुर' नामक नगर के 'शकटास्य' नामक उद्यान में वटवृक्ष के नीचे एक शिला पर पर्यंकासन से विराजमान हो गये। इस नगर के राजा वृषभसेन भगवान के पुत्र और भरत के छोटे भाई थे। उस समय भगवान ने ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा घातिया कर्मरूपी ईंधन को जला दिया और फाल्गुन कृ. एकादशी के दिन उन्हें लोक-परलोक प्रकाशी केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने तत्क्षण ही देव कारीगरों के साथ सुन्दर समवसरण बना दिया। इन्द्रनीलमणि से निर्मित गोल यह समवसरण बारह योजन विस्तृत कमल के आकार का होता है। इसके मध्य में गंधकुटी कर्णिका के आकार की ऊँची उठी हुई होती है। केवलज्ञान होने के बाद भगवान इस पृथ्वी तल से पाँच हजार धनुष प्रमाण ऊपर चले जाते

हैं। एक धनुष चार हाथ का होता है। समवसरण में बीस हजार सीढ़ियाँ होती हैं जो कि एक हाथ प्रमाण ऊँची रहती हैं। समवसरण में चार कोट, पाँच वेदियाँ, इनके बीच में आठ भूमियाँ और सर्वथा प्रत्येक अन्तर भाग में तीन पीठ होते हैं। समवसरण की चार महावीथियों में चार मानस्तंभ होते हैं, जिनके दर्शन से ही मिथ्यादृष्टि भव्यों के मानगलित हो जाते हैं।

2.15 भगवान ऋषभदेव का निर्वाण गमन (Salvation of Bhagwan Rishabhdev)—

इस प्रकार सज्जनों को मोक्षरूपी उत्तम फल की प्राप्ति कराने के लिए भगवान ने अपने गणधरों के साथ-साथ एक हजार वर्ष और चौदह दिन कम एक लाख पूर्व वर्षों तक विहार किया और जब आयु के चौदह दिन बाकी रह गये, तब योगों का निरोध कर पौषमास की पूर्णमासी के दिन श्रीशिखर और सिद्धशिखर के बीच में कैलाशपर्वत पर जाकर विराजमान हो गये। उसी रात्रि में भरत महाराज ने स्वप्न में देखा कि महामेरुपर्वत अपनी लम्बाई से सिद्धक्षेत्र तक पहुँच गया है। अर्ककीर्ति, गृहपति, प्रधानमंत्री आदि ने भी कुछ-कुछ स्वप्न देखे। सभी ने प्रातः निर्णय किया कि भगवान ऋषभदेव का मोक्ष होने वाला है। भरत महाराज उसी दिन वहाँ कैलाशपर्वत पर आ गये और चौदह दिन बराबर अखंड पूजा करते रहे।

माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन सूर्योदय के शुभ मुहूर्त और अभिजित् नक्षत्र में भगवान ऋषभदेव पूर्व दिशा की ओर मुँह करके अनेक मुनियों के साथ पर्यंकासन से विराजमान थे, उन्होंने तीसरे सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नाम के शुक्लध्यान से तीनों योगों का निरोध किया और फिर अंतिम गुणस्थान में ठहरकर पाँच लघु अक्षरों के उच्चारण प्रमाण काल में चतुर्थ व्युपरतक्रियानिवृत्ति नाम के शुक्लध्यान से अघातिया कर्मों का नाश किया। औदारिक, तैजस और कार्माण इन तीनों शरीरों के नाश से सिद्धत्व पर्याय प्राप्तकर वे सम्यक्त्व आदि निज के आठ गुणों से युक्त हो क्षणभर में ही तनुवातवलय में जा पहुँचे तथा वहाँ पर नित्य, निरंजन अपने अंतिम शरीर से कुछ न्यून, अमूर्त, आत्मसुख में तल्लीन और निरन्तर संसार को देखते हुए विराजमान हो गये।

उसी समय मोक्षकल्याणक की पूजा करने की इच्छा से सब देवगणों ने "यह भगवान का शरीर पवित्र, उत्कृष्ट, मोक्ष का साधन, स्वच्छ और निर्मल है" यह विचार कर उसे बहुमूल्य पालकी में विराजमान किया। तदनन्तर जो अग्निकुमार देवों के इन्द्र के रत्नों की कान्ति से दैदीप्यमान उन्नत मुकुट से उत्पन्न हुई है तथा चन्दन, अगुरु, कपूर, केशर आदि सुगंधित पदार्थों और घी, दूध आदि से बढ़ाई गई है, ऐसी अग्नि से जगत् की अभूतपूर्व सुगंधि प्रगट कर उनके नख-केश आदि बचे हुए अवयवों का अग्नि संस्कार किया। तदनन्तर उन्हीं इन्द्रों ने पंचकल्याणक को प्राप्त होने वाली श्री ऋषभदेव के अग्नि संस्कार की भस्म उठाई और हम लोग भी ऐसे ही हों, यही सोचकर बड़ी भक्ति से अपने ललाट पर, दोनों भुजाओं में, गले में और वक्षस्थल में लगाई।

उधर भरत महाराज पिता के वियोग से विह्वल हुए शोकरूपी अग्नि से पीड़ित हो गये, तब श्री वृषभसेन गणधर ने उन्हें बहुत समझाया और उनके संतप्त चित्त को धर्मामृत वचनों से शान्त किया।

जब चतुर्थकाल के प्रारंभ होने में तीन वर्ष, आठ माह और पन्द्रह दिन शेष थे, तब भगवान ऋषभदेव ने मोक्षपद प्राप्त किया था। अनन्तर चतुर्थकाल में अजितनाथ से लेकर भगवान महावीर पर्यंत 23 तीर्थंकर और हुए हैं।

2.16 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-भगवान ऋषभदेव के महल का क्या नाम था ?

प्रश्न 2-भगवान ऋषभदेव का जन्म किस तिथि में हुआ था ?

प्रश्न 3-भगवान ऋषभदेव के कितने पुत्र-पुत्रियाँ थे ?

प्रश्न 4-भगवान ऋषभदेव ने कौन से षट्कर्मों का उपदेश प्रजा को दिया था ?

प्रश्न 5-भगवान ऋषभदेव के दीक्षा एवं निर्वाणस्थल का नाम बताओ ?

पाठ-3 – तीर्थंकर नेमिनाथ (Teerthankar Neminath)

3.1 भगवान नेमिनाथ का जन्म (Birth of Bhagwan Neminath)-

कुशार्थ देश (वर्तमान उत्तरप्रदेश) के शौरीपुर नगर में हरिवंशी राजा शूरसेन रहते थे। उनके वीर नाम के पुत्र की धारिणी रानी से अंधकवृष्टि और नरवृष्टि नाम के दो पुत्र हुए। अंधकवृष्टि की रानी का नाम सुभद्रा था। इन दोनों के समुद्रविजय, स्तिमितसागर, हिमवान, विजय, अचल, धारण, पूरण, पूरितार्थीच्छ, अभिनंदन और वसुदेव ये दस पुत्र थे तथा कुन्ती और माद्री नाम की दो पुत्रियाँ थीं।

समुद्रविजय की रानी का नाम शिवादेवी था। पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य का श्री समुद्रविजय महाराज धर्मनीति से संचालन करते थे। छोटे भाई वसुदेव की रोहिणी से बलभद्र एवं देवकी रानी से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था।

जब जयंत विमान के इन्द्र की आयु छह मास की शेष रह गई तब काश्यपगोत्री, हरिवंश शिखामणि राजा समुद्रविजय की रानी शिवादेवी के आंगन में देवों द्वारा की गई रत्नों की वर्षा होने लगी। कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में वह अहमिंद्र का जीव रानी के गर्भ में आ गया।

अनंतर नवमास के बाद श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन चित्रा नक्षत्र में ब्रह्मयोग के समय तीन ज्ञान के धारक भगवान का जन्म हुआ। इंद्रादि देवों ने जन्मोत्सव मनाकर तीर्थंकर शिशु का 'नेमिनाथ' नामकरण किया। भगवान नमिनाथ के बाद पाँच लाख वर्ष बीत जाने पर नेमिजिनेन्द्र उत्पन्न हुये हैं। उनकी आयु एक हजार वर्ष की थी, शरीर दश धनुष ऊँचा था। प्रभु के शरीर का वर्ण नील कमल के सदृश होते हुये भी इतना सुन्दर था कि इंद्र ने एक हजार नेत्र बना लिये फिर भी रूप को देखते हुये तृप्त नहीं हुआ था।

हरिवंश पुराण में नेमिनाथ तीर्थंकर का जन्म सौर्यपुर (शौरीपुर) में ही माना है। पश्चात् देवों द्वारा रची गई द्वारावती नगरी में श्री कृष्ण आदि के जाने की बात कही है।

कारणवश श्रीकृष्ण तथा होनहार श्री नेमिनाथ तीर्थंकर के पुण्य प्रभाव से इन्द्र की आज्ञा पाकर कुबेर ने एक सुन्दर 'द्वारावती' नामक नगरी की रचना की।

भगवान देवों द्वारा आनीत दिव्य भोगसामग्री का अनुभव करते हुये चिरकाल तक द्वारावती में रहे। किसी एक दिन मगध देश के कुछ व्यापारी उस नगरी में आ गये और वहाँ से श्रेष्ठरत्न खरीद कर अपने देश में ले गये तथा अर्धचक्री (प्रतिनारायण) राजा जरासंध को रत्न भेंट किये। राजा ने उन रत्नों को देखकर महान आश्चर्य चकित होकर उनसे पूछा कि आप ये रत्न कहाँ से लाये हो? उत्तर में उन लोगों ने श्रीकृष्ण और भगवान नेमिनाथ के वैभव का वर्णन कर दिया। यह सुनते ही जरासंध कुपित होकर युद्ध करने को तैयार हो गया।

'शत्रु चढ़कर आ गया है' यह समाचार सुनकर श्री कृष्ण को जरा भी चिंता नहीं हुई। वे भगवान नेमिनाथ के पास गये और बोले कि आप इस नगर की रक्षा कीजिये। सुना है कि राजा जरासंध हम लोगों को जीतना चाहता है सो मैं उसे आपके प्रभाव से घुने हुये जीर्णवृक्ष के समान शीघ्र ही नष्ट किये देता हूँ। श्रीकृष्ण के वचन सुनकर प्रभु ने अपने आप अवधिज्ञान से विजय को निश्चित जानकर मुस्कुराते हुये 'ओम्' शब्द कह दिया अर्थात् अपनी स्वीकृति दे दी। श्रीकृष्ण भी प्रभु की मुस्कान से अपनी विजय को निश्चित समझकर समस्त यादव और पांडव आदिकों के साथ कुरुक्षेत्र में आ गये।

इस भयंकर युद्ध में राजा जरासंध ने कुपित होकर चक्र श्रीकृष्ण पर चला दिया। वह चक्ररत्न भी श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा देकर उनकी दाहिनी भुजा पर ठहर गया, बस क्या था, श्रीकृष्ण ने उसी चक्र से जरासंध का काम समाप्त कर दिया और तत्क्षण ही देवों द्वारा पूजा को प्राप्त हुए। अर्धचक्री (नारायण) हो गये। अनंतर बड़े हर्ष से इन लोगों ने द्वारावती में प्रवेश किया और वहाँ पर राज्याभिषेक को प्राप्त हुए।

"किसी एक दिन कुबेर द्वारा भेजे हुए वस्त्राभरणों से अलंकृत युवा श्री नेमिकुमार, बलदेव तथा नारायण आदि कोटि-कोटि यादवों से भरी हुई कुसुम-चित्रा नाम की सभा में गये। राजाओं ने अपने-अपने आसन छोड़ प्रभु के सन्मुख आकर उन्हें नमस्कार किया। श्रीकृष्ण ने भी आकर उनकी अगवानी की। तदनंतर श्रीकृष्ण के साथ वे उनके आसन को अलंकृत करने लगे।

वहाँ वार्तालाप के प्रसंग में बलवानों की गणना छिड़ने पर किसी ने अर्जुन को, किसी ने युधिष्ठिर को इत्यादि रूप से किसी ने श्रीकृष्ण को अत्यधिक बलशाली कहा। तरह-तरह की वाणी सुनकर बलदेव ने लीलापूर्ण दृष्टि से भगवान की ओर देखकर कहा कि तीनों जगत में इनके समान दूसरा बलवान् नहीं है, ये गिरिराज को अनायास ही कंपायमान कर सकते हैं यथार्थ में ये जिनेंद्र हैं इनसे उत्कृष्ट दूसरा कौन हो सकता है?

इस प्रकार वचन सुनकर नारायण श्रीकृष्ण ने भगवान से कहा-भगवन्! यदि आपके शरीर का ऐसा उत्कृष्ट बल है तो बाहुयुद्ध में उसकी परीक्षा क्यों न ली जाये? भगवान ने कहा-हे अग्रज! यदि आपको मेरी भुजाओं का बल जानना ही है तो मल्लयुद्ध की क्या आवश्यकता है? सहसा इस आसन से मेरे इस पैर को ही विचलित कर दीजिये। श्रीकृष्ण उसी समय कमर कसकर जिनेंद्र भगवान को जीतने की इच्छा से उठ खड़े हुए, लेकिन सफल न हो सके और उसी समय देवों सहित इन्द्र ने आकर भगवान नेमिनाथ की अनेकों स्तुतियों से स्तुति और पूजा की। तदनंतर सब अपने-अपने महलों में चले गये।

3.2 भगवान नेमिनाथ का वैराग्य (Detachment of Bhagwan Neminath)-

किसी समय मनोहर नामक उद्यान में भगवान नेमिनाथ तथा सत्यभामा आदि जलकेलि कर रहे थे। स्नान के अनंतर श्री नेमिनाथ ने सत्यभामा से कहा-हे नीलकमल के समान नेत्रों वाली! तू मेरा यह स्नान का वस्त्र ले। सत्यभामा ने कहा, मैं इसका क्या करूँ? नेमिनाथ ने कहा कि तू इसे धो डाल। तब सत्यभामा कहने लगी क्या आप श्रीकृष्ण हैं? वह श्रीकृष्ण, जिन्होंने कि नागशय्या पर चढ़कर शार्ङ्ग नाम का धनुष अनायास ही चढ़ा दिया था और दिग्दिगंत को व्याप्त करने वाला शंख पूरा था? क्या आपमें यह साहस है? यदि नहीं तो आप मुझसे वस्त्र धोने की बात क्यों करते हैं?

नेमिनाथ ने कहा कि 'मैं यह कार्य अच्छी तरह कर दूँगा' इतना कहकर वे गर्व से प्रेरित हो आयुधशाला में पहुँच गये। वहाँ नागराज के महामणियों से सुशोभित नागशय्या पर अपनी ही शय्या के समान चढ़ गये और शार्ङ्ग धनुष चढ़ाकर समस्त दिशाओं के अंतराल को रोकने वाला शंख फूंक दिया। उस समय श्रीकृष्ण अपनी कुसुमचित्रा सभा में विराजमान थे। वे सहसा ही यह आश्चर्य पूर्ण काम सुनकर व्यग्र हो उठे। बड़े आश्चर्य से किंकरों से पूछा कि यह क्या है? किंकरों ने भी पता लगाकर सारी बात बता दी।

उस समय अर्ध चक्री श्रीकृष्ण ने विचार करते हुये कहा कि आश्चर्य है, बहुत समय बाद कुमार नेमिनाथ का चित्त राग से युक्त हुआ है। अब इनका विवाह करना चाहिए। वे शीघ्र ही राजा उग्रसेन के घर स्वयं पहुँच गये और रानी जयावती से उत्पन्न राजीमति कन्या की श्री नेमिनाथ के लिए याचना की। राजा उग्रसेन ने कहा हे देव! आप तीन खण्ड के स्वामी हैं अतः आपके सामने हम लोग कौन होते हैं? शुभ मुहूर्त में विवाह निश्चित हो गया।

तदनंतर देवों द्वारा आनीत नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित भगवान नेमिनाथ, समान वयवाले अनेक मंडलेश्वर राजपुत्रों से घिरे हुये चित्रा नाम की पालकी पर आरूढ़ होकर दिशाओं का अवलोकन करने के लिए निकले। वहाँ उन्होंने करुणस्वर से चिल्लाते हुये और इधर-उधर दौड़ते हुए, भूख, प्यास से व्याकुल हुए तथा अत्यंत भयभीत हुए, दानदृष्टि से युक्त मृगों को देख दयावश उसी समय श्री नेमिकुमार को पशुओं के प्रति करुणा जागृत हो गई और शीघ्र ही भोगों से वैराग्य उत्पन्न हो गया और विरक्त चित्त हुए लौटकर अपने घर वापस आ गये। अपने अनेक पूर्व भवों का स्मरण कर भयभीत हो गये। अब तक प्रभु के कुमार काल के तीन सौ वर्ष व्यतीत हो चुके थे।

तत्क्षण ही लौकांतिक देवों से पूजा को प्राप्त हुए प्रभु को देवों ने देवकुरु नाम की पालकी पर बिठाया और सहस्राम्र वन में ले गये। श्रावण कृष्ण षष्ठी के दिन सायंकाल के समय तेला का नियम लेकर एक हजार राजाओं के साथ जैनेश्वरी दीक्षा से विभूषित हो गये। उसी समय उन्हें चौथा मन:पर्यय ज्ञान प्रगट हो गया।

राजीमती ने भी प्रभु के पीछे तपश्चरण करने का निश्चय कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि शरीर की बात तो दूर ही रही, वचनमात्र से भी दी हुई कुलस्त्रियों का यही न्याय है।

पारणा के दिन द्वारावती नगरी में राजा वरदत्त ने पड़गाहन करके प्रभु को आहार दिया जिसके फलस्वरूप पंचाश्चर्य को प्राप्त हो गये अर्थात् देवों ने साढ़े बारह करोड़ रत्न वर्षाये। पुष्प वृष्टि, मन्द सुगन्ध वायु, दुन्दुभी बाजे और अहोदानं आदि प्रशंसा वाक्य होने लगे।

3.3 केवलज्ञान एवं निर्वाण (Omniscience and Salvation)-

इस प्रकार तपश्चर्या करते हुये प्रभु के छद्मस्थ अवस्था के छप्पन दिन व्यतीत हो गये तब वे रैवतक पर्वत पर पहुँचे, तेला का नियम लेकर किसी बड़े भारी बाँस वृक्ष के नीचे विराजमान हो गये। आश्विन कृष्ण प्रतिपदा के दिन चित्रा नक्षत्र में प्रात: काल के समय प्रभु को लोकालोकप्रकाशी केवलज्ञान प्रकट हो गया। उनके समवसरण में वरदत्त को आदि लेकर ग्यारह गणधर थे, अठारह हजार मुनि, राजीमती आदि चालीस हजार आर्यिकाएं, एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकाएं थीं। भगवान की सभा में बलभद्र और श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष आये। धर्म का स्वरूप सुना और अपने सभी भव-भवांतर पूछे।

किसी समय भगवान की दिव्यध्वनि से यह बात मालूम हुई कि 'द्वीपायन मुनि के क्रोध के निमित्त से इस द्वारावती नगरी का विनाश होगा' इस भावी दुर्घटना को सुनकर कितने ही महापुरुषों ने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली थी। इस प्रकार प्रभु नेमिनाथ ने छह सौ निन्यानवे वर्ष, नौ महीना और चार दिन तक विहार किया था।

अनन्तर गिरनार पर्वत पर आकर विहार छोड़कर पाँच सौ तेतीस मुनियों के साथ एक महीने का योग निरोध करके आषाढ़ शुक्ला सप्तमी के दिन चित्रा नक्षत्र में रात्रि के प्रारम्भ में ही प्रभु ने अघातिया कर्मों का नाश कर मोक्ष पद प्राप्त कर लिया। उसी समय इंद्रादि देवों ने आकर बड़ी भक्ति से प्रभु का परिनिर्वाण कल्याणक महोत्सव मनाया। वे श्री नेमिनाथ भगवान हमारे अंत:करण को पवित्र करें।

3.4 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-भगवान नेमिनाथ जैनधर्म के कौन से तीर्थंकर माने जाते हैं ?

प्रश्न 2-भगवान नेमिनाथ का जन्म कहाँ हुआ था ?

प्रश्न 3-भगवान नेमिनाथ के माता-पिता का क्या नाम था ?

प्रश्न 4-भगवान नेमिनाथ ने दीक्षा कहाँ धारण की थी ?

प्रश्न 5-भगवान नेमिनाथ का मोक्ष किस तिथि में हुआ था ?

पाठ-4 – तीर्थंकर पार्श्वनाथ (Teerthankar Parshvanath)

4.1 गर्भावतार (Auspicious Event of Conception)-

इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी काशी देश में बनारस नाम का एक नगर है। उसमें काश्यप गोत्री राजा विश्वसेन राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम वामा देवी था। जब उन सोलहवें स्वर्ग के इन्द्र की आयु छह मास की अवशेष रह गई थी तब इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने माता के आँगन में रत्नों की धारा बरसाना शुरू कर दी थी। रानी वामा देवी ने सोलहस्वप्नपूर्वक वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन इन्द्र के जीव को गर्भ में धारण किया था।

4.2 जन्मकल्याणक (Auspicious Event of Birth)-

नवमास पूर्ण होने पर पौष कृष्णा एकादशी के दिन पुत्र का जन्म हुआ था। इन्द्रादि देवों ने सुमेरु पर्वत पर ले जाकर तीर्थंकर शिशु का जन्माभिषेक करके 'पार्श्वनाथ' यह नामकरण किया था। श्री नेमिनाथ के बाद तिरासी हजार सात सौ पचास (83750) वर्ष बीत जाने पर इनका जन्म हुआ था। इनकी आयु सौ वर्ष की थी। प्रभु की कांति हरितवर्ण की एवं शरीर की ऊँचाई नौ हाथ प्रमाण थी। ये उग्रवंशी थे।

सोलह वर्ष बाद नवयौवन से युक्त भगवान किसी समय क्रीडा के लिये अपनी सेना के साथ नगर के बाहर गये। कमठ का जीव जो कि सिंह पर्याय से नरक गया था वह वहाँ से आकर महीपाल नगर का महीपाल नाम का राजा हुआ था। उसी की पुत्री ब्राह्मी (वामा देवी) भगवान पार्श्वनाथ की माता थीं। यह राजा (भगवान के नाना) किसी समय अपनी पत्नी के वियोग में तपस्वी होकर वहीं आश्रम के पास वन में पंचाग्नियों के बीच में बैठा तपश्चरण कर रहा था। देवों द्वारा पूज्य भगवान उसके पास जाकर उसे नमस्कार किये बिना ही खड़े हो गये। यह देखकर वह खोटा साधु क्रोध से युक्त हो गया और सोचने लगा 'मैं कुलीन हूँ, तपोवृद्ध हूँ और इसका नाना हूँ' फिर भी इस अज्ञानी कुमार ने अहंकारवश मुझे नमस्कार नहीं किया है, क्षुभित हो उसने अग्नि में लकड़ियों को डालने के लिए पड़ी हुई लकड़ी को काटने हेतु अपना फरसा उठाया, इतने में ही अवधिज्ञानी भगवान पार्श्वनाथ ने कहा, 'इसे मत काटो' इसमें जीव हैं किन्तु मना करने पर भी उसने लकड़ी काट ही डाली, तत्क्षण ही उसके भीतर रहने वाले सर्प और सर्पिणी निकल पड़े और घायल हो जाने से छटपटाने लगे।

यह देखकर प्रभु के साथ स्थित सुभौमकुमार ने कहा कि तू अहंकारवश यह कुतप करके पाप का ही आस्रव कर रहा है। सुभौम के वचन सुन तपस्वी क्रुधित होकर अपने तपश्चरण की महत्ता प्रकट करने लगा। तब सुभौमकुमार ने अनेक युक्तियों से उसे समझाया कि सच्चे देव, शास्त्र और गुरु के सिवाय कोई हितकारी नहीं है। जिनधर्म में प्रणीत सच्चे तपश्चरण से ही कर्म निर्जरा होती है। यह मिथ्यातप, जीव हिंसा सहित होने से कुतप ही है। यद्यपि वह तापसी समझ तो गया किन्तु पूर्व बैर का संस्कार होने से अपने पक्ष के अनुराग से अथवा दुःखमय संसार के कारण से अथवा स्वभाव से ही दुष्ट होने से उसने स्वीकार नहीं किया प्रत्युत् यह सुभौमकुमार अहंकारी होकर मेरा तिरस्कार कर रहा है ऐसा समझ वह भगवान पार्श्वनाथ पर अधिक क्रोध करने लगा। इसी शल्य से मरकर 'शम्बर' नाम का ज्योतिषी देव हो गया।

इधर सर्प और सर्पिणी भगवान पार्श्वनाथ के उपदेश से शांतभाव को प्राप्त हुए तथा मरकर बड़े ही वैभवशाली धरणेन्द्र और पद्मावती हो गये।

4.3 दीक्षा एवं केवलज्ञान (Auspicious Events of Initiation and Omniscience)-

अनंतर भगवान जब तीस वर्ष के हो गये तब एक दिन अयोध्या के राजा जयसेन ने उत्तम घोड़ा आदि की भेंट के साथ अपना दूत भगवान पार्श्वनाथ के समीप भेजा। भगवान ने भेंट लेकर उस दूत से अयोध्या की विभूति पूछी। उत्तर में दूत ने सबसे पहले भगवान ऋषभदेव का वर्णन किया पश्चात् अयोध्या का हाल कहा। उसी समय ऋषभदेव के

सदृश अपने को तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हुआ है, ऐसा सोचते हुए भगवान गृहवास से पूर्ण विरक्त हो गये और लौकांतिक देवों द्वारा पूजा को प्राप्त हुए। प्रभु देवों द्वारा लाई गई विमला नाम की पालकी पर बैठकर अश्ववन में पहुँच गये। वहाँ तेला का नियम लेकर पौष कृष्णा एकादशी के दिन प्रात: काल के समय सिद्ध भगवान को नमस्कार करके प्रभु तीन सौ राजाओं के साथ दीक्षित हो गये।

पारणा के दिन गुल्मखेट नगर के धन्य नामक राजा ने अष्ट मंगलद्रव्यों से प्रभु का पड़गाहन कर आहारदान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त कर लिये। छद्मस्थ अवस्था के चार मास व्यतीत हो जाने पर भगवान अश्ववन नामक दीक्षावन में पहुँचकर देवदारु वृक्ष के नीचे विराजमान होकर ध्यान में लीन हो गये। इसी समय कमठ का जीव शम्बर ज्योतिषी आकाशमार्ग से जा रहा था, अकस्मात् उसका विमान रुक गया, उसे विभंगावधि से पूर्व का बैर बंध स्पष्ट दिखने लगा। फिर क्या था, क्रोधवश उसने महागर्जना, महावृष्टि, भयंकर वायु आदि से महा उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया, बड़े-बड़े पहाड़ तक लाकर समीप में गिराये, इस प्रकार उसने सात दिन तक लगातार भयंकर उपसर्ग किया।

अवधिज्ञान से यह उपसर्ग जानकर धरणेन्द्र अपनी भार्या पद्मावती के साथ पृथ्वी तल से बाहर निकला। धरणेन्द्र ने भगवान को सब ओर से घेर कर अपने फणाओं के ऊपर उठा लिया और उस की पत्नी वज्रमय छत्र तान कर खड़ी हो गई। आचार्य कहते हैं देखो! स्वभाव से ही क्रूर प्राणी इन सर्प सर्पिणी ने अपने ऊपर किये गये उपकार को याद रखा सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुष अपने ऊपर किये हुए उपकार को कभी नहीं भूलते हैं।

तदनंतर ध्यान के प्रभाव से प्रभु का मोहनीय कर्म क्षीण हो गया इसलिए बैरी कमठ का सब उपसर्ग दूर हो गया। मुनिराज पार्श्वनाथ ने चैत्र कृष्णा चतुर्थी के दिन प्रात:काल के समय विशाखा नक्षत्र में लोकालोकप्रकाशी केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। उसी समय इन्द्रों ने आकर समवसरण की रचना करके केवलज्ञान की पूजा की। शंबर नाम का देव भी काललब्धि पाकर उसी समय शांत हो गया और उसने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। यह देख, उस वन में रहने वाले सात सौ तपस्वियों ने मिथ्यादर्शन छोड़कर संयम धारण कर लिया, सभी शुद्ध सम्यग्दृष्टि हो गये और बड़े आदर से प्रदक्षिणा देकर भगवान की स्तुति भक्ति की। आचार्य कहते हैं कि पापी कमठ के जीव का कहां तो निष्कारण वैर और कहां ऐसी पार्श्वनाथ की शांति! इसलिए संसार के दु:खों से भयभीत प्राणियों को वैर विरोध का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।

4.4 निर्वाण (Auspicious Event of Salvation)-

भगवान पार्श्वनाथ के समवसरण में स्वयंभू को आदि लेकर दस गणधर थे, सोलह हजार मुनिराज, सुलोचना को आदि लेकर छत्तीस हजार आर्यिकायें, एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकायें थीं। इस प्रकार बारह सभाओं को धर्मोपदेश देते हुए भगवान ने पाँच मास कम सत्तर वर्ष तक विहार किया। अंत में आयु का एक माह शेष रहने पर विहार बंद हो गया। प्रभु पार्श्वनाथ सम्मेदाचल के शिखर पर छत्तीस मुनियों के साथ प्रतिमायोग से विराजमान हो गये। श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन प्रात:काल के समय विशाखा नक्षत्र में सिद्धपद को प्राप्त हो गये। इन्द्रों ने आकर मोक्ष कल्याणक उत्सव मनाया। ऐसे पार्श्वनाथ भगवान हमें भी सम्पूर्ण प्रकार के उपसर्गों को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

4.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-भगवान पार्श्वनाथ का जन्म किस तिथि में हुआ था ?

प्रश्न 2-भगवान पार्श्वनाथ के नाना का क्या नाम था ?

प्रश्न 3-भगवान पार्श्वनाथ ने कितने वर्ष की आयु में दीक्षा ली थी ?

प्रश्न 4-भगवान पार्श्वनाथ ने मोक्ष कहाँ से प्राप्त किया था ?

इकाई–3 भगवान महावीर और उनकी उत्तरवर्ती परम्परा

(Bhagwan Mahaveer and His Later Tradition)

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है-

(1) अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर

(2) भगवान महावीर के समकालीन धर्म सम्प्रदाय

(3) गणधर एवं प्रमुख आचार्य

(4) दिगम्बर-श्वेताम्बर परम्परा में भगवान महावीर

पाठ-1 – अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर (Last Teerthankar Bhagwan Mahaveer)

1.1 गर्भावतरण (Auspicious Event of Conception) —

भगवान महावीर होने वाले महापुरुष सोलहवें स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में थे। जब उनकी आयु मात्र छह महिने की शेष रही तब सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने कुण्डलपुरी के राजा सिद्धार्थ के आँगन में रत्नों की वृष्टि करना शुरू कर दी। ये रत्न प्रतिदिन साढ़े सात करोड़ बरसते थे।

जैसा कि उत्तरपुराण में लिखा है —

तस्मिन् षण्मासशेषायुष्यानाकादागमिष्यति। भरतेऽस्मिन् विदेहाख्ये, विषये भवनांगणे।।151।।

राज्ञः कुंडपुरेशस्य, वसुधाराप तत्पृथु। सप्तकोटीमणीः सार्द्धाः, सिद्धार्थस्य दिनं प्रति।।151।।

इन राजा के महल का नाम ''नंद्यावर्त'' था। यह सात खन का बहुत ही सुन्दर था। एक दिन महारानी त्रिशला अपने ''नंद्यावर्त'' महल में रत्ननिर्मित सुंदर पलंग पर सोई हुई थीं, रात्रि में रत्नों के दीपों का प्रकाश फैला हुआ था। आषाढ़ शुक्ला षष्ठी के दिन पिछली रात्रि में रानी ने सोलह स्वप्न देखे। प्रातः पतिदेव से उनका फल पूछने पर ''आप तीर्थंकर पुत्र को जन्म देंगी'' ऐसा सुनकर प्रसन्नता को प्राप्त हुईं। तभी इन्द्रादिदेवगण ने आकर ''गर्भकल्याणक'' उत्सव मनाया।

1.2 जन्मकल्याणक (Auspicious Event of Birth) —

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को माता त्रिशला ने पुत्र रत्न को जन्म दिया तब इन्द्रों ने असंख्य देवपरिवारों के साथ आकर बालक को ऐरावत हाथी पर बिठाकर सुमेरुपर्वत पर ले जाकर वहाँ स्वर्णमयी कुंभों से क्षीरसागर के जल से भरे ऐसे 1008 कलशों से प्रभु का जन्माभिषेक किया था। अनंतर आभूषण आदि से जिनबालक को विभूषित कर ''वीर'' और ''वर्द्धमान'' ऐसे दो नाम प्रसिद्ध किए थे।

एक बार ''संजय'' और ''विजय'' नाम के दो चारणऋद्धिधारी महामुनियों को किसी पदार्थ में संदेह उत्पन्न हो गया तब जन्म के बाद ही जिनशिशु के समीप आए। भगवान के दर्शनमात्र से उनका संदेह दूर हो गया। तब उन महासाधुओं ने ''सन्मति'' इस नाम से शिशु को संबोधित किया था। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर उन भगवान के आयु, समय और इच्छा के अनुसार स्वर्ग से सारभूत भोग-उपभोग की वस्तुएँ लाते थे।

किसी एक दिन स्वर्ग में प्रभु की शूरवीरता की चर्चा चल रही थी। उसे सुनकर ''संगम'' देव ने उनकी परीक्षा करने की भावना की। उस समय वर्द्धमान कुमार उद्यान में अनेक राजकुमारों के साथ वृक्ष पर चढ़ने-उतरने का खेल खेल रहे थे। तभी संगम देव महासर्प का रूप धारणकर वृक्ष में नीचे से ऊपर तक लिपट गया। सभी बालक डर से वृक्ष से कूदकर भागने लगे किन्तु जिनवीर ने सर्प के मस्तक पर पैर रखकर ऐसी क्रीड़ा की कि जैसे माता के पलंग पर खेल रहे हों। तब संगमदेव ने अपना रूप प्रगटकर प्रभु की नाना स्तुति करके ''महावीर'' यह नाम रखा।

1.3 दीक्षाकल्याणक (Auspicious Event of Initiation) —

जब भगवान तीस वर्ष के हो गये तब उन्हें एक दिन जातिस्मरण होने से आत्मज्ञान प्रगट हो गया। प्रभु के विरक्त होते ही लौकांतिक देव आ गये उन्होंने प्रभु के वैराग्य की प्रशंसा करते हुए खूब स्तुति की। अनंतर देवों ने चन्द्रप्रभा पालकी पर प्रभु को

बिठाया। प्रभु ने षंड नाम के वन में रत्ननिर्मित शिला पर बैठकर उत्तरदिशा में मुख करके तेला का नियम लेकर सम्पूर्ण वस्त्राभरणों का त्याग कर दिया एवं केशलोंच करके जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली। यह दिन मगसिर कृष्णा दशमी का था। जन्म से प्रभु मति, श्रुत एवं अवधि इन तीन ज्ञान के धारी थे अब चार ज्ञान के धारी हो गये। प्रभु ने ''साल'' वृक्ष के नीचे दीक्षा ली है ऐसा वर्णन प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में आया है। उसमें ऐसा बताया है कि चौबीसों तीर्थंकरों के दीक्षावृक्ष और केवलज्ञानवृक्ष वही-वही हैं।

वट, सप्तच्छद आदि वृक्षों में अंतिम तीर्थंकर के दीक्षावृक्ष का ''साल'' यह नाम है। उसमें कहा है—

सालश्चैते जिनेन्द्राणां, दीक्षावृक्षा प्रकीर्तिताः।
एत एव बुधैर्ज्ञेयाः केवलोत्पत्तिशाखिनः।।4।।

जब भगवान श्री महावीर महामुनि के वेष में आहार के लिए निकले तो प्रथम आहार का लाभ ''कुलग्राम'' के राजा ''कूल'' को प्राप्त हुआ। इनका नाम हरिवंशपुराण में ''वकुल'' आया है। इन्होंने प्रभु को खीर का आहार दिया और देवों ने उसी क्षण पंचाश्चर्यवृष्टि की। इन पंचाश्चर्यों में रत्नों का प्रमाण साढ़े बारह करोड़ बताया है।

तिलोयपण्णत्ति में ''नाथवन'' में दीक्षा लेने का कथन है। यथा—

मग्गसिरवहुलदसमी-अवरण्हे उत्तरासु णाधवणे।
तदियखवणम्मि गहिदं महव्वदं वड्ढमाणेण।।667।।

वर्द्धमान स्वामी ने मगसिर कृष्णा दशमी को अपराण्ह काल में उत्तरा नक्षत्र के रहते ''नाथवन'' में तृतीय भक्त के साथ अर्थात् बेला का नियम लेकर महाव्रतों को ग्रहण किया था।

1.4 उपसर्ग विजय (Victory on Infliction)—

तपश्चर्या करते हुए भगवान एक बार उज्जयिनी महानगर के बाहर ''अतिमुक्तक'' नाम के श्मसान में प्रतिमायोग से ध्यान में लीन हो गये। उन्हें देखकर ''स्थाणु'' नामक रुद्र ने उनके धैर्य की परीक्षा करने के लिए उनके ऊपर उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया। विद्या से वहाँ अंधेरा करके अनेक बेतालों-भूतों को नचाना शुरू कर दिया। तदनंतर सर्प, हाथी, सिंह, अग्नि और वायु आदि के साथ भीलों की सेना बना दी। इत्यादि प्रकार से उस रुद्र ने अपनी विद्या के प्रभाव से ध्यानस्थ महावीर के ऊपर भयंकर उपसर्ग किया परन्तु भगवान अचल हुए ध्यान में लीन थे तब उनके ध्यान के प्रभाव से प्रभावित हो रुद्र ने प्रभु का नाम ''महति महावीर'' रखकर अपनी भार्या के साथ अनेक प्रकार से स्तुति करके भावविभोर हो नृत्य किया।

1.5 चंदनबाला द्वारा आहारदान (Food-giving by Chandanbala)—

कुछ समय बाद प्रभु महावीर आहार के लिए विचरण करते हुए कौशाम्बी नाम की महानगरी में आए। वहाँ ''वृषभदत्त''सेठ के यहाँ चंदनबाला को उसकी पत्नी सुभद्रा ने दुष्ट अभिप्राय से सांकलों से बांधकर सिर मुंडाकर रखा था और खाने को मिट्टी के सकोरे में कांजी से मिला हुआ पुराने कोदों का भात दिया करती थी।

महामुनि महावीर को आहार हेतु आते देख भक्ति से चंदनबाला आगे बढ़ी उसी क्षण प्रभु की भक्ति एवं उसके शील के प्रभाव से चंदना की बेड़ियाँ टूट गईं, उसके शिर पर केश आ गए और शरीर के वस्त्राभरण सुंदर हो गये उसके पास रखा मिट्टी का सकोरा स्वर्णमयी हो गया और कोदों का भात सुंदर शालिधान्य की खीर बन गया। चन्दनबाला ने भक्ति से प्रभु का पड़गाहन करके नवधाभक्ति से खीर का आहार दिया। तत्क्षण ही देवों द्वारा पंचाश्चर्यवृष्टि होने लगी। दुंदुभि बाजों की ध्वनि सुनकर राजा शतानीक-रानी मृगावती जो कि चंदना की बहन थीं वे सब वहाँ आ गये। तब घबड़ा कर सेठ-सेठानी ने चंदनबाला से क्षमायाचना की। तभी से कौशाम्बी नगरी जो कि छठे तीर्थंकर पद्मप्रभ की जन्मभूमि थी वह अत्यधिक महिमा को प्राप्त हो गई है।

इस प्रकार प्रभु को तपश्चर्या करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गये।

1.6 केवलज्ञानकल्याणक (Auspicious Event of Omniscience)—

एक बात यह विशेष ज्ञातव्य है कि तीर्थंकर भगवान दीक्षा लेते ही मौन ग्रहण कर लेते हैं और केवलज्ञान प्रगट होने तक उनकी वाणी नहीं खिरती है।

भगवान महावीर एक बार ''जृंभिकाग्राम'' के निकट ''ऋजुकूला'' नदी के किनारे ''मनोहर'' नामक वन में रत्ननिर्मित एक शिलापट्ट पर प्रतिमायोग से विराजमान हो गये। ध्यान में लीन प्रभु ने ''वैशाख शुक्ला दशमी'' के दिन घातिकर्म को नष्टकर केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। तत्क्षण ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने आकर आकाश में अधर समवसरण की रचना कर दी। समवसरण में बारह सभा बनी हुई थी किन्तु भगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिरी थी।

1.7 विपुलाचल पर प्रथम देशना (First *Deshna* on Vipulachal Mountain)—

एक बार इंद्र ने विचार किया गणधर के अभाव में प्रभु की दिव्यध्वनि नहीं खिरी है। तब युक्ति से ''इन्द्रभूति'' नामक गौतम गोत्रीय ब्राह्मण को वहाँ उपस्थित किया। इन्द्रभूति ने आकर प्रभु से जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करके मन:पर्ययज्ञान के साथ-साथ अनेक ऋद्धियों को प्राप्तकर प्रथमगणधर का पद प्राप्त कर लिया। श्रावण कृ. एकम् के दिन भगवान की दिव्यध्वनि खिरी, असंख्य भव्यों ने प्रभु का उपदेश श्रवण करके अपने जीवन को सफल किया। इन इन्द्रभूति का नाम गोत्र के नाम से ''गौतम स्वामी'' प्रसिद्ध हो गया। चन्दना ने भी आर्यिका दीक्षा लेकर आर्यिकाओं में प्रमुख ''गणिनीपद'' प्राप्त कर लिया। राजगृही में विपुलाचल पर्वत पर भगवान की प्रथम बार दिव्यध्वनि खिरी अत: वह पर्वत भी तीर्थ बन गया है। राजगृही के राजा श्रेणिक प्रभु के समवसरण में ''मुख्य श्रोता'' कहलाए हैं।

1.8 मोक्षकल्याणक (Auspicious Event of Salvation)—

भगवान ने तीस वर्ष तक पूरे आर्यखंड में श्रीविहार करके समवसरण में स्थित हो दिव्यध्वनि द्वारा धर्मोपदेश दिया पुन: पावापुरी में सरोवर के मध्य से आकाश में अधर ही सर्व अघातिया कर्मों को नष्ट करके कार्तिक कृष्णा अमावस्या के प्रभात समय निर्वाण पद को प्राप्त हो गये। तभी इन्द्रों ने असंख्य देवों के साथ प्रभु का निर्वाणकल्याणक महोत्सव करके दीपमालिका बनाई थी। तब से लेकर आज तक कार्तिक कृष्णा अमावस्या को दीपावली पर्व मनाया जा रहा हैं यह बात हरिवंशपुराण में कही गई है-

ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया, सुरासुरैः दीपितया प्रदीप्तया।
तदा स्म पावानगरी समंततः, प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते।।19।।
ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात, प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते।
समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं, जिनेन्द्रनिर्वाणविभूतिभक्तिभाक्।।11।।

उस समय सुर और असुरों के द्वारा जलाई हुई बहुत भारी देदीप्यमान दीपकों की पंक्ति से पावापुरी का आकाश सब ओर से जगमगा उठा। तदनंतर सभी मनुष्य एवं देवगण प्रभु की निर्वाणकल्याणक पूजा कर यथास्थान चले गये। उस समय से लेकर भगवान के निर्वाणकल्याणक की भक्ति से युक्त संसार के प्राणी इस भरतक्षेत्र में प्रतिवर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमालिका के द्वारा भगवान महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे अर्थात् भगवान महावीर के निर्वाणकल्याणक की स्मृति में ही दीपावली पर्व मनाने लगे। ये इस युग के अंतिम एवं वर्तमान शासनपति तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी हमारे और आप सबके लिए मंगलकारी होवे।

1.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-भगवान महावीर का जन्म कहाँ हुआ और उनके माता-पिता का क्या नाम था ?

प्रश्न 1-भगवान महावीर की माता किस देश के राजा की पुत्री थी ?

प्रश्न 3-भगवान महावीर के सन्मति और महावीर नाम किस प्रकार रखे गये ?

प्रश्न 4-भगवान महावीर के महल का क्या नाम था ?

प्रश्न 5-भगवान महावीर के प्रमुख गणधर और प्रमुख गणिनी का नाम बताइये ?

प्रश्न 6-भगवान महावीर का निर्वाण कब और कहाँ से हुआ ?

पाठ-2 — भगवान महावीर के समकालीन धर्म सम्प्रदाय
(Contemporary Religious Sects of Bhagwan Mahaveer)

2.1 भारतीय धर्म की दो धाराएँ बहुत प्राचीन हैं-श्रमण और वैदिक। श्रमण धारा का विकास आर्य-पूर्व जातियों और क्षत्रियों ने किया। वैदिक धारा का विकास ब्राह्मणों ने किया। दोनों मुख्य धाराओं की अनेक उपधाराएँ हो गईं। भगवान महावीर के युग में तीन सौ तिरेसठ धर्म-सम्प्रदाय थे, यह उल्लेख जैन लेखकों ने किया है। तीन सौ त्रेसठ मत निम्न प्रकार हैं-

''क्रियावादियों के 180, अक्रियावादियों के 84, अज्ञानवादियों के 67 और वैनयिकवादियों के 32 ऐसे 180 + 84 + 67 + 32 = 363 मत माने गये हैं। इनका विशेष वर्णन इस प्रकार है —

'अस्ति' पद को 'आप से' 'पर से' नित्यपने से' और 'अनित्यपने से' इन चार से, जीवादि नव पदार्थ से तथा 'काल', 'ईश्वर', 'आत्मा', 'नियति' और 'स्वभाव' इन पाँच से, ऐसे क्रम से गुणा करने से 1 × 4 × 9 × 5 = 180 भेद क्रियावादियों के होते हैं।

'नास्ति' पद को 'आपसे', 'पर से', पुण्य-पाप रहित सात पदार्थ से और 'काल' आदि पाँच से गुणा करने पर 1 × 2 × 7 × 5 = 70 भंग होते हैं। पुनः 'नास्ति' पद को सात पदार्थ और 'नियति' तथा 'काल' इन दो से गुणा करने पर 1 × 7 × 2 = 14 भेद हुये। दोनों मिलाकर 70+14=84 भेद अक्रियावादियों के होते हैं।

नव पदार्थ को सप्तभंगी से गुणा करने पर 9 × 7 = 63 भेद हुये। पुनः 'शुद्ध पदार्थ' को अस्ति, नास्ति, उभय और अवक्तव्य इन चार भेदों से गुणा करने पर 1 × 4 = 4 भेद हुये। दोनों मिलाकर 63 + 4 = 67 भेद अज्ञानवाद के होते हैं।

इसका अर्थ यह है कि जीवादि नव पदार्थों में एक-एक को सप्त भंग से न जानना। जैसे कि 'जीव' अस्तिरूप है ऐसा कौन जानता है, नास्ति रूप है ऐसा कौन जानता है, इत्यादि।

देव, राजा, ज्ञानी, यति, वृद्ध, बालक, माता और पिता इन आठों का मन, वचन, काय और दान, इन चार से विनय करना सो 8 × 4 = 32 ये बत्तीस भेद विनयवादियों के हैं। ये विनयवादी गुण-अगुण की परीक्षा किये बिना विनय से ही सिद्धि मानते हैं।

पूर्व में क्रियावादी के भेदों में जो 'अस्ति' 'स्व' 'पर' 'नित्य' 'अनित्य' और नवपदार्थ तथा काल आदि पाँच आये हैं, उनमें से सबका अर्थ तो स्पष्ट ही है। काल ईश्वर आदि पाँचों का अर्थ बताते हैं।

काल ही सबको उत्पन्न करता है और सबका नाश करता है, काल ही सोते हुए प्राणियों में जागता है ऐसे काल को ठगने के लिये कौन समर्थ है। इस प्रकार काल से ही सब कुछ मानना **कालवाद** है।

आत्मा ज्ञान रहित है, अनाथ है, कुछ कर नहीं सकता, उस आत्मा का सुख-दुःख तथा स्वर्ग-नरक में गमन आदि सब ईश्वर का किया हुआ होता है। ऐसी मान्यता **ईश्वरवाद** है।

संसार में एक ही महान् आत्मा है, वही पुरुष है, वही देव है, वह सबमें व्यापक है, सर्वांगपने से अगम्य है, चेतना सहित है, निर्गुण है और उत्कृष्ट है। इस तरह आत्मस्वरूप से ही सबको मानना **आत्मवाद** है।

जो जिस समय, जिससे, जैसे, जिसके नियम से होता है, वह उस समय, उससे, वैसे और उसके ही होता है। ऐसा नियम से ही सब वस्तु को मानना **नियतिवाद** है।

कांटे आदि तीक्ष्ण वस्तुओं में तीक्ष्णता कौन करता है ? मृग आदि पशु पक्षियों के अनेक आकार कौन बनाता है ? इत्यादि प्रश्न होने पर कहना पड़ेगा कि सबमें स्वभाव ही है। ऐसे सब को कारण के बिना स्वभाव से ही मानना **स्वभाववाद** है।

इस प्रकार से काल आदि की अपेक्षा से 'अस्ति' आदि के साथ एकांत पक्ष ग्रहण करने से क्रियावादी और अक्रियावादी के भेद होते हैं।

इस प्रकार स्वच्छंद श्रद्धानी पुरुषों ने इन 363 मतों की कल्पना की है।

2.2 आगे और भी एकांतवादों को कहते हैं-

जो आलसी है, उद्यम करने में उत्साह रहित है वह कुछ भी फल नहीं भोग सकता। जैसे माता के स्तन का दूध पीना भी बिना पुरुषार्थ के नहीं होता है। इस तरह पुरुषार्थ से ही सर्वकार्य की सिद्धि मानना **पौरुषवाद** है।

मैं केवल भाग्य को ही उत्तम मानता हूँ, निरर्थक पुरुषार्थ को धिक्कार हो। देखो! किले के समान ऊँचा राजा कर्ण युद्ध में मारा गया। इस तरह दैव से ही सिद्धि मानना **दैववाद** है।

जैसे एक अंधा और एक पंगु दोनों वन में प्रतिष्ठ हुये, सो किसी समय वहाँ आग लग जाने से ये दोनों एक दूसरे के संयोग से बचकर नगर में आ गये। ऐसे ही संयोग से ही सर्वकार्य सिद्ध होते हैं। ऐसा कहना **संयोगवाद** है।

एक बार की उठी हुई लोकप्रसिद्धि देवों द्वारा भी दूर नहीं की जा सकती, अन्य की तो बात क्या है। देखो! द्रौपदी ने केवल अर्जुन के गले में वरमाला डाली थी किन्तु 'इसने पाँचों को वरा है' ऐसी प्रसिद्धि हो गयी। इस तरह लोक प्रवृत्ति को ही सर्वस्व मानना **लोकवाद** है।

आचार्य कहते हैं कि बहुत कहने से क्या ? जितने भी वचन बोलने के मार्ग हैं उतने ही नयवाद हैं और जितने नयवाद हैं उतने ही परसमय हैं। तात्पर्य यही है कि जो कुछ भी बोला जाता है वह कुछ न कुछ अपेक्षा को लिये ही होता है। उस जगह जो अपेक्षा है वही नय है और बिना अपेक्षा से बोलना या एक ही अपेक्षा से अनंत धर्मवाली वस्तु को सिद्ध करना यही परमतों में मिथ्यापना है।

सो ही स्वयं कहते हैं—

पर मतों के वचन 'सर्वथा' कहने से नियम से असत्य होते हैं और जैनमत के वचन 'कथंचित्' (किसी एक प्रकार) से कहने से सत्य होते हैं।'

''दृष्टिवाद नाम के अंग में कौत्कल, काण्ठेविद्धि, कौशिक आदि क्रियावादियों के 180 मतों का; मारीचि, कपिल, उलूक आदि अक्रियावादियों के 84 मतों का शाकल्य, बल्कल आदि अज्ञानवादियों के 67 मतों का तथा वशिष्ठ, पाराशर आदि वैनयिकवादियों के 32 मतों का वर्णन और उनका निराकरण किया गया है।''

ऐसे ही कुश्रुतज्ञान के प्रकरण में कहा है कि—''चौर शास्त्र, हिंसा शास्त्र आदि के तुच्छ और साधन करने के अयोग्य उपदेशों को श्रुत अज्ञान कहा है।''

तात्पर्य यही हुआ कि ये सब मिथ्यामत, मिथ्या अनेकांत और मिथ्या एकांत से ही कल्पित किये गये हैं तथा इनके कहने वाले शास्त्र भी मिथ्यात्व के पोषक होने से कुश्रुत ही हैं। इनके स्वरूप को समझकर इन सबका त्याग करके स्याद्वादमय अनेकांत धर्म का आश्रय लेना चाहिए।

2.3 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-363 मतों के नाम क्या हैं ?

प्रश्न 2-नियतिवाद का क्या अर्थ है ?

प्रश्न 3-श्रुत अज्ञान किसे कहते हैं ?

पाठ-3 – गणधर एवं प्रमुख आचार्य (*Gandhar*, The Chief Disciple and the Main Preceptors)

3.1 जो भगवान की दिव्य-ध्वनि को ग्रहण करने में समर्थ होते हैं और जो उस वाणी का सार जगत को श्रुत के रूप में प्रदान करते हैं, ऐसे महा मुनि को गणधर कहते हैं। ये उसी भव से मोक्ष जाते हैं। ये केवलज्ञान के अतिरिक्त शेष 63 ऋद्धियों के धारी होते हैं और दिव्य-ध्वनि की व्याख्या करने में समर्थ होते हैं। प्रत्येक तीर्थंकर के कई-कई गणधर होते हैं। आदिनाथ भगवान के 84 और महावीर स्वामी के 11 ''गणधर'' थे। 24 तीर्थंकरों के कुल 1452 गणधर थे। तीर्थंकर केवलियों के ही गणधर होते हैं। अन्य केवलियों के गणधर नहीं होते हैं और उनकी वाणी को ऋद्धिधारी मुनि ग्रहण करते हैं।

'गणं धारयति इति गणधरः' अर्थात् जो गण (संघ) का भार वहन करते हैं, वे गणधर कहलाते हैं। तीर्थंकर द्वारा अर्थरूप में कहे गये प्रवचन को धारण कर उसकी सूत्र रूप में व्याख्या करने वाले गणधर होते हैं।

3.2 वर्तमानयुगीन चौबीस तीर्थंकरों के गणधरों की संख्या का वर्णन-

1. **भगवान ऋषभदेव**-मुख्य गणधर वृषभसेन आदि 84 गणधर
2. **भगवान अजितनाथ**-मुख्य गणधर सिंहसेन आदि 90 गणधर
3. **भगवान संभवनाथ**-मुख्य गणधर चारूषेण आदि 105 गणधर
4. **भगवान अभिनंदननाथ**-मुख्य गणधर वज्रनाभि आदि 103 गणधर
5. **भगवान सुमतिनाथ**-मुख्य गणधर अमर आदि 116 गणधर
6. **भगवान पदमप्रभु**-मुख्य गणधर वज्रचामर आदि 111 गणधर
7. **भगवान सुपार्श्वनाथ**-मुख्य गणधर श्रीबल आदि 95 गणधर
8. **भगवान चन्द्रप्रभ**-मुख्य गणधर श्रीदत्त आदि 93 गणधर
9. **भगवान पुष्पदंत**-मुख्य गणधर श्रीविदर्भ आदि 88 गणधर
10. **भगवान शीतलनाथ**-मुख्य गणधर श्री अनगार आदि 81 गणधर
11. **भगवान श्रेयांसनाथ**-मुख्य गणधर श्रीकुंथुआदि 77 गणधर
12. **भगवान वासुपूज्य**-मुख्य गणधर श्रीधर्म आदि 66 गणधर
13. **भगवान विमलनाथ**-मुख्य गणधर श्रीमंदर आदि 55 गणधर
14. **भगवान अनन्तनाथ**-मुख्य गणधर श्रीजय आदि 50 गणधर
15. **भगवान धर्मनाथ**-मुख्य अरिष्टसेन आदि 43 गणधर
16. **भगवान शान्तिनाथ**-मुख्य गणधर चक्रायुध आदि 36 गणधर
17. **भगवान कुंथुनाथ**-मुख्य गणधर स्वयंभु आदि 35 गणधर
18. **भगवान अरनाथ**-मुख्य गणधर श्री कुंभार्य आदि 30 गणधर
19. **भगवान मल्लिनाथ**-मुख्य गणधर विशाख आदि 28 गणधर
20. **भगवान मुनिसुव्रतनाथ**-मुख्य गणधर मल्लि आदि 18 गणधर
21. **भगवान नमिनाथ**-मुख्य गणधर सुप्रभार्य आदि 17 गणधर
22. **भगवान नेमिनाथ**-मुख्य गणधर वरदत्त आदि 11 गणधर
23. **भगवान पार्श्वनाथ**-मुख्य गणधर स्वयंभु आदि 10 गणधर
24. **भगवान वर्धमान**-मुख्य गणधर इन्द्रभूति आदि 11 गणधर

इस प्रकार वर्तमानकाल में वृषभादि महावीर पर्यंत 24 तीर्थंकरों के कुल 1452 गणधर हुए हैं।

3.3 भगवान महावीर के पश्चात् की स्थिति (After Bhagwan Mahaveer)-

भगवान महावीर के निर्वाण के बाद उनके प्रमुख गणधर गौतम स्वामी को केवलज्ञान प्रगट हुआ। भगवान महावीर के अन्य गणधर वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्म, मौर्य, मौन्द्रय, पुत्र, मैत्रेय, अकम्पन, अन्धवेला तथा प्रभास ये दश गणधर और हुए हैं।

भगवान महावीर के मोक्ष जाने के पश्चात् से अब तक की अवधि में यद्यपि तीर्थंकर कोई नहीं हुआ, किन्तु केवली, आचार्य आदि अनेक महापुरुष हुए हैं जिन्होंने धर्म की प्रभावना को आगे बढ़ाया है। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

(1) तीन अनुबद्ध केवली (Three *Anubaddh Kevalis*)-गौतम स्वामी, सुधर्म स्वामी और जम्बू स्वामी तीन अनुबद्ध केवली इस पंचम काल में मोक्ष गये हैं। इनका काल 62 वर्ष (527 ईसा पूर्व से 465 ईसा पूर्व) है।

(2) पाँच श्रुतकेवली (Five *Shrut Kevalis*)-द्वादशांग रूप समस्त श्रुत के जानने वाले महामुनि को श्रुतकेवली कहते हैं। विष्णुकुमार, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु नामक पाँच श्रुतकेवली हुए हैं। इनका काल 100 वर्ष (465 वर्ष से 365 ईसा पूर्व) है। इनके पश्चात् पंचम काल में अन्य कोई श्रुतकेवली नहीं हुए हैं। यहाँ तक सम्पूर्ण ज्ञान-प्रवाह अनवरत चलता रहा और इसके पश्चात् आचार्यों की स्मृति क्षीण होने लगी।

(3) 11 अंग-दशपूर्वधारी (Eleven *Angas* and Ten *Purvadharees*)-विशाखाचार्य, प्रोष्ठिलाचार्य, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिलिंग, गंगदेव और धर्मसेन नाम के ग्यारह आचार्य ग्यारह अंग और दसपूर्व के धारी हुए हैं। इनका काल 183 वर्ष (365 ईसा पूर्व से 182 ईसा पूर्व) है।

(4) पाँच ग्यारह-अंगधारी (Five Eleven-*Angadharees*)-नक्षत्र, जयपाल, पांडु, ध्रुवसेन और कंसाचार्य नाम के पाँच मुनि हुए हैं, जिन्हें ग्यारह अंग का ज्ञान था। इनका काल 220 वर्ष (182 ईसा पूर्व से ईसवी सन् 38) है।

(5) चार आचारांगधारी (Four *Aacharangdharees*)-सुभद्राचार्य, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहाचार्य नामक चार आचार्य एक अंग (आचारांग) के धारी हुए हैं। इनका काल 118 वर्ष (ईसवी सन् 38 से 156) है।

इनके अलावा जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में और कोई भी आचार्य अंग-पूर्व के धारक नहीं हुए हैं। उनके अंशों को जानने वाले अवश्य हुए हैं। इस प्रकार महावीर स्वामी के पश्चात् 683 वर्षों तक अंगों का ज्ञान रहा। लोहाचार्य के पश्चात् गुणधर, विनयदत्त, श्रीदत्त, शिवदत्त, अर्हदत्त, अर्हद्‌बलि, माघनन्दी और धरसेन आदि आचार्य हुए, जो क्षीण अंग के धारी थे। इस अवधि तक कोई भी शास्त्र लिपिबद्ध नहीं था। आचार्य धरसेन ने सोचा कि मुनियों की स्मृति क्षीण होने लगी है और इस प्रकार श्रुत का लोप हो जावेगा। अतः उन्होंने महिमानगर (महाराष्ट्र) में हो रहे साधु सम्मेलन से दो योग्य साधुओं को बुलाया। उनकी परीक्षा लेने पर आचार्य धरसेन को यह विश्वास हो गया कि दोनों शिष्य ज्ञानी हैं अतः उन्होंने दोनों को शिक्षा दी और उनके नाम पुष्पदंत और भूतबलि प्रसिद्ध हुए। दोनों शिष्यों ने मिलकर जैन आगम के महान् सिद्धान्त ग्रंथ 'षट्‌खण्डागम' की रचना की और ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन चतुर्विध संघ एवं देवों ने इसकी पूजा की। इसी कारण से यह तिथि जैनों में 'श्रुत-पंचमी' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

3.4 भगवान महावीर के पश्चात् प्रमुख आचार्य (Main Preceptors After Bhagwan Mahaveer)-

भगवान महावीर के पश्चात् कितने ही प्रसिद्ध-प्रसिद्ध आचार्य और ग्रंथकार हुए हैं जिन्होंने अपने सदाचार और सद्विचारों से न केवल जैनधर्म को अनुप्राणित किया किन्तु अपनी अमर लेखनी के द्वारा भारतीय वाङ्मय को भी समृद्ध बनाया। नीचे कुछ ऐसे प्रसिद्ध आचार्यों और ग्रंथों का परिचय संक्षेप में कराया जाता है।

आचार्य धरसेन (वि. सं. की दूसरी शती) (Acharya Dharsen, 2nd century of Vikram Samvat)-

आचार्य धरसेन अंगों और पूर्वों के एकदेश के ज्ञाता थे और सौराष्ट्र देश के गिरनार पर्वत की गुफा में ध्यान करते

थे। उन्हें इस बात की चिन्ता हुई कि उनके पश्चात् श्रुतज्ञान का लोप हो जायेगा अतः उन्होंने महिमानगरी के मुनि सम्मेलन को पत्र लिखा। वहाँ से दो मुनि उनके पास पहुँचे। आचार्य ने उनकी बुद्धि की परीक्षा करके उन्हें सिद्धान्त की शिक्षा दी।

आचार्य पुष्पदन्त और भूतबली (Acharya Pushpdant and Bhootbali)-

ये दोनों मुनि पुष्पदंत और भूतबली थे। आषाढ़ शुक्ला एकादशी को अध्ययन पूरा होते ही धरसेनाचार्य ने उन्हें विदा कर दिया। दोनों शिष्य वहाँ से चलकर अंकलेश्वर में आये और वहीं चातुर्मास किया। पुष्पदंत मुनि अंकलेश्वर से चलकर बनवास देश में आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने जिनपालित को दीक्षा दी और 'वीसदि सूत्रों' की रचना करके उन्हें पढ़ाया। फिर उन्हें भूतबलि के पास भेज दिया। इस तरह पुष्पदंत को अल्पायु जानकर आगे की ग्रंथ रचना की। इस तरह पुष्पदंत और भूतबलि ने षट्खण्डागम नाम के सिद्धान्त ग्रंथ की रचना की। फिर भूतबलि ने षट्खण्डागम को लिपिबद्ध करके ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन उसकी पूजा की। इसी से यह तिथि जैनों में श्रुतपंचमी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

आचार्य गुणधर (वि. सं. की दूसरी शती) (Acharya Gundhar, 2nd century of Vikram Samvat)-

आचार्य गुणधर भी लगभग इसी समय में हुए। वे ज्ञानप्रवाद नामक पाँचवें पूर्व के दसवें वस्तु अधिकार के अंतर्गत कसायपाहुड़रूपी श्रुत समुद्र के पारगामी थे। उन्होंने भी श्रुत का विनाश हो जाने के भय से कसायपाहुड़ नाम का महत्वपूर्ण सिद्धान्त ग्रंथ प्राकृत गाथाओं में निबद्ध किया।

आचार्य कुन्दकुन्द (वि. सं. की दूसरी शती) (Acharya Kundkund, 2nd century of Vikram Samvat)-

आचार्य कुन्दकुन्द जैनधर्म के महान् प्रभावक आचार्य थे। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि विदेह क्षेत्र में जाकर सीमंधर स्वामी की दिव्यध्वनि सुनने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ था। इनका प्रथम नाम पद्मनन्दि था। कोण्डकुन्दपुर के रहने वाले होने से बाद में वे कोण्डकुन्दाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। उसी का श्रुतिमधुर रूप 'कुन्दकुन्दाचार्य' बन गया। इनके प्रवचनसार, पंचास्तिकाय और समयसार नाम के ग्रंथ अति प्रसिद्ध हैं जो नाटकत्रयी कहलाती हैं। इनके सिवाय इन्होंने अनेक प्राभृतों की रचना की है। जिनमें से आठ प्राभृत उपलब्ध हैं। बोधप्राभृत के अंत की एक गाथा में इन्होंने अपने को श्रुतकेवली भद्रबाहु का शिष्य बतलाया है। श्रवणबेलगोला के शिलालेखों में इनकी बड़ी कीर्ति बतलायी गयी है।

आचार्य उमास्वामी (वि. सं. की तीसरी शती) Acharya Umaswami, 3rd century of Vikram Samvat)-

यह आचार्य कुन्दकुन्द के शिष्य थे। इन्होंने जैन सिद्धान्त को संस्कृत सूत्रों में निबद्ध करके तत्त्वार्थसूत्र नामक सूत्र ग्रंथ की रचना की। इनको गृद्धपिच्छाचार्य भी कहते थे। श्रवणबेलगोला के शिलालेख नं. 108 में लिखा है कि श्री कुन्दकुन्दाचार्य के पवित्र वंश में उमास्वामी मुनि हुए जो सम्पूर्ण पदार्थों के जानने वाले थे, मुनियों में श्रेष्ठ थे। उन्होंने जिनदेव प्रणीत समस्त शास्त्रों के अर्थ को सूत्ररूप में निबद्ध किया। वे प्राणियों की रक्षा में बड़े सावधान थे। एक बार उन्होंने पीछी न होने पर गृद्ध के परों को पीछी के रूप में धारण किया था, तभी से विद्वान् उनको गृद्धपिच्छाचार्य कहने लगे। साधारणतया दिगम्बर जैन मुनि जीवरक्षा के लिए मयूर के पंखों की पीछी रखते हैं।

आचार्य समन्तभद्र (वि. सं. की तीसरी-चौथी शती) Acharya Samantbhadra, 3rd-4th century of Vikram Samvat)-

जैन संस्कृति के प्रभावक आचार्यों में स्वामी समन्तभद्र का स्थान बहुत ऊँचा हैं। इन्हें जैन शासन का प्रणेता और भावी तीर्थंकर तक बतलाया है। अकलंकदेव ने अष्टशती में, विद्यानंद ने अष्टसहस्री में, आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण में, जिनसेन सूरि ने हरिवंशपुराण में, वादिराजसूरि ने न्यायविनिश्चय विवरण और पार्श्वनाथ चरित में, वीरनन्दि ने चन्द्रप्रभचरित में, हस्तिमल्ल ने विक्रान्तकौरव नाटक में तथा अन्य अनेक ग्रंथकारों ने भी अपने-अपने ग्रंथ के प्रारंभ में इनका बहुत ही आदरपूर्वक स्मरण किया है। मुनि जीवन में इन्हें भस्मक व्याधि हो गयी थे, जो खाते थे वह तत्काल जीर्ण

हो जाता था। उसे दूर करने के लिए इन्हें कांची या काशी के राजकीय शिवालय में पुजारी बनना पड़ा और वहाँ देवार्पित नैवेद्य का भक्षण करके अपना रोग दूर किया। जब कलई खुली तो स्वयंभू–स्तोत्र रचकर जैन शासन का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रकट किया।

इनके रचे हुए आप्तमीमांसा, बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन, जिनस्तुतिशतक तथा रत्नकरण्ड श्रावकाचार नामक ग्रंथ उपलब्ध हैं तथा गंधहस्ति भाष्य जीवसिद्धि आदि कुछ ग्रंथ अनुपलब्ध हैं। ये प्रखर तार्किक और कुशलवादी थे। अनेक देशों में घूम–घूमकर इन्होंने विपक्षियों को शास्त्रार्थ में परास्त किया।

आचार्य सिद्धसेन (वि. सं. की पांचवीं शती) Acharya Siddhsen, 5th century of Vikram Samvat)–

आचार्य उमास्वामी की तरह सिद्धसेन की मान्यता भी दोनों सम्प्रदायों में पायी जाती है। दोनों ही सम्प्रदाय उन्हें अपना गुरु मानते हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय के आचार्य जिनसेन प्रथम व द्वितीय ने बहुत ही आदर के साथ उनका स्मरण किया है। उनकी सूक्तियों को भगवान ऋषभदेव की सूक्तियों के समकक्ष बतलाया है और प्रतिवादीरूपी हाथियों के समूह के लिए उन्हें विकल्परूपी नखोंयुक्त सिंह बतलाया है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में 'दिवाकर' विशेषण के साथ इनकी प्रसिद्धि है। इनका सन्मतितर्कग्रंथ अति प्रसिद्ध और बहुमान्य है। यह प्राकृत गाथाओं में निबद्ध है। दूसरे ग्रंथ न्यायावतार तथा द्वात्रिंशतिकाएं संस्कृत में हैं। सभी ग्रंथ गहन दार्शनिक चर्चाओं से परिपूर्ण हैं। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं. जुगलकिशोर मुख्तार ने गहरे अध्ययन और खोज के बार यह सिद्ध किया है कि उक्त सब कृतियाँ एक ही सिद्धसेन की नहीं हैं, सिद्धसेन नाम के कोई दूसरे विद्वान् भी हुए हैं।

आचार्य अकलंक देव (ई. 620 से 680) (Acharya Aklankdev, 620-680 A.D.)–

यह जैन न्याय के प्रतिष्ठाता थे। प्रकाण्ड पण्डित, धुरन्धर शास्त्रार्थी और उत्कृष्ट विचारक थे। जैन न्याय को इन्होंने जो रूप दिया उसे ही उत्तरकालीन जैन ग्रंथकारों ने अपनाया। बौद्धों के साथ इनका खूब संघर्ष रहा। स्वामी समंतभद्र के यह सुयोग्य उत्तराधिकारी थे। इन्होंने उनके आप्तमीमांसा ग्रंथ पर 'अष्टशती' नामक भाष्य की रचना की। इनकी रचनाएँ दुरूह और गंभीर हैं। अब तक इनके अष्टशती, प्रमाणसंग्रह, न्यायविनिश्चय, लघीयस्त्रय, सिद्धिविनिश्चय और तत्त्वार्थराजवार्तिक, नामक ग्रंथ प्रकाश में आ चुके हैं।

आचार्य विद्यानन्दि (ई. नौवीं शती) (Acharya Vidyanandi, 9th century A.D.)–

विद्यानन्दि अपने समय के बहुत ही समर्थ विद्वान् थे। इन्होंने अकलंकदेव की अष्टशती पर 'अष्टसहस्त्री' नाम का महान् ग्रंथ लिखा है, जिसे समझने में अच्छे–अच्छे विद्वानों को कष्टसहस्त्री का अनुभव होता है। ये सभी दर्शनों के पारगामी विद्वान् थे। इन्होंने आप्तपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक और युक्त्यनुशासन–टीका नाम के ग्रंथ रचे हैं। सभी बहुत प्रौढ़ दार्शनिक ग्रंथ हैं।

आचार्य माणिक्यनंदि (ई. नौवीं शती) (Acharya Manikyanandi, 9th century A.D.)–

इन्होंने अकलंकदेव के वचनों का अवगाहन करके परीक्षामुख नाम के सूत्रग्रंथ की रचना की है, जिसमें प्रमाण और प्रमाणाभास का सूत्रबद्ध विवेचन किया है। सूत्र संक्षिप्त स्पष्ट और सरस हैं।

आचार्य वीरसेन (ई. 790–825) (Acharya Veersen, 790-825 A.D.)–

आचार्य वीरसेन प्रसिद्ध सिद्धांतग्रंथ षट्खण्डागम और कसायपाहुड़ के मर्मज्ञ थे। इन्होंने प्रथम ग्रंथ पर 62 हजार श्लोक प्रमाण प्राकृत संस्कृत मिश्रित धवला नाम की टीका लिखी है और कसायपाहुड़ पर 20 हजार श्लोक प्रमाण जयधवला टीका लिखकर ही स्वर्गवासी हो गये। ये टीकाएं जैन सिद्धान्त की गहन चर्चाओं से परिपूर्ण हैं। धवला की प्रशस्ति में उन्हें वैयाकरणों का अधिपति, तार्किक चक्रवर्ती और 'प्रवादीरूपी गजों के लिए सिंह' समान बतलाया है।

आचार्य जिनसेन (ई. 800-880) (Acharya Jinsen, 800-880 A.D.)-

यह वीरसेन के शिष्य थे। इन्होंने गुरु के स्वर्गवासी हो जाने पर जयधवला टीका को पूरा किया। इन्होंने अपने को 'अविद्धकर्ण' बतलाया है, जिससे प्रतीत होता है कि यह बालवय में ही दीक्षित हो गये थे। यह बड़े कवि थे। इन्होंने अपने नवयौवन काल में ही कालिदास के मेघदूत को लेकर पार्श्वाभ्युदय नाम का सुंदर काव्य रचा था। मेघदूत में जितने भी पद्य हैं, उनके अंतिम चरण तथा अन्य चरणों में से भी एक-एक, दो-दो करके इसके प्रत्येक पद्य में समाविष्ट कर लिये गये हैं। इनका एक दूसरा ग्रंथ महापुराण है। इन्होंने तिरेसठ शलाका पुरुषों का चरित्र लिखने की इच्छा से महापुराण लिखना प्रारंभ किया किन्तु इनका भी बीच में ही स्वर्गवास हो गया अतः उन्हें इनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने पूर्ण किया। राजा अमोघवर्ष इनके शिष्य थे और इन्हें बहुत मानते था।

आचार्य प्रभाचंद्र (ई. सन् की ग्यारहवीं शती) (Acharya Prabhachandra, 11th century A.D.)-

आचार्य प्रभाचंद्र एक बहुश्रुत दार्शनिक विद्वान् थे। सभी दर्शनों के प्रायः सभी मौलिक ग्रंथों का उन्होंने अभ्यास किया था। यह बात उनके रचे हुए न्यायकुमुदचंद्र और प्रमेय-कमल-मार्तण्ड नामक दार्शनिक ग्रंथों के अवलोकन से स्पष्ट हो जाती है इनमें से पहला ग्रंथ अकलंकदेव के लघीयस्त्रय का व्याख्यान है और दूसरा आचार्य माणिक्यनन्दि के परीक्षामुख नामक सूत्र ग्रंथ का। श्रवणबेलगोला शिलालेख नं. 40 (64) में इन्हें शब्दाम्भोरुहभास्कर और प्रथित तर्क ग्रंथकार बतलाया है। इन्होंने शाकटायन व्याकरण पर एक विस्तृत न्यास ग्रंथ भी रचा था, जिसका कुछ भाग उपलब्ध है। इनके गुरु का नाम पद्मनन्दि सैद्धान्तिक था।

3.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-गणधर स्वामी के कितनी ऋद्धियाँ होती हैं ?

प्रश्न 2-चौबीस तीर्थंकरों के कुल कितने गणधर हैं ?

प्रश्न 3-आचार्य श्री वीरसेन स्वामी ने किन-किन ग्रंथों की टीका लिखी है ?

पाठ-4 – दिगम्बर-श्वेताम्बर परम्परा में भगवान महावीर
(Lord Mahavir in Digambar & Shwetambar Tradition)

श्वेताम्बर परम्परा की मान्यता	दिगम्बर परम्परा की मान्यता
(1) महावीर पहले देवानंदा नामक ब्राह्मणी के गर्भ में आये पुनः इन्द्र ने उनका गर्भपरिवर्तन करके रानी त्रिशला के गर्भ में स्थापित किया।	(1) भगवान महावीर ने त्रिशला के गर्भ में ही अवतार लिया।
(2) बिहार प्रान्त के 'लिछवाड़' ग्राम में महावीर का जन्म हुआ था।	(2) महावीर का जन्म विदेह देश (वर्तमान बिहार प्रान्त) की कुण्डलपुर नगरी (वर्तमान नालंदा जिला) में हुआ था।
(3) वे माता-पिता एवं गुरु को नमस्कार करते थे।	(3) महावीर अपने माता-पिता, मुनि आदि किसी को भी नमस्कार नहीं करते थे। तीर्थंकर प्रकृति के नियमानुसार सभी तीर्थंकर केवल सिद्धों को नमन करते हैं और किसी को नहीं।
(4) यशोदा नामक राजकुमारी के साथ उनका विवाह हुआ और उनकी प्रियदर्शना नामक पुत्री थी। उसके पश्चात् राज्य संचालन कर वे दीक्षाधारण कर देवदूष्य वस्त्रों को पहनते थे और दीक्षा के दूसरे वर्ष में उन्होंने उसका भी त्याग कर दिया था और वे अचेलक हो गये थे।	(4) महावीर ने 30 वर्ष की युवावस्था में दिगम्बर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की, वे बालब्रह्मचारी थे। महावीर अपनी माता के इकलौते पुत्र थे क्योंकि तीर्थंकर माता मात्र एक पुत्र को ही जन्म देती है।
(5) महावीर यत्र-तत्र ग्रामों में विहार करते रहे और सबसे वार्तालाप करते रहे। चंडकौशिक सर्प के काटने पर उनके पैरों से दूध की धारा निकल पड़ी, उनके शरीर पर कीलें ठोकी गईं।	(5) दीक्षा के बाद महावीर ने मौनपूर्वक विहार किया और 12 वर्ष की तपस्या करके केवलज्ञान प्राप्त किया।
(6) महावीर के ऊपर जगह-जगह तमाम नगरों में उपसर्ग हुआ। लोगों ने उन्हें बांधा, मारा, जेल में डाल दिया, उछालकर फेंक दिया, आग लगा दी......इत्यादि।	(6) महावीर पर उज्जयिनी के अतिमुक्तक वन में ध्यानावस्था में रुद्र ने मात्र एक बार उपसर्ग किया और ध्यान के बल पर उपसर्ग को जीतकर महावीर तीर्थंकर बने। दिगम्बर परम्परानुसार कोई भी उपसर्गकर्ता तीर्थंकर के शरीर को स्पर्श नहीं कर सकता है, उपसर्ग उनके चारों ओर होता है, तीर्थंकर को कोई कष्ट नहीं हो सकता है। महावीर अपने जीवन में कभी बीमार नहीं हुए, क्योंकि तीर्थंकर के शरीर में प्रारंभ से अंत तक कोई रोग नहीं होता है।

श्वेताम्बर परम्परा की मान्यता	दिगम्बर परम्परा की मान्यता
(7) गोशालक ने भगवान महावीर पर तेजोलेश्या का प्रहार किया।	(7) गोशालक नामक कोई व्यक्ति भगवान महावीर के जीवनकाल में नहीं हुआ।
(8) भगवान महावीर ने दीक्षा के पश्चात् चातुर्मास किये।	(8) तीर्थंकर दीक्षा के पश्चात् वर्षायोग नहीं करते।
(9) श्वेताम्बर में दिगम्बर चित्र बनाते हुए उसके आगे पेड़ आड़ा कर देते हैं, सामने सर्प या आशीर्वाद का हाथ आड़ा करके नग्नता को ढक देते हैं।	(9) भगवान महावीर को दीक्षा लेने के पश्चात् नग्न दिगम्बर अवस्था में दिखाया जाता है।
(10) भगवान महावीर ने गौतम गणधर को निर्वाण जाने के समय अन्यत्र भेज दिया ताकि उनको वियोग का दु:ख न हो।	(10) भगवान महावीर ने अपने निर्वाण काल की बेला में गौतम गणधर को अन्यत्र जाने का आदेश नहीं दिया क्योंकि वे तो पूर्ण वीतरागी थे।
(11) महावीर की माता ने 14 स्वप्न देखे।	(11) महावीर की माता ने 16 स्वप्न देखे जैसा कि प्रत्येक तीर्थंकर की माता अपने गर्भ में तीर्थंकर के आने के पहले 16 स्वप्न ही देखती हैं।
(12) रानी त्रिशला के महावीर से पहले एक पुत्र नंदीवर्धन तथा पुत्री सुदर्शना थे अर्थात् महावीर से पूर्व उनके एक भाई और एक बहन थी।	(12) रानी त्रिशला के केवल एक ही पुत्र भगवान महावीर थे।
(13) महावीर का एक नाम वैशालिक भी माना है।	(13) किन्हीं भी ग्रंथों में भगवान महावीर का नाम वैशालिक नहीं आया।
(14) महावीर से पूर्व महाश्रमण केशी कुमार हुए ऐसा माना है।	(14) भगवान महावीर से पूर्व केशी कुमार नाम के कोई महामुनि नहीं हुए।
(15) माता त्रिशला ने महाराजा के शयनकक्ष में जाकर उनको जगाकर अपने स्वप्न बताये। उनका फल राजदरबार में विद्वान पंडितों को बुलाकर पूछा।	(15) माता त्रिशला पिछली रात्रि में स्वप्न देखकर अगले दिन प्रात: राजदरबार में जाकर महाराज सिद्धार्थ से स्वप्नों का फल पूछती हैं।
(16) गर्भ में यह जानकर कि माता को कष्ट हो रहा है महावीर ने हलन-चलन बंद कर दिया था। उनका यह	(16) गर्भधारण करने से माता को कोई कष्ट नहीं था, न ही गर्भ में महावीर ने ऐसा कोई नियम लिया कि

श्वेताम्बर परम्परा की मान्यता	दिगम्बर परम्परा की मान्यता
नियम था कि जब तक माता–पिता जीवित रहेंगे तब तक दीक्षा नहीं लूंगा।	माता–पिता के जीवित रहने तक दीक्षा नहीं लूंगा।
(17) पांडुकशिला पर इन्द्र भगवान को गोद में लेकर बैठता है।	(17) जन्माभिषेक के समय इन्द्र भगवान को गोद में लेकर पांडुकशिला पर नहीं बैठता है।
(18) बाल्यावस्था में महावीर स्कूल में पढ़ने गये।	(18) तीर्थंकर स्कूल में पढ़ने नही जाते हैं वे तो जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी होते हैं।
(19) माता–पिता आदि को प्रणाम करते हैं।	(19) दीक्षा के पूर्व या पश्चात् तीर्थंकर माता–पिता अथवा मुनियों को भी नमस्कार नहीं करते।
(20) भगवान ने अशोक वृक्ष के नीचे दीक्षा धारण की।	(20) भगवान ने साल वृक्ष के नीचे दीक्षा धारण की।
(21) ध्यानस्थ अवस्था में गोशालक उनके पास बैल बांध गया पुनः आने पर बैल नहीं मिले तो उस गोशालक ने महावीर स्वामी को कोड़े मारे।	(21) महावीर स्वामी के दीक्षा लेने के पश्चात् किसी भी गोशालक ने कोई उपसर्ग नहीं किया।
(22) इन्द्र ने भगवान महावीर के दीक्षा काल में आने वाले उपसर्गों से रक्षा के लिए साथ में रहने का निवेदन किया किन्तु भगवान ने मना कर दिया।	(22) इन्द्र ने कभी भी भगवान महावीर को दीक्षा काल में यातनाओं से बचाने के लिए साथ में रहने का निवेदन नहीं किया।
(23) मोराक ग्राम के तापस आश्रम में चातुर्मास किया तथा कुटिया की घास गायों द्वारा खा जाने पर कुलपति ने महावीर को उपालंभ दिया। इस पर महावीर आश्रम छोड़कर अन्यत्र चले गये।	(23) मुनि अवस्था में मोराक नगर के तापस आश्रम में नहीं ठहरे।
(24) भिक्षा, गवेषणा मार्ग, ज्ञान तथा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर के अतिरिक्त मौनपूर्वक रहने का नियम लिया।	(24) दीक्षा लेने के पचात् तीर्थंकर किसी से किसी भी प्रकार का वार्तालाप, चर्चा, शंका–समाधान आदि नहीं करते। (दीक्षा लेने से केवलज्ञान होने तक)
(25) भ्रमण काल में अस्तिक ग्राम में एक सुनसान वैदिक मंदिर में ठहरे वहाँ के यक्ष ने घोर उपसर्ग किया। अंत में हारकर भक्त बन गया।	(25) विहारकाल में अस्तिक ग्राम में किसी भी वैदिक मंदिर में नही ठहरे।

श्वेताम्बर परम्परा की मान्यता	दिगम्बर परम्परा की मान्यता
(26) कनखल आश्रम से श्वेताम्बी जाने के रास्ते में ध्यान में खड़े महावीर पर चण्डकौशिक सर्प ने दंशा घात किया जिसमें महावीर के पैर से दूध की धारा बह निकली। सर्प शांत हो गया उसे घी शक्कर अर्पित करने लगे जिससे उस पर असंख्य चीटियाँ चढ़ गई जिससे मरकर देव बन गया।	(26) भगवान के विहार में कनखल आश्रम में जाने का कोई विवरण नहीं आता।
(27) संगम देव ने दीक्षित अवस्था में कभी पत्नी बनकर, कभी रूप लावण्य स्त्री का रूप धरकर, कभी पक्षी बनकर, कभी भगवान को चोरीकला का गुरु घोषित कर, कभी हाथी आदि जंगली जानवर बनकर 6 माह तक घोर उपसर्ग किया।	(27) संगम देव ने सर्प बनकर भगवान महावीर की बाल्यकाल में मात्र एक दिन वीरता की परीक्षा ली थी।
(28) संगमदेव की पापवर्धित क्रियाओं को देखकर उसके प्रति करुणा भाव से भगवान महावीर के नेत्र सजल हो गये।	(28) भगवान महावीर दीक्षित अवस्था में कष्टों से अथवा स्नेहवश कभी भी रोये नहीं (अश्रुपात नहीं हुए)।
(29) गोकुल ग्राम में गोपी वत्सपालिका के यहाँ छह मास के उपवास के बाद पारणा हुआ।	(29) ऐसा कोई पारणा नहीं हुआ क्योंकि महावीर इस तरह यत्र-तत्र भोजन — पारणा/आहार नहीं करते थे।
(30) दीक्षा के 13वें वर्ष में घम्माणी ग्राम में एक ग्वाले ने घोर उपसर्ग किया। अपने बैल ध्यानस्थ भगवान के पास छोड़ गया। लौट कर आने पर बैल नहीं मिलने पर क्रोधित होकर उस ग्वाले ने भगवान के दोनों कानों में लकड़ी की कीलें ठोंकी, इस असहनीय कष्ट को भगवान ने मौनभावपूर्वक सहन किया। कीलें ठुकी अवस्था में मध्यमा नगरी में एक श्रावक के यहाँ भिक्षार्थ आये, यहाँ एक वैद्य ने उनकी दारुण पीड़ा को देखकर तेल आदि का लेपकर कीलें खींची जिसके कारण खून की तेजधार निकल पड़ी। जिससे भगवान को अपार वेदना हुई। फिर भी वे विचलित नहीं हुए। उपसर्गों का प्रारंभ बैलों के निमित्त से हुआ तथा उपसर्गों का समापन भी बैलों के निमित्त से हुआ।	(30) ऐसा कोई उपसर्ग नहीं हुआ।
(31) चंदनबाला से आहार वाले दिन भगवान ने 13 नियमों की विधि ली थी।	(31) चंदनबाला को भक्तिवश सहज में महावीर को आहारदान देने का योग प्राप्त हुआ था।

श्वेताम्बर परम्परा की मान्यता	दिगम्बर परम्परा की मान्यता
(32) चंदनबाला को उड़द के बाकले सूप में खाने के लिए दिये जाते थे।	(32) चंदनबाला को मिट्टी के सकोरे में कोदों का भात दिया जाता था।
(33) चंदना को कौशाम्बी में नीलाम कर दिया गया सेठ ने दासी के रूप में रखा।	(33) इस प्रकार का कथानक नहीं है। सेठ ने पुत्री के रूप में अपने यहाँ रखा था किन्तु सेठानी ने शंकित होकर उसे कष्ट दिया।
(34) गोशालक ने भगवान महावीर पर तेजोलेश्या फेकी।	(34) गोशालक नाम का कोई व्यक्ति भगवान के संपर्क में नहीं आया। न ही ऐसी कोई घटना हुई।
(35) भगवान महावीर को गोदुह्य आसन से केवलज्ञान प्राप्त हुआ।	(35) भगवान को पद्मासन मुद्रा में केवलज्ञान प्राप्त हुआ।
(36) केवलज्ञान होने के पश्चात् भी उपसर्ग हुए।	(36) केवलज्ञान होने के पश्चात् किसी भी प्रकार का कोई उपसर्ग तीर्थंकर पर नहीं होता है।
(37) केवलज्ञान होने के पश्चात् भी तीर्थंकर भगवान महावीर भक्तों से वार्तालाप करते थे, हाथ से आशीर्वाद देते थे। 30 नगरों में चातुर्मास किये।	(37) केवलज्ञान के पश्चात् तीर्थंकर किसी से न तो वार्तालाप करते हैं और न ही हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हैं और न ही कहीं चातुर्मास करते हैं क्योंकि वे पूर्ण वीतरागी भगवान हो जाते हैं।
(38) भगवान महावीर सामान्य देहधारी मनुष्य थे।	(38) वे सामान्य देहधारी मनुष्य नहीं थे, उनको जन्म से ही असाधारण तीर्थंकर प्रकृति का माहात्म्य था। वे दिव्य परमौदारिक देह के धारी थे।
(39) एक मदमस्त हाथी को वश में किया (दीक्षापूर्व-घर में रहते हुए)	(39) हाथी को वश में करने वाली घटना का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।
(40) चातुर्याम (पांच महाव्रतों में से ब्रह्मचर्य को छोड़कर शेष चार महाव्रत चातुर्याम धर्म के रूप में भगवान पार्श्वनाथ तक माने गये हैं तथा अतिरिक्त ब्रह्मचर्य महाव्रत की मान्यता भगवान महावीर के समय से चली है, ऐसी मान्यता श्वेताम्बर परम्परा में है)।	(40) अनादिकाल से पांचों महाव्रत सभी तीर्थंकरों ने पालन किये एवं बताये हैं।

श्वेताम्बर परम्परा की मान्यता	दिगम्बर परम्परा की मान्यता
(41) आम्रपाली नाम की वेश्या को वैशाली की नगरवधू के रूप में सम्मान प्रदान किया गया है।	(41) आम्रपाली वेश्या का कोई उल्लेख नहीं है, न ही वेश्याओं के इस प्रकार सम्मान की कोई बात ही आती है।
(42) भगवान महावीर का निर्वाण पावापुरी में भिन्न स्थान पर हुआ। भगवान महावीर के निर्वाण के बाद उनके शरीर का जहाँ अग्नि संस्कार किया गया, वहाँ की भस्म नगरजनों ने मस्तक पर लगाई। जब भस्म नहीं रही तो लोग थोड़ी-थोड़ी मिट्टी ले गये जिससे वहाँ बड़ा सा खड्डा बन जाने से तालाब बन गया। अनंतर उसमें कमल खिलने लगे जिससे उसका नाम जलमंदिर पड़ गया।	(42) पावापुरी में कमल सरोवर के मध्य.....अधर आकाश से निर्वाण हुआ। वहीं पर इन्द्रों तथा देवों ने मिलकर अग्नि संस्कार किया था।
(43) कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में दिव्यध्वनि होते-होते अचानक बंद हो गई। तभी निर्वाण हो गया।	(43) कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी से दो दिन पूर्व योग निरोध किया। समवसरण विघटित हो गया। दो दिन सभी मनुष्य तथा देव जान गये कि अब भगवान का निर्वाण होने वाला है। सभी हाथ जोड़े हुए भगवान को निहार रहे थे। कार्तिक कृष्णा अमावस्या के ऊषा काल की बेला (सूर्योदय से 2 घड़ी पूर्व) भगवान मोक्ष पधार गये।

4.1 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-दिगम्बर परम्परा के अनुसार भगवान महावीर की माता का नाम बताएं ?

प्रश्न 2-श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार तीर्थंकर चातुर्मास करते हैं या नहीं ?

प्रश्न 3-दिगम्बर परम्परा के अनुसार तीर्थंकर की माता कितने स्वप्न देखती है ?

इकाई – 4 जैन साहित्य (Jain Literature)

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है-

(1) जैनागम

(2) जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

पाठ-1-जैनागम (*Jainagam*-The Jain Scriptures)

1.1 ''द्वादशांग श्रुतज्ञान क्या है ?''

'' जिनेन्द्रदेव की दिव्यध्वनि को गणधरदेव धारण करते हैं। पुनः उसे द्वादशांगरूप से गूँथते हैं। अतः भगवान् की वाणी ही द्वादशांग श्रुतज्ञानरूप है।

उस श्रुतज्ञान के दो भेद हैं– अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट । इनमें से अंगप्रविष्ट के बारह भेद हैं और अंगबाह्य के चौदह। अंगप्रविष्ट के नाम आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, नाथधर्मकथा, उपासकाध्ययन, अन्तकृद्दश, अनुत्तरोपपादिकदश, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद।

(1) आचारांग (*Aacharang*)– इनमें 18000 पदों द्वारा मुनियों के आचार का वर्णन रहता है। जैसे कि–

कधं चरे कधं चिट्ठे कधमासे कधं सए। कधं भुंजेज्ज भासेज्ज कधं पावं ण बज्झई।।70।।

जदं चरे जदं चिट्ठे जद्मासे जदं सए। जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झई।।71।।

किस प्रकार चलना चाहिये ? किस प्रकार खड़े रहना चाहिये ? किस प्रकार बैठना चाहिये ? किस प्रकार शयन करना चाहिये ? किस प्रकार भोजन करना चाहिये ? किस प्रकार संभाषण करना चाहिये ? कि जिससे पापकर्म नहीं बंधता है।

इस तरह के प्रश्नों के अनुसार गणधर स्वामी उत्तर देते हैं–

यत्न से चलना चाहिये, यत्नपूर्वक भोजन करना चाहिये, यत्नपूर्वक खड़े रहना चाहिये, यत्नपूर्वक बैठना चाहिये, यत्नपूर्वक शयन करना चाहिये, यत्नपूर्वक संभाषण करना चाहिये। इस प्रकार आचरण करने से पापकर्म का बंध नहीं होता है । इत्यादि रूप से मुनियों के आचार का, मूलगुण और नाना प्रकार उत्तरगुणों का वर्णन इस अंग में पाया जाता है।

(2) सूत्रकृतांग (*Sutrakritang*)–इस अंग में 36000 पदों द्वारा ज्ञानविनय, प्रज्ञापना,कल्प्याकल्प्य, छेदोपस्थापना और व्यवहार धर्मक्रिया का प्ररूपण होता है तथा यह स्वसमय और परसमय का भी निरूपण करता है।

(3) स्थानांग (*Sthanang*)–यह अंग 42000 पदों द्वारा उतरोत्तर एक– एक अधिक स्थानों का वर्णन करता है। जैसे महात्मा अर्थात् यह जीवद्रव्य निरंतर चैतन्यरूप धर्म से उपयुक्त होने के कारण उसकी अपेक्षा एक ही है। ज्ञान और दर्शन के भेद से दो प्रकार का है । कर्मफलचेतना, कर्मचेतना और ज्ञानचेतना से लक्ष्यमाण होने के कारण तीन भेदरूप है।

चार गतियों में परिभ्रमण की अपेक्षा इसके चार भेद हैं। औदयिक, औपशमिक , क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन पाँच प्रधान गुणों से युक्त होने के कारण इसके पाँच भेद हैं। भवान्तर में जाते समय पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे इस तरह छह संक्रमण लक्षण अपक्रमों से युक्त होने के कारण छह प्रकार का है। अस्ति, नास्ति इत्यादि सात भंगों से युक्त होने की अपेक्षा सात प्रकार का है। ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के आश्रय से सहित होने के कारण आठ प्रकार का है। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप इन नव पदार्थों को विषय करने वाला अथवा इन नव प्रकार के पदार्थों रूप परिणमन करने वाला, होने की अपेक्षा से नौ प्रकार का है।

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक,प्रत्येक वनस्पतिकायिक, साधारण वनस्पतिकायिक, द्वींद्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियजाति, इन दश भेद से दश स्थानगत होने की अपेक्षा दश प्रकार का कहा जाता है। इत्यादिरूप से जितने भी भेद संभव हैं उन सबका यह अंग वर्णन करता है।

(4) समवायांग (*Samvayang*)– यह अंग 164000 पदों द्वारा सम्पूर्ण पदार्थों के समवाय का वर्णन करता है, अर्थात् सादृश्य सामान्य से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा जीवादि पदार्थों का ज्ञान कराता है। वह समवाय चार प्रकार का है– द्रव्यसमवाय, क्षेत्रसमवाय, कालसमवाय और भावसमवाय। उनमें से द्रव्यसमवाय की अपेक्षा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश और एक जीव के प्रदेश समान हैं। क्षेत्र समवाय की अपेक्षा प्रथम नरक के प्रथम पटल का सीमंतक नाम का इन्द्रक बिल, ढाई द्वीप प्रमाण मनुष्य क्षेत्र, प्रथम स्वर्ग के प्रथम पटल का ऋजु नाम का इन्द्रक विमान और सिद्ध क्षेत्र ये समान हैं। काल की अपेक्षा एक समय एक समय के बराबर है और एक मुहूर्त एक मुहूर्त के बराबर है। भाव की अपेक्षा केवलज्ञान केवलदर्शन के समान है, क्योंकि ज्ञेयप्रमाण ज्ञान है और ज्ञानमात्र चेतना की उपलब्धि होती है।

(5) व्याख्या प्रज्ञप्ति अंग (*Vyakhyapragyapti Anga*)– यह अंग 228000 पदों द्वारा क्या जीव है ? क्या जीव नहीं है ? इत्यादि रूप से साठ हजार प्रश्नों का व्याख्यान करता है।

(6) नाथधर्मकथांग (*Nathdharakathang*)–इस अंग का ज्ञातृधर्मकथा भी नाम है। यह 556000 पदों द्वारा सूत्र पौरुषी अर्थात् सिद्धान्तोक्त विधि से स्वाध्याय की प्रस्थापना हो इसलिये, तीर्थंकरों की धर्मदेशना का, संदेह को प्राप्त गणधर के संदेह को दूर करने की विधि का तथा अनेक प्रकार की कथा और उपकथाओं का वर्णन करता है।

(7) उपासकाध्ययनांग (*Upaskadhyanang*)–यह अंग 11,70,000 पदों द्वारा दर्शनिक, व्रतिक, सामायिकी, प्रोषधोपवासी, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तिविरत, ब्रह्मचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत इन ग्यारह प्रकार के श्रावकों के लक्षण, उन्हीं के व्रत धारण करने की विधि और उनके आचरण का वर्णन करता है।

(8) अन्तकृद्दशांग (*Antkriddashang*)–यह अंग तेईस लाख अट्ठाईस हजार (2328000) पदों के द्वारा एक– एक तीर्थंकर के तीर्थ में नाना प्रकार के दारुण उपसर्गों को सहन कर और प्रातिहार्य अर्थात् अतिशय विशेषों को प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त हुये दश–दश अंतकृत केवलियों का वर्णन करता है।

तत्त्वार्थभाष्य में भी कहा है–

जिन्होंने संसार का अन्त किया उन्हें अन्तकृत् केवली कहते हैं। वर्धमान तीर्थंकर के तीर्थ में नमि, मतंग , सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक,वलीक,किष्कंबिल, पालम्ब, अष्टपुत्र ये दश अन्तकृत् केवली हुये हैं। इसी प्रकार ऋषभदेव आदि तेईस तीर्थंकरों के तीर्थ में अन्य दूसरे दश–दश अनगार मुनि दारुण उपसर्गों को जीतकर सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से अन्तकृत् केवली हुये । इन सबकी दशा का जिसमें वर्णन किया जाता है उसे अन्तकृद्दशा नाम का अंग कहते हैं।

(9) अनुत्तरौपपादिकदशांग (*Anutaroppadikdashang*)–यह अंग बानवे लाख चवालीस हजार (9244000) पदों द्वारा एक–एक तीर्थ में नाना प्रकार के दारुण उपसर्गों को सहकर और प्रातिहार्य अर्थात् अतिशय विशेषों को प्राप्त करके पाँच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुये हैं उन दश–दश अनुत्तरौपपादिकों का वर्णन करता है। तत्त्वार्थभाष्य में भी कहा है–

उपपाद जन्म ही जिनका प्रयोजन है उन्हें औपपादिक कहते हैं। विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि ये पाँच अनुत्तर विमान है। जो अनुत्तरों में उपपाद जन्म से पैदा होते हैं उन्हें अनुत्तरौपपादिक कहते हैं। ऋषिदास,धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिकेय, आनन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय, वारिषेण और चिलातपुत्र ये दश अनुत्तरौपपादिक वर्धमान तीर्थंकर के तीर्थ में हुए हैं। इसी तरह ऋषभनाथ आदि तेईस तीर्थंकरों के तीर्थ में अन्य दश–दश महासाधु दारुण उपसर्गों को जीतकर विजय आदिक पाँच अनुत्तरों में उत्पन्न होने वाले दश साधुओं का जिसमें वर्णन किया जावे उसे अन्तकृद्दश नाम का अंग कहते हैं।

(10) प्रश्नव्याकरणांग (*Prashnavyakarnang*)–यह अंग तेरानवें लाख सोलह हजार पदों द्वारा आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी और निर्वेदनी इन चार कथाओं का तथा भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल सम्बन्धी धन, धान्य, लाभ, अलाभ, जीवित, मरण, जय और पराजय सम्बन्धी प्रश्नों के पूछने पर उनके उपाय का वर्णन करता है।

आक्षेपणी (*Akshepni*)–जो नाना प्रकार की एकान्तदृष्टियों का और दूसरे समयों के निराकरणपूर्वक शुद्धि करके छह द्रव्य और नव प्रकार के पदार्थों का प्ररूपण करती है उसे आक्षेपणी कथा कहते हैं।

विक्षेपणी (*Vikshepni*)–जिसमें पहले परसमय के द्वारा स्वसमय में दोष बताये जाते हैं । अनंतर परसमय की आधारभूत अनेक एकान्तदृष्टियों का शोधन करके स्वसमय की स्थापना की जाती है और छह द्रव्य नौ पदार्थों का प्ररूपण किया जाता है उसे विक्षेपणी कथा कहते हैं।

संवेदनी (*Samvedni*)–पुण्य के फल का वर्णन करने वाली कथा को संवेदनी कथा कहते हैं।

शंका–पुण्य के फल कौन से हैं ?

समाधान–तीर्थंकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और विद्याधरों की ऋद्धियाँ पुण्य के फल हैं।''

निर्वेदनी (*Nirvedni*)–पाप के फल का वर्णन करने वाली कथा को निर्वेदनी कथा कहते हैं।

शंका–पाप के फल कौन से हैं ?

समाधान–नरक, तिर्यंच और कुमानुष की योनियों में जन्म, जरा, मरण, व्याधि, वेदना और दारिद्र्य आदि की प्राप्ति पाप के फल हैं।

अथवा संसार, शरीर और भोगों में वैराग्य को उत्पन्न करने वाली कथा को निर्वेदनी कथा कहते हैं। कहा भी है–

तत्त्वों का निरूपण करने वाली आक्षेपणी कथा है। तत्त्व से दिशान्तर को प्राप्त हुई दृष्टियों का शोधन करने वाली अर्थात् परमत की एकान्त दृष्टियों का निराकरण करके स्वसमय की स्थापना करने वाली विक्षेपणी कथा है। विस्तार से धर्म के फल का वर्णन करने वाली संवेदनी कथा है और वैराग्य उत्पन्न करने वाली निर्वेदनी कथा है।

इन कथाओं का प्रतिपादन करते समय जो जिनवचन को नहीं जानता है अर्थात् जिसका जिनवचन में प्रवेश नहीं है, ऐसे पुरुष को विक्षेपणी कथा का उपदेश नहीं देना चाहिये। अभिप्राय यह है कि अन्य सम्प्रदाय का पूर्व पक्ष रखकर जिसमें उनका खण्डन करके अपने पक्ष का मंडन किया जाता है उन्हें ही विक्षेपणी कथा कहते हैं। क्योंकि जिसने स्वसमय के रहस्य को नहीं जाना है और परसमय की प्रतिपादन करने वाली कथाओं के सुनने से व्याकुलित चित्त होकर वह मिथ्यात्व को स्वीकार न कर लेवे, इसलिये स्वसमय के रहस्य को नहीं जानने वाले पुरुष को विक्षेपणी कथा का उपदेश न देकर शेष तीन कथाओं द्वारा जिसने स्वसमय को भली भाँति समझ लिया है,जो पुण्य और पाप के स्वरूप को जानता है, जिस तरह मज्जा अर्थात् हड्डियों के मध्य में रहने वाला रस हड्डी से संसक्त होकर ही शरीर में रहता है, उसी तरह जो जिनशासन में अनुरक्त है, जिनवचन में जिसको किसी प्रकार की विचिकित्सा नहीं रही है, जो भोग और रति से विरक्त है और जो तप, शील और नियम से युक्त है ऐसे पुरुष को ही पश्चात् विक्षेपणी कथा का उपदेश देना चाहिये। प्ररुपण करके उत्तमरूप से ज्ञान कराने वाले के लिये यह अकथा भी तब कथारूप हो जाती है। इसलिये योग्य पुरुष को प्राप्त करके ही साधु को कथा का उपदेश देना चाहिये।

यह प्रश्न व्याकरण नाम का अंग प्रश्न के अनुसार हत, नष्ट, मुष्टि, चिन्ता, लाभ, अलाभ, सुख, दु:ख, जीवन, मरण, जय, पराजय, नाम, द्रव्य, आयु और संख्या का भी प्ररूपण करता है।

(11) विपाकसूत्रांग (*Vipaksutrang*)–यह अंग एक करोड़ चौरासी लाख पदों द्वारा पुण्य और पापरूप कर्मों के फलों का वर्णन करता है।

ग्यारह अंगों के कुल पदों का जोड़ चार करोड़ पंद्रह लाख दो हजार (41502000) पद है।

(12) दृष्टिवादांग (*Drishtivadang*)– यह बारहवां अंग है , इस अंग में कौत्कल, काण्ठेविद्धि, कौशिक, हरिश्मश्रु, मांधुपिक, रोमश, हारीत, मुण्ड और अश्वलायन आदि क्रियावादियों के एक सौ अस्सी मतों का वर्णन और निराकरण है। मरीचि, कपिल, उलूक, गार्ग्य, व्याघ्रभूति, वाद बलि, माठर और मौद्गल्यायन आदि अक्रियावादियों के चौरासी मतों का वर्णन और निराकरण किया गया है। शाकल्य, बल्कल, कुथुमि, सात्यमुग्रि, नारायण, कण्व, माध्यन्दिन, मोद, पैप्पलाद, बादरायण, स्वेष्टकृत, ऐतिकायन, वसु और जेमिनी आदि अज्ञानवादियों के सरसठ मतों का वर्णन और निराकरण किया गया है। तथा वशिष्ठ पाराशर, जतुकर्ण, बाल्मीकि, रोमहर्षिणी, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, औपमन्यु, ऐन्द्रदत्त और अयस्थूण आदि वैनयिकवादियों के बत्तीस मतों का वर्णन और निराकरण किया गया है। इस प्रकार से क्रियावादी के 180 + अक्रियावादी के 84, अज्ञानवादी के 67+ वैनयिकवादी के 32= मिलाकर 363 पाखंड मत होते हैं। दृष्टिवाद अंग इन मतों का वर्णन करके उनका खण्डन करता है।

1.2 इस दृष्टिवाद अंग के पाँच अधिकार हैं–

परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका।

इनमें से प्रथम परिकर्म नाम के प्रथम भेद के भी पाँच भेद माने गये हैं–

चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और व्याख्याप्रज्ञप्ति।

(1) चन्द्रप्रज्ञप्ति (*Chandrapragyapti*)–नाम का परिकर्म छत्तीस लाख पांच हजार (3605000) पदों द्वारा चन्द्रमा की आयु, परिवार, ऋद्धि, गति और बिम्ब की ऊँचाई आदि का वर्णन करता है।

(2) सूर्यप्रज्ञप्ति (*Suryapragyapti*)–नाम का परिकर्म पाँच लाख तीन हजार (503000) पदों के द्वारा सूर्य की आयु, भोग, उपभोग, परिवार, ऋद्धि, गति, बिम्ब की ऊँचाई, दिन की हानिवृद्धि, किरणों का प्रमाण और प्रकाश आदि का वर्णन करता है।

(3) जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति (*Jambudweeppragyapti*)–नाम का परिकर्म तीन लाख पच्चीस हजार (325000) पदों के द्वारा जंबूद्वीपस्थ भोगभूमि और कर्मभूमि में उत्पन्न हुये नाना प्रकार के मनुष्य तथा दूसरे तिर्यंच आदि का और पर्वत, द्रह, नदी, वेदिका, वर्ष (क्षेत्र), आवास, अकृत्रिम जिनालय आदि का वर्णन करता है।

(4) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति (*Dweepsagarpragyapti*)–नाम का परिकर्म बावन लाख छत्तीस हजार पदों के द्वारा उद्धारपल्य से द्वीप और समुद्रों के प्रमाण का तथा द्वीपसागर के अंतर्भूत नाना प्रकार के दूसरे पदार्थों का वर्णन करता है।

(5) व्याख्याप्रज्ञप्ति (*Vyakhyapragyapti*)–नाम का परिकर्म चौरासी लाख छत्तीस हजार पदों के द्वारा रूपी अजीवद्रव्य अर्थात् पुद्‌गल, अरूपी अजीवद्रव्य अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश और काल , भव्यसिद्ध और अभव्यसिद्ध जीव इन सबका वर्णन करता है।

दृष्टिवाद अंग का सूत्र नाम का द्वितीय अर्थाधिकार–

यह अठासी लाख पदों के द्वारा जीव अबन्धक ही है, अलेपक ही है, अकर्त्ता ही है, अभोक्ता ही है, निर्गुण ही है, अणु प्रमाण ही है, जीव नास्ति स्वरूप ही है, जीव अस्ति स्वरूप ही है, पृथ्वी आदि पाँच भूतों के समुदाय रूप से जीव उत्पन्न होता है, चेतना रहित है, ज्ञान के बिना भी सचेतन है, नित्य ही है, अनित्य ही है, इत्यादि रूप से क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादियों के तीन सौ त्रेसठ पाखंड मतों का पूर्वपक्ष रूप से वर्णन करता है पुनः उत्तर पक्ष से उनका निराकरण करता है।

यह त्रैराशिकवाद , नियतिवाद, विज्ञानवाद, शब्दवाद, प्रधानवाद, द्रव्यवाद और पुरुषवाद का भी वर्णन करता है कहा भी है–

इस सूत्र नामक अर्थाधिकार के अठासी अधिकारों में से चार अधिकारों का अर्थनिर्देश मिलता है। उनमें पहला अधिकार अबन्धकों का, दूसरा त्रैराशिकवादियों का, तीसरा नियतिवाद का तथा चौथा अधिकार स्वसमय का प्ररूपक है।

विशेषार्थ– गोशालप्रवर्तित, आजीविक और पाखंडी ये त्रैराशिक कहलाते हैं क्योंकि ये सर्ववस्तुओं को तीन रूप मानते हैं । जैसे – जीव, अजीव और जीवाजीव। लोक, अलोक और लोकालोक। सत्, असत् और सदसत् इत्यादि। नियतिवादी लोग कहते हैं कि जब, जिसके द्वारा, जैसे, जिसका, जो होना है, तब उसके द्वारा वैसे ही, उसका होता है। यह भी एकान्त मान्यता है। बौद्धों का एक भेद विज्ञानवाद है इसकी ऐसी मान्यता है कि जगत् में दिखने वाले सभी चेतन–अचेतन पदार्थ मात्र ज्ञान स्वरूप ही हैं। बस, यह ज्ञानमात्र ही एक परमार्थ तत्त्व है और सब कल्पना जाल है इत्यादि। ब्रह्माद्वैतवादी सकल जगत् को एक शब्दरूप ही मानते हैं उनका कहना है कि सचेतन–अचेतन पदार्थ शब्द से ही अनुबद्ध होकर प्रतिभासित होते हैं । प्रधानवाद सांख्यों का सिद्धांत है। इसका अभिप्राय है कि सत्व, रज और तम की सम्मावस्था प्रधान है इत्यादि। यही सांख्य द्रव्यमात्र को ही मानता है, पर्यायों को नहीं । अतः द्रव्यमात्र सिद्धान्त भी सांख्यों का ही है। पुरुषवादी लोग पुरुषार्थ को ही सब कार्यों की सिद्धि का करने वाला कहते हैं। ये सब एकांतवाद मिथ्यारूप हैं। इस सूत्र नाम के भेद में इन सभी मिथ्यामतों का स्वरूप बताकर उनका निराकरण किया जाता है।

दृष्टिवाद अंग का प्रथमानुयोग नाम का तीसरा अर्थाधिकार-

यह पाँच हजार पदों के द्वारा पुराणों का वर्णन करता है कहा भी है–

जिनेंद्रदेव ने जगत् में बारह प्रकार के पुराणों का उपदेश दिया है । वे समस्त पुराण जिनवंश और राजवंश का वर्णन करते हैं। पहला अरिहंत अर्थात् तीर्थंकरों का, दूसरा चक्रवर्तियों का, तीसरा विद्याधरों का, चौथा नारायण–प्रतिनारायणों का, पाँचवाँ चारणों का-चारण ऋषियों का, छठा प्रज्ञाश्रमणों का वंश तथा सातवां कुरुवंश, आठवाँ हरिवंश, नौवाँ इक्ष्वाकुवंश, दशवाँ काश्यप वंश, ग्यारहवाँ वादियों का वंश और बारहवाँ नाथवंश है।

दृष्टिवाद अंग का पूर्वगत नाम का चौथा अर्थाधिकार-

यह पंचानवे करोड़ पचास लाख और पाँच पदों द्वारा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य आदि का वर्णन करता है। इस अर्थाधिकार के चौदह भेद हैं–

उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यानुप्रवादपूर्व, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवादपूर्व, सत्यप्रवादपूर्व, आत्मप्रवादपूर्व, कर्मप्रवादपूर्व,प्रत्याख्यानपूर्व, विद्यानुप्रवादपूर्व, कल्याणवादपूर्व, प्राणावायपूर्व, क्रियाविशालपूर्व और लोकबिंदुसारपूर्व।

(1) उत्पादपूर्व (*Utpadpoorva*)–यह पूर्व दस वस्तुगत, दो सौ प्राभृतों के एक करोड़ पदों द्वारा जीव, काल और पुद्गल द्रव्य के उत्पाद , व्यय और ध्रौव्य का वर्णन करता है।

(2) अग्रायणीयपूर्व (*Agrayniyapoorva*)–अग्र अर्थात् द्वादशांगों में प्रधानभूत वस्तु के अयन अर्थात् ज्ञान को अग्रायण कहते हैं। उसका कथन करना जिसका प्रयोजन हो उसे अग्रायणीयपूर्व कहते हैं। यह पूर्व चौदह वस्तुगत, दो सौ अस्सी प्राभृतों के छ्यानवे लाख पदों द्वारा अंगों के अग्र अर्थात् परिमाण का कथन करता है।

(3) वीर्यानुप्रवादपूर्व (*Veeryanupravadpoorva*)–यह पूर्व आठ वस्तुगत, एक सौ साठ प्राभृतों के सत्तर लाख पदों द्वारा आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य, क्षेत्रवीर्य, भाववीर्य और तपवीर्य का वर्णन करता है।

(4) अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व (*Astinastipravadpoorva*)–यह पूर्व अठारह वस्तुगत, तीन सौ साठ प्राभृतों के साठ लाख पदों द्वारा जीव और अजीव के अस्तित्व और नास्तित्व धर्म का वर्णन करता है। जैसे जीव स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा कथंचित् अस्तिरूप है, परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, और परभाव की अपेक्षा कथंचित् नास्तिरूप है। जिस समय वह स्वद्रव्य चतुष्टय और परद्रव्यचतुष्टय के द्वारा अक्रम से अर्थात् युगपत विवक्षित होता है उस समय स्यादवक्तव्यरूप है। स्वद्रव्यादिरूप प्रथम धर्म और परद्रव्यादिरूप द्वितीय धर्म से जिस समय क्रम से विवक्षित होता है उस समय कथंचित् अस्तिनास्तिरूप है। स्यात् अस्तिरूप प्रथम धर्म से और स्यात् अवक्तव्यरूप तृतीय धर्म से जिस समय विवक्षित होता है उस समय कथंचित् अस्ति अवक्तव्यरूप है। स्यात् नास्तिरूप द्वितीय धर्म और स्यात्

अवक्तव्यरूप तृतीय धर्म से जिस समय क्रम से विवक्षित होता है उस कथंचित् नास्ति अवक्तव्यरूप है। स्यात् अस्तिरूप प्रथम धर्म, स्यात् नास्तिरूप द्वितीय धर्म और स्यात् अवक्तव्यरूप तृतीय धर्म से जिस समय क्रम से विवक्षित होता है उस समय कथंचित् अस्तिनास्ति अवक्तव्यरूप जीव है। इसी तरह अजीव आदि का भी कथन करना चाहिए।

(5) ज्ञानप्रवादपूर्व (*Gyanpravadpoorva*)–यह पूर्व बारह वस्तुगत, दो सौ चालीस प्राभृतों के एक कम एक करोड़ पदों द्वारा पाँच ज्ञान और तीन अज्ञानों का वर्णन करता है तथा द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अनादि–अनंत, अनादि–सान्त, सादि–अनन्त और सादि–सान्तरूप ज्ञानादि तथा इसी तरह ज्ञान के स्वरूप का वर्णन करता है।

(6) सत्यप्रवादपूर्व (*Satyapravadpoorva*)–यह पूर्व बारह वस्तुगत, दो सौ चालीस प्राभृतों के एक करोड़ छह पदों द्वारा वचनगुप्ति, वाक् संस्कार के कारण, वचनप्रयोग, बारह प्रकार की भाषा, अनेक प्रकार के वक्ता, अनेक प्रकार के असत्य वचन और दस प्रकार के सत्य वचन इन सबका वर्णन करता है।

असत्य नहीं बोलने को अथवा वचन संयम–मौन के धारण करने को वचनगुप्ति कहते हैं।

मस्तक, कण्ठ, हृदय, जिह्वा का मूल, दांत, नासिका, तालु और ओठ ये आठ वचन संस्कार के कारण हैं।

शुभ और अशुभ लक्षणरूप वचन प्रयोग का स्वरूप सरल है।

बारह प्रकार की भाषा के नाम निम्न प्रकार हैं– अभ्याख्यानवचन, कलहवचन, पैशून्य वचन, अबद्धप्रलापवचन, रतिवचन, अरतिवचन, उपधिवचन, निकृतिवचन, अप्रणतिवचन, मोषवचन, सम्यग्दर्शनवचन और मिथ्यादर्शन वचन।

''यह इसका कर्ता है'' इस तरह अनिष्ट करने को अभ्याख्यान भाषा कहते हैं। कलह का अर्थ स्पष्ट ही है अर्थात् परस्पर विरोध के बढ़ाने वाले को कलह कहते हैं। पीछे से दोष प्रकट करने को पैशून्य वचन कहते हैं। धर्म, अर्थ,काम और मोक्ष के सम्बन्ध से रहित वचनों को अबद्धप्रलाप वचन कहते हैं। इन्द्रियों के शब्दादि विषयों में राग उत्पन्न करने वाले वचनों को रति बचन कहते है। इन्द्रियों के विषयों के प्रति अरुचि या द्वेष उत्पन्न करने वाले वचनों को अरति वचन कहते हैं। जिस वचन को सुनकर परिग्रह रक्षण और अर्जन करने में आसक्ति उत्पन्न होती है उसे उपधि वचन कहते हैं। जिस वचन को अवधारण करके जीव व्यापार करते समय ठगने रूप प्रवृत्ति करने में असमर्थ होता है उसे निकृति वचन कहते हैं। जिस वचन को सुनकर तप और ज्ञान से अधिक गुण वाले पुरुषों में भी जीव नम्रीभूत नहीं होता है उसे अप्रणति वचन कहते हैं। जिस वचन को सुनकर चौर्य कर्म में प्रवृत्ति होती है उसे मोष वचन कहते हैं। समीचीन मार्ग के उपदेश देने वाले वचनों को सम्यग्दर्शनवचन कहते हैं। मिथ्या मार्ग के उपदेश देने वाले वचनों को मिथ्यादर्शन वचन कहते हैं।

जिनमें वक्तृपर्याय प्रगट हो गई है ऐसे द्वीन्द्रिय से आदि लेकर सभी जीव वक्ता हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा असत्य अनेक प्रकार का है।

सत्यवचन के दस भेद होते हैं – नामसत्य, रूपसत्य, स्थापनासत्य, प्रतीत्यसत्य, संवृतिसत्य, संयोजनासत्य, जनपदसत्य, देशसत्य, भावसत्य और समयसत्य।

मूल पदार्थ के नहीं रहने पर भी सचेतन और अचेतन द्रव्य को व्यवहार के लिये जो संज्ञा की जाती है उसे नाम सत्य कहते हैं। जैसे–ऐश्वर्य आदि गुणों के न होने पर भी किसी का नाम ''इन्द्र'' ऐसा रखना नाम सत्य है। पदार्थ के नहीं होने पर भी रूप की मुख्यता से जो वचन कहे जाते हैं उसे रूप सत्य कहते हैं। जैसे–चित्रलिखित पुरुष आदि में चैतन्य और उपयोगादि रूप अर्थ के नहीं रहने पर भी ''पुरुष'' इत्यादि कहना रूप सत्य है। मूल पदार्थ के नहीं रहने पर भी कार्य के लिये जो द्यूत सम्बन्धी अक्ष (जुये सम्बन्धी पांसा) आदि में स्थापना की जाती है उसे स्थापना सत्य कहते हैं। सादि और अनादि भावों की अपेक्षा जो वचन बोला जाता है उसे प्रतीत्य सत्य कहते हैं। लोक में जो वचन संवृति–कल्पना के आश्रित बोले जाते हैं उन्हें संवृति सत्य कहते हैं। जैसे पृथ्वी आदि अनेक कारणों के रहने पर भी जो पंक–कीचड़ में उत्पन्न होता है उसे पंकज कहते हैं इत्यादि। धूप के सुगंधीपूर्ण अनुलेपन और प्रघर्षण के समय अथवा पद्म, मकर, हंस,

सर्वतोभद्र और क्रौंच आदिरूप व्यूह रचना के समय सचेतन–अचेतन द्रव्यों के विभागानुसार विधिपूर्वक रचना विशेष के प्रकाशक जो वचन हैं उन्हें संयोजना सत्य कहते हैं। आर्य और अनार्य के भेद से बत्तीस देशों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्राप्त कराने वाले वचन को जनपद सत्य कहते हैं। ग्राम, नगर, राजा, गण, पाखण्ड, जाति और कुल आदि के धर्मों के उपदेश करने वाले जो वचन हैं उन्हें देश सत्य कहते हैं। छद्मस्थों का ज्ञान यद्यपि द्रव्य की यथार्थता का निर्णय नहीं कर सकता है तो भी अपने धर्म के पालन करने के लिए ''यह प्रासुक है यह अप्रासुक है'' इत्यादि रूप से जो संयत और श्रावक के वचन हैं, उन्हें भाव सत्य कहते हैं । आगम गम्य प्रतिनियत छह प्रकार के द्रव्य और उनके पर्यायों की यथार्थता के प्रगट करने वाले जो वचन हैं उन्हें समय सत्य कहते हैं।

(7) आत्मप्रवाद पूर्व (*Atmpravadpoorva*)–यह पूर्व सोलह वस्तुगत, तीन सौ बीस प्राभृतों के छब्बीस करोड़ पदों द्वारा जीव वेत्ता है, विष्णु है, भोक्ता है, बुद्ध है इत्यादि रूप से आत्मा का वर्णन करता है। कहा भी है–

''जीव कर्ता है, वक्ता है, प्राणी है, भोक्ता है, पुद्गल है, वेद है, विष्णु है, स्वयंभू है, शरीरी है , मानव है, सकता है, मानी है, जन्तु है, मायावी है, योग सहित है, संकुट है, असंकुट है, क्षेत्रज्ञ है और अन्तरात्मा है।''

अब इन सब का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है– जीता है, जीवित रहेगा और पहले जीवित था, इसलिये जीव है। शुभ और अशुभ कार्य को करता है, इसलिये कर्ता है। सत्य–असत्य और योग्य–अयोग्य वचन बोलता है, इसलिये वक्ता है। इसके प्राण पाये जाते हैं, इसलिये प्राणी है। देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी के भेद से चार प्रकार के संसार में पुण्य और पाप का भोग करता है, इसलिये भोक्ता है। छह प्रकार के संस्थान और नाना प्रकार के शरीरों द्वारा पूर्ण करता है और गलाता है, इसलिये पुद्गल है। सुख और दुःख का वेदन करता है, इसलिये वेद है अथवा जानता है, इसलिये वेद है। प्राप्त हुये शरीर को व्याप्त करता है, इसलिये शरीरी है। मनु ज्ञान को कहते हैं, उसमें यह उत्पन्न हुआ है, इसलिये विष्णु है । स्वतः ही उत्पन्न हुआ है, इसलिये स्वयंभू है। संसार अवस्था में इसके शरीर पाया जाता है, इसलिये मानव है। स्वजन, सम्बन्धी, मित्रवर्ग आदि में आसक्त रहता है, इसलिये सकता है। चार गतिरूप संसार में उत्पन्न होता है और दूसरों को उत्पन्न करता है, इसलिये जन्तु है। इसके मान कषाय पाई जाती है, इसलिये मानी है। इसके माया कषाय पाई जाती है, अतः मायावी है। इसके तीन योग होते हैं, इसलिये योगी है। अतिसूक्ष्म देह मिलने से संकुचित होता है, इसलिये संकुट है। सम्पूर्ण लोकाकाश को व्याप्त करता है, इसलिये असंकुट है। क्षेत्र अर्थात् अपने स्वरूप को जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ है। आठ कर्मों के भीतर रहता है, इसलिये अन्तरात्मा है।

(8) कर्मप्रवादप्रवादपूर्व (*Karmpravadpoorva*)–यह पूर्व बीस वस्तुगत, चार सौ प्राभृतों के एक करोड़ अस्सी लाख पदों द्वारा आठ प्रकार के कर्मों का वर्णन करता है।

(9) प्रत्याख्यानपूर्व (*Pratyakhyanpravadpoorva*)–यह पूर्व बीस वस्तुगत, छह प्राभृतों के चौरासी लाख पदों द्वारा द्रव्य–भाव आदि की अपेक्षा परिमित कालरूप और अपरिमित रूप प्रत्याख्यान, उपवास विधि, पाँच समिति और तीन गुप्तियों का वर्णन करता है।

(10) विद्यानुवादपूर्व (*Vidyanuvadpoorva*)–यह पंद्रह वस्तुगत, तीन सौ प्राभृतों के एक करोड़ दस लाख पदों द्वारा अंगुष्ठ, प्रसेना आदि सात सौ अल्प विद्याओं का, रोहिणी आदि पाँच सौ महाविद्याओं का और अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन, चिन्ह इन आठ महानिमित्तों का वर्णन करता है।

(11) कल्याणवादपूर्व (*Kalyanvadpoorva*)–यह दस वस्तुगत, दो सौ प्राभृतों के छब्बीस करोड़ पदों द्वारा सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और तारागणों के चार क्षेत्र, उपपाद स्थान, गति, वक्रगति तथा उनके फलों का, पक्षी के शब्दों का और अरिहन्त अर्थात् तीर्थंकर, बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती आदि के गर्भावतार आदि महाकल्याणकों का वर्णन करता है।

(12) प्राणावायपूर्व (*Pranavayapoorva*)–यह पूर्व दस वस्तुगत, दो सौ प्राभृतों के तेरह करोड़ पदों द्वारा

शरीर चिकित्सा आदि अष्टांग आयुर्वेद, भूतिकर्म अर्थात् शरीर आदि की रक्षा के लिये किये गये भस्मलेपन, सूत्रबन्धनादि कर्म, जांगुलि प्रक्रम (विषविद्या) और प्राणायाम के भेद–प्रभेदों का विस्तार से वर्णन करता है।

(13) क्रियाविशालपूर्व (*Kriyavishalpoorva*)–यह पूर्व दस वस्तुगत दो सौ प्राभृतों के नौ करोड़ पदों द्वारा लेखन कला आदि बहत्तर कलाओं का, स्त्री संबन्धी गुण–दोष विधि का और छन्द निर्माण कला का वर्णन करता है।

(14) लोकबिंदुसारपूर्व (*Lokbindusarpoorva*)–यह पूर्व दस वस्तुगत, दो सौ प्राभृतों के बारह करोड़ पचास लाख पदों द्वारा आठ प्रकार के व्यवहारों का, चार प्रकार के बीजों का, मोक्ष को ले जाने वाली क्रिया का और मोक्ष–सुख का वर्णन करता है।

इन चौदह पूर्वों में सम्पूर्ण वस्तुओं का जोड़ एक सौ पंचानवे है और सम्पूर्ण प्राभृतों का जोड़ तीन हजार नौ सौ है।

दृष्टिवाद अंग का पंचम भेद जो चूलिका है-

इसके भी पाँच भेद हैं–जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता, और आकाशगता।

(1) जलगता चूलिका (*Jalgata Choolika*)–यह चूलिका दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ (20989200) पदों द्वारा जल में गमन और जलस्तंभन के कारणभूत मंत्र–तंत्र तथा तपश्चर्यारूप अतिशय आदि का वर्णन करती है।

(2) स्थलगता चूलिका (*Sthalgata Choolika*)–यह उतने ही दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ (20989200) पदों द्वारा पृथ्वी के भीतर गमन करने के कारणभूत मंत्र–तंत्र और तपश्चरणरूप, आश्चर्य आदि का तथा वास्तुविद्या और भूमि सम्बन्धी दूसरे शुभ–अशुभ कारणों का वर्णन करती है।

(3) मायागता चूलिका (*Mayagata Choolika*)–यह भी (20989200) पदों द्वारा मायारूप इन्द्रजाल आदि के कारणभूत मंत्र–तंत्र और तपश्चरण का वर्णन करती है।

(4) रूपगता चूलिका (*Roopgata Choolika*)–यह भी (20989200) पदों द्वारा सिंह, घोड़ा और हरिणादि के स्वरूप के आकाररूप से परिणमन करने के कारणभूत मंत्र–तंत्र और तपश्चरण का तथा चित्रकर्म, काष्ठकर्म, लेप्यकर्म और लेनकर्म आदि के लक्षण का वर्णन करती है।

(5) आकाशगता चूलिका (*Akashgata Choolika*)–(20989200) उपर्युक्त पदों द्वारा आकाश में गमन करने के कारणभूत मंत्र–तंत्र और तपश्चरण का वर्णन करती है।

इन पांचों ही चूलिकाओं के पदों का जोड़ दस करोड़ उनचास लाख छयालीस हजार (104946000) पद हैं।

विशेष–जिनेंद्रदेव की वाणी द्वादशांगरूप है। इस द्वादशांग में ग्यारह अंगों में क्या–क्या विषय हैं उन्हें यहां दिखाया गया है । पुनः बारहवें अंग के पांच भेद – परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका हैं । इनके विषयों को भी यहां संक्षेप में लिखा गया है। अतः भगवान् की वाणी में आयुर्वेद, मंत्र, तंत्र, निमित्तज्ञान आदि सभी विषय आ गये हैं। बारहवें अंग के परिकर्म नामक प्रथम भेद के पांच भेदों में ''जम्बूद्वीप–प्रज्ञप्ति'' यह तृतीय भेद है। इसका लक्षण धवला में इस प्रकार से किया है–

''जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति नाम का परिकर्म तीन लाख पचीस हजार (325000) पदों के द्वारा जंबूद्वीप में स्थित भोगभूमि और कर्मभूमि में उत्पन्न हुये नाना प्रकार के मनुष्य तथा तिर्यंच आदि का और पर्वत, द्रह, नदी, वेदिका, वर्ष (क्षेत्र), आवास, अकृत्रिम जिनालय आदि का वर्णन करता है।''

वास्तव में इन अंगों में व्यवहारनय की मुख्यता से ही जीवादि तत्त्वों का वर्णन किया गया है। ये अंग साक्षात् भगवान् की वाणीरूप हैं, अतः इन्हें असत्य भी नहीं कह सकते हैं तथा संपूर्ण ऋद्धियों के स्वामी और मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्यय इन चार ज्ञान से समन्वित उसी भव से मोक्ष जाने वाले ऐसे गौतम गणधर ने इन अंग–पूर्वों

की रचना की है। इन द्वादश अंगों में सबसे प्रथम आचारांग है जिसका अत्यधिक महत्त्व है। सबसे प्रथम भगवान् ने मोक्ष मार्ग पर चलने का उपदेश दिया है, न कि श्रावक धर्म का। श्रावक धर्म का उपदेश तो सातवें उपासकाध्ययन नाम के अंग में किया है। अतः इन अंगों के विषय को पढ़कर मोक्षमार्ग में चलने का प्रयत्न हर एक मोक्षाभिलाषी को करना ही चाहिये।

जब इन अंगों का विषय तीर्थंकर देव ने प्रतिपादित किया है, पुनः उसी दिव्यध्वनि को श्री गणधर देवों ने द्रव्य श्रुतरूप से कहा है, तब यहाँ यह सोचना चाहिए कि क्या महावीर तीर्थंकर व गौतम गणधर जनता को प्रपंच में उलझाने वाले हैं ? यदि समयसार के पढ़ने मात्र से ही सम्यग्दर्शन हो जाता अथवा समयसार के ज्ञान से ही आत्मज्ञान होकर मोक्ष सुलभ हो जाता तो इन ग्यारह अंगों के पढ़ने–पढ़ाने का उपदेश भगवान् महावीर ने क्यों दिया ? समयसार सदृश आध्यात्मिक ग्रन्थ ही बता देते और कह देते कि इतने ग्रन्थ के अध्ययन मात्र से ही मोक्ष मिल जायेगा। किन्तु ऐसा नहीं है, तभी तो पूर्व में तीर्थंकर होने वाले महामुनियों ने भी इन अंगों का तथा पूर्वों का अध्ययन किया था। देखिये–

हरिवंश पुराण में लिखा है कि वृषभदेव आदि चौबीस तीर्थंकरों ने तीर्थंकर से पूर्व तीसरे भव में गुरुओं के निकट जिनदीक्षा ली थी। इनमें से वृषभदेव पूर्वभव में चक्रवर्ती थे तथा चौदह पूर्वों के धारक थे और शेष तीर्थंकर महामण्डलेश्वर थे एवं ग्यारह अंग के वेत्ता हुये थे।

इस प्रकरण से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि इन अंग–पूर्वों का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। मात्र समयसार आदि ग्रन्थों के आध्यात्मिक ज्ञान से ही आत्महित होना सरल नहीं है। अतः आज भी उपलब्ध जो श्रुत–शास्त्र हैं जो कि बारहवें दृष्टिवाद अंग के अंशरूप हैं ऐसे धवला आदि ग्रन्थों का तथा उनके साररूप गोम्मटसार–जीवकांड, कर्मकांड, लब्धिसार, क्षपणासार और त्रिलोकसार जैसे ग्रन्थों का अच्छी तरह से अध्ययन करना चाहिये।

बारहवें अंग में मुख्यरूप से 363 पाखंडमतों का स्वरूप बताकर उनका अच्छी तरह से खंडन किया गया है। अतः आजकल जो कुछ लोगों की विचारधारा है कि " अपना ही सिद्धांत प्रतिपादित करते रहो दूसरों का खंडन मत करो" उन्हें भी समझ लेना चाहिये कि जब द्वादशांग जैसे महान् श्रुत भंडार में खंडन करने का विधान है तब क्या बिना खंडन किये स्वमत प्रतिपादन सही तरीके से हो सकता है ?और मंडन इन दोनों बातों को यथोचित महत्त्व देना ही चाहिये। मिथ्या मत के खंडन का खंडन कर देने से तो उसका मंडन ही हो जाता है इसलिये आगम की आज्ञा को गलत कथमपि नहीं कहना चाहिये।

आपने परिकर्म के पाँचों भेदों का रहस्य समझा है। पुनः सूत्र में क्या–क्या वर्णित है ? सो भी हृदयंगम किया है। अनंतर आपने यह भी समझा है कि प्रथमानुयोग भी द्वादशांग का अवयव है, अतः आजकल जो लोग प्रथमानुयोग को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं उन्हें भी अन्य–अन्य अनुयोगों के सदृश ही उसका आदर करते हुये रुचि से उसका स्वाध्याय करना चाहिये क्योंकि पुण्य पुरुषों का चरित्र ही हमें पुण्य पुरुष बनायेगा यह निश्चित है।

इसमें सत्यप्रवाद पूर्व के अन्तर्गत असत्य भाषा एवं सत्य भाषाओं का अच्छी तरह से मनन करना चाहिये और असत्य भाषाओं को छोड़कर सत्य वचनों में प्रवृत्ति करनी चाहिये। सत्य वचन से वाक् सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सर्वत्र विश्वस्तता रहती है और परम्परा से इस सत्य के प्रभाव से ही जीव "दिव्यध्वनि" के स्वामी बन जाते हैं जिसके द्वारा असंख्य जीवों को वे धर्मोपदेश देकर संसार समुद्र से पार कर देते हैं। अतः सत्य वचनों का सदैव आदर करना चाहिये। आत्मप्रवादपूर्व में आत्मा के स्वरूप का वर्णन आया है उसे पढ़कर आत्मा का स्वरूप सर्वांगीण समझकर उस पर श्रद्धान रखना चाहिये। उसी प्रकार कर्मप्रवाद पूर्व आदि के विषय भी भगवान् तीर्थंकर की वाणी हैं। इसमें दसवें विद्यानुवाद पूर्व को पढ़ने के बाद विद्यादेवता आती हैं उस समय कदाचित् कोई साधु उनके प्रलोभन में पड़कर चारित्र से भ्रष्ट हो जाते हैं तो वे 'भिन्नदशपूर्वी' हो जाते हैं तथा जो मुनि सर्वथा उन विद्या देवताओं के प्रलोभन में न आकर उन्हें वापस कर देते हैं वे " अभिन्नदशपूर्वी' हैं। जो 11 अंग 14 पूर्वों के वेत्ता हैं वे "चतुर्दशपूर्वी" कहलाते हैं, आदि के दो

शुक्ल ध्यान इनको ही होते हैं। यथा ''शुक्ले चाद्ये पूर्वविद:।'' यह सूत्रवचन है। इससे द्वादशांग श्रुतज्ञान का महत्त्व स्वयं स्पष्ट हो जाता है।

आजकल जो केवल अध्यात्म की रट लगाये हुये हैं और अन्य करणानुयोग, प्रथमानुयोग आदि की उपेक्षा करते हैं या उन्हें अप्रयोजनीभूत कहते हैं वे वास्तव में एकांती हैं। अनेकांत के रहस्य से काफी दूर हैं। हमें निश्चित विश्वास रखना चाहिये कि तीर्थंकर परमदेव किसी को वंचित करने वाले नहीं थे। यदि मात्र अध्यात्म शास्त्र से ही आत्म हित होता तो वे अवश्य ही स्पष्ट कह देते कि अन्य आगम के पढ़ने से कोई लाभ नहीं है अथवा अन्य आगमों का प्रतिपादन ही वे नहीं करते । किन्तु ऐसी बात नहीं है अत: द्वादशांगमय श्रुतज्ञान हमें कब प्राप्त हो ऐसी भावना भाते हुये श्रुतदेवता की सतत उपासना करनी चाहिये। आज द्वादशांगरूप श्रुतज्ञान दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में उपलब्ध नहीं है। मात्र जो भी ग्रन्थ उपलब्ध हैं वे उसी के अंशभूत हैं। हाँ, षट्खंडागम, कषायपाहुड़ और महाबंध ग्रन्थ में द्वादशांग के किसी अंग–पूर्व का कुछ विशेष अंश माना गया है अत: इन ग्रन्थों को महान् आदर से देखते हुये उन्हें साक्षात् भगवान् की वाणी ही समझना चाहिये। शेष ग्रन्थों को भी भगवान् की वाणी का अंश ही निश्चित करके सतत सर्व जैन ग्रन्थों को प्रमाण मानना चाहिए।

1.3 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-द्वादशांग श्रुतज्ञान क्या है ?

प्रश्न 2-श्रुतज्ञान के कितने भेद हैं ? अंगबाह्य के 12 भेद के नाम बताओ।

प्रश्न 3-दृष्टिवाद अंग के पाँच अधिकार कौन से हैं ?

प्रश्न 4-363 पाखण्ड मत कौन से हैं ?

प्रश्न 5-चूलिका के 5 भेद के नाम बताओ एवं पाँचों चूलिकाओं के पदों का जोड़ कितना है ?

पाठ-2—जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (Brief History of Jain Literature)

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरणगुप्त ने एक कविता में लिखा है–

अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है।
निर्बल है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है।।

अर्थ—किसी भी देश का गौरव वहाँ के साहित्य भण्डार से आंका जाता है यह बात कवि की पंक्तियों से स्पष्ट हो रही है।

हमारा भारत देश सदा-सदा से साहित्य का प्रमुख समृद्ध केन्द्र रहा है। यहाँ के ऋषि-मुनियों ने प्राणीमात्र के हित को दृष्टि में रखते हुए समय-समय पर सारगर्भित एवं सर्वजन सुलभ साहित्य की रचना की है। सत् साहित्य को पढ़ने से ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान को मनीषियों ने सच्चे प्रकाश की उपमा देकर अज्ञानता को महान् अंधकार के रूप में बताया है।

कन्फ्यूशियस ने भी एक जगह लिखा है–

Ignorance is night of the mind, but a night without moon and stars.

अर्थात् "अज्ञानता मन की वह अंधेरी रात है, जिसमें न चाँद हैं न तारे" ऐसी अंधेरी दुनिया में महापुरुषों द्वारा बताई या लिखी गई बातें ही हमारे लिए प्रकाश देने का कार्य करते हैं। उनके द्वारा लिखी गई एक-एक पंक्ति कभी-कभी महान जीवनदायिनी बन जाती है। जैसे कि–

2.1 एक कहानी (A Story)-

एक प्रसिद्ध कवि भारवी की जीवन्त काव्य रचना के विषय में घटना सुनी जाती है कि-बिहार के धनपुर पट्टी नामक गाँव में एक झोपड़ी में रहने वाले भारवी कवि कविता आदि का लेखन किया करते थे। एक दिन उनकी पत्नी बहुत नाराज हुईं और उनसे बोली कि-आपके इस लेखन से हमें क्या लाभ है ? इधर हमारे परिवार में भोजन का ठिकाना नहीं है और आप हैं कि हर समय लिखने में लगे रहते हैं। अरे ! कुछ और काम-धन्धा करो, जिससे परिवार का पालन हो। कवि भारवी पत्नी की बात सुनकर पहले तो कुछ चिन्ता में डूब गए पुनः चिन्तन करके उन्होंने पत्नी को एक ताड़पत्र पर श्लोक लिखकर दिया और उससे कहा-देवि ! तुम बाजार में जाकर इसे बेचकर पैसे ले आओ।

कवि की पत्नी ने बाजार में जाकर उस श्लोक को एक सुनार के हाथों बेच दिया। सुनार ने वे पंक्तियाँ अपने घर में टांग दिया। वे पंक्तियाँ इस प्रकार थीं–

बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हंसाय।।

पुनः एक बार वह सुनार विदेश में धन कमाने चला गया, उसकी पत्नी को उस समय तीन मास का गर्भ था। उसने 9 माह बाद पुत्र को जन्म दिया और उसका लालन-पालन करके बड़ा किया। लगभग 15-16 वर्ष बाद जब सुनार वापस अपने घर लौटा तो अपनी पत्नी के पास पलंग पर एक नौजवान को सोता देखकर क्रोध में आग बबूला हो गया और पत्नी तथा नौजवान को जान से मारने के लिए उसने तलवार निकाल ली, किन्तु तुरन्त उसकी दृष्टि कमरे में टंगे दोहे की पंक्ति पर पड़ी अतः पत्नी को जगाकर उससे पूछा कि यह नौजवान कौन है? कहाँ से आया है ? कब से तेरे पास रहता है ? आदि। पत्नी ने कहा-स्वामी ! यह तो आपका पुत्र है। क्या आपको याद नहीं है कि आप मुझे गर्भवती अवस्था में छोड़कर गये थे ? अब तो देखो, यह बेटा जवानी की ओर बढ़ रहा है। पुत्र ने तुरन्त अपने पिता के चरण स्पर्श किये और परिवार का मिलन हो गया। सुनार को अपने पर बड़ा पश्चाताप हुआ। तब उस सुनार को कवि की अमूल्य पंक्तियों पर

बहुत श्रद्धा हो गई। उसने पत्नी और पुत्र से कहा कि–आज भारवी कवि की इन पंक्तियों ने हमारे परिवार की रक्षा कर दी, अन्यथा गलतफहमी का शिकार बनकर मेरे हाथ से आज आप दोनों की हत्या हो जाती और हमारा परिवार नष्ट–भ्रष्ट हो जाता। अर्थात् भारवी कवि की वे पंक्तियाँ सार्थक होकर जीवन निर्माण के लिए उपयोगी हो गई।

आगे चलकर उस सुनार ने भारतीय लेखकों के साहित्य का खूब प्रचार–प्रसार किया है। साहित्य का यह चमत्कार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को चमत्कृत कर सकता है, इसलिए सत्साहित्य का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। इसे इस तरह भी समझा जा सकता है–

Which can not be seen by the physical eyes, can be seen by the literary eyes.

अर्थात् जो चीज भौतिक आँखे नहीं देख पाती हैं, उसे भी साहित्य की आँखों से देखा जा सकता है।।

2.2 भारतीय साहित्य में जैन साहित्य का योगदान (Contribution of Jain Literature in Indian Literature)–

भारतीय साहित्य में प्राचीनकाल से ही जैन साहित्य का भी बड़ा विशाल योगदान रहा है। हमारे अनेक लोकोपकारी जैनाचार्यों ने अपने जीवन का बहुभाग सर्वजनहितकारक साहित्य की रचना में व्यतीत किया है।

जैनधर्म में बड़े–बड़े प्रकाण्ड जैनाचार्य हो गए हैं जो प्रबल तार्किक, वैयाकरण, कवि और दार्शनिक थे। उन्होंने जैनधर्म के साथ–साथ भारतीय साहित्य के अन्य क्षेत्रों में भी अपनी लेखनी के जौहर दिखलाये हैं। दर्शन, न्याय, व्याकरण, काव्य, नाटक, कथा, शिल्प, मन्त्र–तन्त्र, वास्तु, वैद्यक आदि–आदि अनेक विषयों पर काफी मात्रा में प्राचीन जैन साहित्य आज भी उपलब्ध है, जबकि बहुत सारा साहित्य धार्मिक द्वेष, लापरवाही तथा अज्ञानता के कारण नष्ट हो चुका है।

भारत की अनेक भाषाओं में जैनसाहित्य लिखा हुआ है, जिनमें प्राकृत और संस्कृत भाषा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जैनधर्म ने प्रारम्भ से ही अपने प्रचार के लिए लोक भाषाओं को अपनाया अत: अपने–अपने समय की लोकभाषा में भी जैन साहित्य की रचनाएँ पायी जाती हैं। इसी से जर्मन विद्वान् डाक्टर विंटरनीट्ज ने अपने भारतीय साहित्य के इतिहास में लिखा है–'भारतीय भाषाओं के दृष्टि से भी जैन साहित्य बहुत महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि जैन सदा इस बात की विशेष परवाह रखते थे कि उनका साहित्य अधिक से अधिक जनता के परिचय में आये। इसी से आगमिक साहित्य तथा प्राचीनतम टीकाएँ प्राकृत में लिखी गयीं। दिगम्बरों ने पहले संस्कृत में रचनाएँ करना आरम्भ किया। बाद में 10वीं से 12वीं शती तक अपभ्रंश भाषा में, जो उस समय की जन भाषा थी, रचनाएँ की गयीं और आजकल के जैन बहुत–सी आधुनिक भारतीय भाषाओं का उपयोग करते हैं तथा उन्होंने हिन्दी, गुजराती साहित्य को तथा दक्षिण में तमिल और कन्नड़ साहित्य को विशेष रूप से समृद्ध किया है। (A History of Indian Literature' Ve. II P. 427-428)

आज जो जैन साहित्य उपलब्ध है वह सब भगवान् महावीर की उपदेश परम्पराओं से सम्बद्ध है। भगवान् महावीर के प्रधान गणधर गौतमस्वामी थे। इनका मूल नाम इन्द्रभूति था, ये जाति से ब्राह्मण थे और वेद वेदांग में पारंगत थे। जब केवलज्ञान हो जाने पर भी भगवान् महावीर की वाणी नहीं खिरी तो इन्द्र को चिन्ता हुई। इसका कारण जानकर वह इन्द्रभूति ब्राह्मण विद्वान के पास गया और युक्ति से उन्हें भगवान् महावीर के समवसरण में ले आया। समवसरण में पहुँचते ही इन्द्रभूति ने जैन दीक्षा ले ली और भगवान् के प्रधान गणधर हुए। गणधर के आते ही भगवान की दिव्यध्वनि खिरने लगी। भगवान का उपदेश सुनकर अवधारण करके इन्होंने द्वादशांग श्रुत की रचना की। उन्होंने भगवान् महावीर के उपदेशों को अवधारण करके बारह अंग और चौदह पूर्व के रूप में निबद्ध किया। जो इन अंगों और पूर्वों का पारगामी होता है जैनधर्म में उसे श्रुतकेवली कहा जाता है। जैन परम्परा में ज्ञानियों में दो ही पद सबसे महान गिने जाते हैं–प्रत्यक्ष ज्ञानियों में केवलज्ञानी का और परोक्षज्ञानियों में श्रुतकेवली का। जैसे केवलज्ञानी भगवान समस्त चराचर जगत को प्रत्यक्ष जानते और देखते हैं वैसे ही श्रुतकेवली महामुनि शास्त्र में वर्णित प्रत्येक विषय को स्पष्ट जानते हैं। जब कार्तिक

कृष्णा अमावस्या के प्रातः भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ उसी दिन सायंकाल में गौतम स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। उसके 12 वर्ष पश्चात् गौतम स्वामी को भी निर्वाणपद प्राप्त हुआ।

2.3 दिगम्बर जैन साहित्य (Digambar Jain Literature)-

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् तीन केवलज्ञानी (गौतमगणधर , सुधर्माचार्य और जम्बूस्वामी) हुए और उनके पश्चात् पाँच श्रुतकेवली हुए, जिनमें से अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु थे। इनके समय में मगध में बारह वर्ष का भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। तब ये अपने संघ के साथ दक्षिण की ओर चले गये और फिर लौटकर नहीं आये। अतः दुर्भिक्ष के पश्चात् पाटलीपुत्र में भद्रबाहु स्वामी की अनुपस्थिति में जो अंग साहित्य संकलित किया गया वह एकपक्षीय था। मूल या दूसरे पक्ष ने उसे स्वीकार नहीं किया, क्योंकि दुर्भिक्ष के समय जो साधु मगध में ही रहे थे, सामयिक कठिनाइयों के कारण वे अपने आचार में शिथिल हो गये थे। यहीं से जैन संघ में श्वेताम्बर सम्प्रदाय का जन्म हुआ और जिनधर्म (दिगम्बर) को भी सम्प्रदाय कहा गया और दोनों सम्प्रदायों का साहित्य भी पृथक्-पृथक् हो गया।

श्रुतकेवली भद्रबाहु इस युग के अंतिम श्रुतकेवली माने गये हैं जो सम्पूर्ण द्वादशांग के ज्ञाता थे। उनके पश्चात् ग्यारह अंग और दस पूर्वों के ज्ञाता आचार्य हुए। फिर पाँच आचार्य केवल ग्यारह अंग के ज्ञाता हुए। पूर्वों का ज्ञान एक तरह से नष्ट ही हो गया और छुट-पुट ज्ञान बाकी रह गया। फिर चार आचार्य केवल प्रथम आचारांग के ही ज्ञाता हुए और अंग ज्ञान भी समाप्त हो गया। इस तरह कालक्रम से विच्छिन्न होते-होते वीर निर्वाण से 683 वर्ष बीतने पर जब अंगों और पूर्वों के शेष बचे ज्ञान के भी लुप्त होने का प्रसंग उपस्थित हुआ तब गिरनार पर्वत पर स्थित आचार्य श्री धरसेन मुनिवर ने पुष्पदन्त और भूतबली नाम के दो सर्वोत्तम साधुओं को अपना शिष्य बनाया जिन्होंने षट्खण्डागम नाम के सूत्र ग्रन्थ की रचना प्राकृत भाषा में की।

श्रुतधर-शास्त्रों को लिखने वाले आचार्यों की परम्परा में सर्वप्रथम लेखक आचार्य कौन हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर इतिहासकारों ने बड़े आदर से महान आचार्यश्री गुणधर देव का नाम लिया है। श्रीगुणधर और धरसेन ये दोनों आचार्य श्रुत के प्रतिष्ठापकरूप से प्रसिद्ध हुए हैं फिर भी गुणधरदेव, धरसेनाचार्य की अपेक्षा अधिक ज्ञानी थे और लगभग उनके दो सौ वर्ष पूर्व हो चुके हैं ऐसा विद्वानों का अभिमत है अतएव आचार्य गुणधर को दिगम्बर परम्परा में लिखितरूप से प्राप्त श्रुत का प्रथम श्रुतकार माना जा सकता है। धरसेनाचार्य ने किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की, जब कि गुणधराचार्य ने पेज्जदोसपाहुड ग्रन्थ की रचना की है।

ये गुणधराचार्य किनके शिष्य थे इत्यादि रूप से इनका परिचय यद्यपि आज उपलब्ध नहीं है तो भी उनकी महान कृति से ही उनकी महानता जानी जाती है। यथा-

गुणधरधरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापरक्रमोऽस्माभिः।
न ज्ञायते तदन्वयकथकागममुनिजनाभावात्।।51।।

(इन्द्रनंदिकृतश्रुतावतार)

गुणधर और धरसेन की पूर्वापर गुरु परम्परा हमें ज्ञात नहीं है क्योंकि इसका वृत्तांत न तो हमें किसी आगम में मिला और न किसी मुनि ने ही बतलाया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इन्द्रनंदि आचार्य के समय तक आचार्य गुणधर और धरसेन का गुरु शिष्य परम्परा का अस्तित्व स्मृति के गर्भ में विलीन हो चुका था फिर भी इतना स्पष्ट है कि श्री अर्हद्बलि आचार्य द्वारा स्थापित संघों में ''गुणधर संघ'' का नाम आया है। नंदिसंघ की प्राकृत पट्टावली में अर्हद्बलि का समय वीर नि.सं. 556 अथवा वि. सं. 95 है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गुणधर देव अर्हद्बलि के पूर्ववर्ती हैं पर कितने पूर्ववर्ती हैं, यह निर्णयात्मकरूप से नहीं कहा जा सकता। यदि गुणधर की परम्परा को ख्याति प्राप्त करने में सौ वर्ष का समय मान लिया जाए तो षट्खंडागम के प्रवचनकर्ता धरसेनाचार्य से कसायपाहुड़ के प्रणेता गुणधराचार्य का समय लगभग

दो सौ वर्ष पूर्व सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार आचार्य गुणधर का समय विक्रम पूर्व प्रथम शताब्दी सिद्ध होता है।

श्रीगुणधराचार्य को पाँचवे ज्ञानप्रवाद पूर्व की दशवीं वस्तु के तीसरे पेज्जदोसपाहुड का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त था जबकि षट्खण्डागम आदि ग्रन्थों के प्रणेताओं को उक्त ग्रन्थों की उत्पत्ति के आधारभूत ''महाकम्मपयडिपाहुड'' का आंशिक ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। इस प्रकार से गुणधराचार्य ने ''कसायपाहुड़'' जिसका अपरनाम ''पेज्जदोसपाहुड'' भी है, उसकी रचना की है। 16000 पद प्रमाण कसायपाहुड़ के विषय को संक्षेप से एक सौ अस्सी गाथाओं में ही पूर्ण कर दिया है।

पेज्ज नाम प्रेयस् या राग का है और दोस नाम द्वेष का है। चूँकि क्रोधादि चारों कषायों में माया, लोभ को रागरूप से और क्रोध, मान को द्वेषरूप से, ऐसे ही नव नोकषायों का विभाजन भी राग और द्वेषरूप में किया है अतः प्रस्तुत ग्रन्थ का मूल नाम पेज्जदोसपाहुड है और उत्तर नाम कसायपाहुड है। कषायों की विभिन्न अवस्थाओं का एवं इनसे छूटने का विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है अर्थात् किस कषाय के अभाव से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है, किस कषाय के क्षयोपशम आदि से देशसंयम और सकलसंयम की प्राप्ति होती है, यह बतला करके कषायों की उपशमना और क्षपणा का विधान किया गया है। तात्पर्य यही है कि इस ग्रन्थ में कषायों की विविध जातियां बतला करके उनके दूर करने का मार्ग बतलाया गया है।

इस ग्रन्थ की रचना गाथासूत्रों में की गई है। आचार्य गुणधरदेव स्वयं कहते हैं-''वोच्छामि सुत्तगाहा जपिगाहा जम्मि अत्थम्मि'' जिस अर्थाधिकार में जितनी-जितनी सूत्र गाथायें प्रतिबद्ध हैं, उन्हें मैं कहूँगा। इस ग्रन्थ में कुल 233 गाथायें हैं, जिन्हें ''कसायपाहुड'' सुत्त की प्रस्तावना में पं. हीरालाल जी ने श्रीगुणधराचार्य रचित ही माना है अर्थात् 53 गाथाओं में विवाद होकर भी गुणधराचार्य रचित ही निर्णय मान्य होता है।

''इस प्रकार के उपसंहृत एवं गाथासूत्र निबद्ध द्वादशांग जैन वाङ्मय के भीतर अनुसंधान करने पर यह ज्ञात हुआ है कि कसायपाहुड ही सर्वप्रथम निबद्ध हुआ है। इससे प्राचीन अन्य कोई रचना अभी तक उपलब्ध नहीं है।''

2.4 कषाय प्राभृत (*Kashaya Prabhrit*)-

कषायप्राभृत ग्रंथ आचार्य परम्परा से आर्यमंक्षु और नागहस्ति नाम के आचार्यों को प्राप्त हुआ। उनसे सीखकर यतिवृषभ नामक आचार्य ने उन पर वृत्ति सूत्र रचे, जो प्राकृत में हैं और 6000 श्लोक प्रमाण हैं। यहाँ ध्यान रहे कि 32 अक्षर के एक अनुष्टुप् छंद का 1 श्लोक कहा है सो इस प्रकार से 6000 श्लोक प्रमाण संख्या कही है। अर्थात् 6000×32=192000 अक्षर की टीका है। इन दोनों कसायपाहुड़ और षट्खण्डागम नाम से महान ग्रंथों पर अनेक आचार्यों ने अनेक टीकाएँ रचीं जो आज उपलब्ध नहीं है। इनके अंतिम टीकाकार श्री वीरसेनाचार्य हुए। ये बड़े समर्थ विद्वान् थे। इन्होंने षट्खण्डागम पर अपनी सुप्रसिद्ध टीका धवला शक सं. 738 में (आज से 1196 वर्ष पूर्व) पूरी की। यह टीका 72 हजार श्लोक प्रमाण है तथा कसायपाहुड़ ग्रंथ पर भी इन्होंने टीका लिखी है किन्तु वे उसे बीस हजार श्लोक प्रमाण लिखकर ही स्वर्गवासी हो गये। तब उनके सुयोग्य शिष्य जिनसेनाचार्य ने 40 हजार श्लोक प्रमाण और लिखकर शक संवत् 759 में (आज से 1175 वर्ष पूर्व) उसे पूरा किया। इस टीका का नाम जयधवला है और वह 60 हजार श्लोक प्रमाण है। इन दोनों टीकाओं की रचना संस्कृत और प्राकृत के सम्मिश्रण से की गयी है, जिसका बहुभाग प्राकृत में है। बीच-बीच में संस्कृत भी आ जाती है, जैसा कि टीकाकार ने उसकी प्रशस्ति में लिखा है-

प्रायः प्राकृतभारत्या क्वचित् संस्कृतमिश्रया।
मणिप्रवालन्यायेन प्रोक्तोऽयं ग्रंथविस्तरः।।

षट्खण्डागम का ही अन्तिम खण्ड महाबंध है जिसकी रचना भूतबलि आचार्य ने की थी यह भी प्राकृत में है और इसकी टीका 41 हजार श्लोक प्रमाण है। इन सभी ग्रन्थों में जीवतत्त्व एवं कर्मसिद्धान्त का बहुत सूक्ष्म और गहन वर्णन है।

चिरकाल से ये तीनों महान् ग्रन्थ मूड़विद्री (दक्षिण कर्नाटक) के जैन भण्डार में ताड़पत्र पर सुरक्षित थे चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज की प्रबल प्रेरणा से वहाँ के भट्टारक महोदय तथा पंचों की उदात्त भावना के फलस्वरूप अब इन तीनों का प्रकाशन विद्वानों द्वारा लिखी गई हिन्दी टीका के साथ हो चुका है।

इन्हीं में से षट्खण्डागम की सोलहों पुस्तकों के सम्पूर्ण सूत्रों पर पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने ईसवी सन् 2007 में ''सिद्धान्तचिंतामणि'' नामक सरल संस्कृत टीका लिखकर जैन साहित्य जगत् पर महान् उपकार किया है। ये ग्रंथ प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी द्वारा लिखित हिन्दी टीका से सहित जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र. से प्रकाशित हुए हैं।

2.5 अन्य ग्रन्थ (Other Scriptures)-

ईसा की प्रथम शताब्दी में कुन्दकुन्द नाम के एक महान् आचार्य हुए हैं। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि विदेह क्षेत्र में जाकर सीमंधर स्वामी की दिव्यध्वनि सुनने का सौभाग्य इन्हें प्राप्त हुआ था। इनके नियमसार, रयणसार,पंचास्तिकाय और समयसार नाम के ग्रन्थ अति प्रसिद्ध हैं। इसके सिवाय इन्होंने 84 प्राभृतों की रचना की है जिनमें से अष्टपाहुड़ ग्रंथ में आठ प्राभृत उपलब्ध हैं।

इनके शिष्य उमास्वामी नाम के आचार्य थे, जिन्होंने जैनावाङ्मय को संस्कृत सूत्रों में निबद्ध करके तत्वार्थसूत्र नाम के ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ के दस अध्यायों में जीव आदि सात तत्वों का सुन्दर विवेचन किया गया है। अपने-अपने धर्मों में गीता, कुरान और बाइबिल को जो स्थान प्राप्त है वही स्थान जैनधर्म में तत्त्वार्थ सूत्र ग्रन्थ को प्राप्त है। दिगम्बर और श्वेताम्बर भी इसे समान रूप से मानते हैं। दोनों ही परम्पराओं के आचार्यों ने इसके ऊपर अनेक टीकाएँ रची हैं जिनमें पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि एवं अकलंकदेव का तर्त्वार्थराजवार्तिक और विद्यानन्दि आचार्य का तत्वार्थश्लोकवार्तिक उल्लेखनीय हैं। दोनों ही वार्तिकग्रन्थ संस्कृत में बड़ी ही प्रौढ़ शैली में रचे गये हैं और जैनदर्शन के अपूर्व ग्रन्थ हैं।

दर्शन और न्यायशास्त्र में स्वामी समन्तभद्र और सिद्धसेन की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। स्वामी समन्तभद्र ने आप्तमीमांसा नाम का एक ग्रन्थ रचा है, जिसमें स्याद्वाद का सुन्दर विवेचन करते हुए इतर दर्शनों की विचारपूर्ण समीक्षा की गयी है। इस आप्त-मीमाँसा पर स्वामी अकलंकदेव ने **'अष्टशती'** नामक ग्रंथ रचा है और अष्टशती को मिला-मिलाकर स्वामी विद्यानन्द आचार्य ने आप्तमीमांसा की कारिकाओ पर अष्टसहस्री नाम की टीका रची है। अष्टसहस्री इतनी गहन है कि इसको समझने में इतने कष्ट का अनुभव होता है कि आचार्यदेव ने स्वयं इसे कष्ट सहस्री कहा है। इस अत्यन्त कठिन ग्रन्थ का सन् 1969-70 में पू. गणिनी प्रमुख आर्यिका शिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने सरल हिन्दी में अनुवाद करके विद्वत् जगत के मस्तक को गौरवान्वित किया है।

2.6 पुराण साहित्य (*Puran* Literature)-

पुराण साहित्य में महापुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण आदि ग्रन्थों का नाम उल्लेखनीय है। जैन पुराणों का मूल प्रतिपाद्य विषय 63 शलाका-पुरुषों के चरित्र हैं। इनमें 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव (नारायण) और 9 प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण) हैं। जिनमें पुराण पुरुषों का पुण्यचरित्र वर्णन किया गया हो उसे पुराण कहते हैं। हरिवंशपुराण में बाइसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ और नवमें नारायण श्रीकृष्ण का वर्णन करते हुए कौरव और पाण्डवों का वर्णन है और पद्मपुराण में आठवे बलभद्र श्रीरामचन्द्र एवं नारायण लक्ष्मण का वर्णन है। इस तरह से ये दोनों ग्रन्थ क्रमशः जैन महाभारत और जैन रामायण कहे जाते हैं। इनके सिवा चरित ग्रन्थों का तो जैन साहित्य में भण्डार भरा है। सकलकीर्ति आदि आचार्यों ने अनेक चरित ग्रन्थ रचे हैं। आचार्य जटासिंहनन्दि का वरांगचरित एक सुन्दर पौराणिक काव्य है। काव्यसाहित्य भी कम नहीं हैं। वीरनन्दि का चन्द्रप्रभचरित, हरिचन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय, धनंजय कवि का

द्विसन्धान और वाग्भट्ट का नेमिनिर्वाण काव्य उच्चकोटि के संस्कृत महाकाव्य हैं।

अपभ्रंश भाषा में तो इन पुराण और चरित ग्रन्थों का संस्कृत की अपेक्षा भी बाहुल्य है। अपभ्रंश भाषा में भी जैन कवियों ने खूब रचनाएँ की है।

2.7 जैनधर्म का कथा साहित्य (Story Literature of Jain Religion)-

जैनधर्म का कथा साहित्य भी विशाल है। आचार्य हरिषेण का कथाकोश बहुत प्राचीन (ई. स. 932) है। आराधना कथाकोश, पुण्याश्रव कथाकोश आदि अन्य भी बहुत से कथाकोश हैं जिनमें कथाओं के द्वारा धर्माचरण का शुभ फल और अधर्माचरण का अशुभ फल दिखलाया गया है। चम्पू काव्य भी जैन-साहित्य में बहुत हैं। सोमदेव का यशस्तिलक- चम्पू, हरिचन्द्र का जीवन्धरचम्पू और अर्हद्दास का पुरुदेवचम्पू उत्कृष्ट चम्पू काव्य हैं। गद्य ग्रन्थों में वादीभिसिंह की गद्यचिन्तामणि उल्लेखनीय है। नाटकों में हस्तिमल्ल के विक्रान्त कौरव, मैथिलीकल्याण, अंजनापवनंजय आदि दर्शनीय हैं। स्तोत्र साहित्य भी कम नहीं है। आचार्य श्रीमानतुंग का भक्तामर स्तोत्र, महाकवि धनंजय का विषापहार, श्री कुमुदचन्द्र का कल्याणमन्दिर आदि स्तोत्र साहित्य की दृष्टि से भी उत्कृष्ट हैं। स्वामी समन्तभद्र ने स्वयंभू स्तोत्र में तो जैनदर्शन के उच्चकोटि के सिद्धान्तों को कूट-कूट कर भर दिया है। वह एक दार्शनिक स्तवन है। नीति ग्रन्थों की भी कमी नहीं है। वादीभिसिंह का छत्रचूड़ामणि काव्य एक नीतिपूर्ण काव्य ग्रन्थ है। आचार्य अमितगति का सुभाषितरत्नसंदोह, पद्मनन्दि आचार्य की पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका और महाराजअमोघवर्ष की प्रश्नोत्तर रत्नमाला भी सुन्दर नीतिग्रन्थ हैं।

2.8 अन्य साहित्य (Other Literature)-

इसके सिवा ज्योतिष, आयुर्वेद, व्याकरण, कोश, छन्द, अलंकार, गणित और राजनीति आदि विषयों पर भी जैनाचार्यों की अनेक रचनाएँ आज उपलब्ध हैं। ज्योतिष साहित्य में केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि और आयुर्वेद में उग्रादित्य आचार्य का कल्याणकारक ग्रन्थ आया है। व्याकरण में पूज्यपाद देवनन्दि का जैनेन्द्र व्याकरण और शाकटायन का शाकटायन व्याकरण उल्लेखनीय है। कोष में धनंजय नाममाला और विश्वलोचन कोश, अलंकार में अलंकार चिन्तामणि, गणित में महावीर गणितसार संग्रह और राजनीति में सोमदेव का नीतिवाक्यामृत आदि स्मरणीय हैं।

यहाँ यह बतला देना अनुचित न होगा कि दक्षिण और कर्नाटक का जितना जैन साहित्य है वह सब ही दिगम्बर जैन विद्वानों की रचना है। तथा जिनधर्म के जितने प्रधान-प्रधान आचार्य हैं वे प्रायः सब ही कर्नाटक देश के निवासी थे और वे न केवल संस्कृत और प्राकृत के ही ग्रन्थकर्ता थे, किन्तु कनड़ भाषा के भी प्रसिद्ध ग्रन्थकार थे।

तमिल भाषा का साहित्य भी प्रारम्भ काल से ही जैनधर्म और जैनसंस्कृति से प्रभावित है। 'कुरल' और 'नालदियार' नाम के दो महान् ग्रन्थ उन जैनाचार्यों की कृति हैं जो तमिल देश में बस गये थे।

गुजराती भाषा में भी दिगम्बर जैनकवियों ने अनेक रचनाएँ की हैं, जिनका विवरण 'जैनगुर्जर कवियों' से प्राप्त होता है।

दिगम्बर जैन साहित्य में हिन्दी ग्रन्थों की संख्या भी बहुत है। इधर लगभग 400 वर्षों में अधिकांश ग्रन्थ हिन्दी में रचे गये हैं। जैन श्रावक के लिए प्रतिदिन स्वाध्याय करना आवश्यक है। अतः जन-साधारण की भाषा में जिनवाणी को निबद्ध करने की प्रक्रिया प्रारम्भ से ही होती आयी है। इसी से हिन्दी जैन साहित्य में गद्यग्रन्थ बहुतायत से पाए जाते हैं। लगभग सोलहवीं शताब्दी से लेकर हिन्दी गद्य ग्रन्थ जैन साहित्य में उपलब्ध हैं और इसलिए हिन्दी भाषा के क्रमिक विकास का अध्ययन करने वालों के लिए वे बड़े काम के हैं।

2.9 पद्य साहित्य (Poetic Literature)-

पद्यसाहित्य में पं. दौलतरामजी का छहढाला जैन-सिद्धान्त का अमूल्य रत्न है। पं. टोडरमलजी, पं. दौलतरामजी, पं. सदासुख, पं. बुधजन, पं. द्यानतराय, भैया भगवतीदास, पं. जयचन्द आदि अनेक विद्वानों ने अपने समय की ढुंढारी हिन्दी भाषा में गद्य अथवा पद्य अथवा दोनों में अपनी रचनाएँ की है। विनती, पूजापाठ, धार्मिक भजन आदि भी पर्याप्त हैं। पद्य साहित्य में भी अनेक पुराण और चरित रचे गये हैं।

हिन्दी जैन साहित्य की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें शान्तरस और वैराग्यरस की सरिता ही सर्वत्र प्रवाहित दृष्टिगोचर होती है। संस्कृत और प्राकृत के जैन ग्रन्थकारों के समान हिन्दी जैन ग्रन्थकारों का भी एक ही लक्ष्य रहा है कि मनुष्य किसी तरह सांसारिक विषयों के द्वन्द्व से निकलकर अपने को पहचाने और अपने उत्थान का प्रयत्न करे। इसी लक्ष्य को रखकर सबने अपनी-अपनी रचनाएँ की हैं।

यह तो हुआ भगवान महावीर के शासन में लगभग दो हजार वर्षों के मध्य हुए आचार्य, विद्वान् कवि, आदि लेखकों में कतिपय साहित्य रचनाकारों के कृतित्व का संक्षिप्त परिचय। पुनश्च इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए बीसवीं-इक्कीसवीं सदी भी जैन साहित्य से अत्यन्त समृद्ध हुई है।

2.10 जैन साहित्य के निर्माण में अर्वाचीन आचार्यों का योगदान (Contribution of Recent Acharyas for Jain Literature)-

उनमें बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागर महाराज के विद्वान् शिष्य आचार्य श्री सुधर्मसागर महाराज, आचार्य श्री कुंथुसागर महाराज द्वारा सुधर्म श्रावकाचार, चौबीस तीर्थंकर स्तुति आदि प्रौढ़ ग्रंथ रचे गये हैं।आचार्य श्रीपायसागर जी के शिष्य भारत गौरव आचार्य श्री देशभूषण महाराज ने धर्मामृत, णमोकार आदि ग्रंथ लिखे हैं। आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज ने संस्कृत काव्य साहित्य एवं हिन्दी टीकानुवाद आदि कार्य किये हैं। इसी प्रकार अन्य आचार्य-मुनिराज आदिकों की भी कतिपय साहित्यिक रचनाएँ संस्कृत-हिन्दी-प्राकृत में गद्य-पद्य दोनों तरह की प्राप्त होती हैं।

वर्तमान समय में भी आचार्य-उपाध्याय-मुनि-आर्यिका आदि अपनी रत्नत्रय साधना के साथ ज्ञानाराधना के क्षेत्र में वृहत् मात्रा में साहित्य लेखन करते देखे जा रहे हैं। इनमें कुछ अत्याधुनिक जनभाषा में जिनधर्म प्रभावना का साहित्य लिखते हैं तो कुछ प्राचीन आचार्य परम्परा का निर्वाह करते हुए प्रौढ़ भाषा में जनहितकारी स्वाध्याय के ग्रंथ लिखकर प्रदान करते हैं। आचार्य श्री विद्यानंदिजी, आचार्य श्री विद्यासागर जी, आचार्य श्री कनकनंदी जी, आचार्य श्री पुष्पदंत सागर जी, आचार्य श्री विरागसागर जी आदि कतिपय विशिष्ट आचार्यों की साहित्यिक कृतियाँ भी वर्तमान की उपलब्धि हैं तथा अनेकानेक उपाध्याय-मुनिराजों के भी लेखन समाज में प्रचलित हैं।

2.11 जैन साध्वियों का साहित्य निर्माण में योगदान (Contribution of Jain Female Saints for Jain Literature)-

इसी शृँखला में दिगम्बर जैन साध्वियों द्वारा साहित्य लेखन का शुभारम्भ किया पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने। इन्होंने समयसार आदि अनेकानेक संस्कृत ग्रंथों की हिन्दी टीकाएँ लिखीं, जैनभारती आदि मौलिक ग्रंथ लिखे, पूजा-विधानों में इन्द्रध्वज और कल्पद्रुम जैसे विधानों ने तो सम्पूर्ण जैन समाज में चमत्कार फैला दिया है। बालक-युवा, नारी-प्रौढ़-विद्वान् सभी के हित को ध्यान में रखकर 400 से अधिक शास्त्र लिखे तथा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक सूत्रग्रन्थ षट्खण्डागम के 16 ग्रन्थों की ''सिद्धान्तचिंतामणि'' नाम की संस्कृत टीका 3200 पृष्ठों में लिखकर कीर्तिमान स्थापित कर दिया है।

उनका अनुसरण करती हुई अन्य अनेक साध्वियों ने भी ग्रंथ लेखन किये हैं जिनमें आर्यिका श्री जिनमती माताजी, आर्यिका श्री आदिमती माताजी (पू. ज्ञानमती माताजी की शिष्याएँ), गणिनी आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी,आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी आदि के नाम प्रमुख हैं। मुझे (आर्यिका चन्दनामती माताजी) को भी पूज्य माताजी की प्रेरणा से षट्खण्डागम की हिन्दी टीका करने का सौभाग्य मिला तथा कतिपय छोटे–बड़े साहित्य गुरुकृपा से मेरे द्वारा सृजित हुए हैं।

2.12 जैन साहित्य के निर्माण में विद्वानों का योगदान (Contribution of Scholars for Jain Literature)-

जैन समाज का विद्वतवर्ग तो अपनी लेखनी सदा–सर्वदा की भाँति आज भी चला ही रहा है। प्राचीन विद्वानों में पं. लालाराम जी शास्त्री मुरैना (महापुराण के अनुवादक), पं. खूबचन्द शास्त्री, पं. सुमेरचन्द्र दिवाकर, पं. इन्द्रलाल शास्त्री, पं. मोतीचंदजी कोठारी, पं. कैलाशचन्द सिद्धान्ताचार्य, पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, पं. लालबहादुर शास्त्री, पं. बाबूलाल जमादार, पं. फूलचन्द सिद्धांतशास्त्री, पं. हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, पं. ए. एन. उपाध्ये, पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जिन्होंने साहित्य की अपूर्व सेवा की है।

2.13 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1–भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर कौन हुए और उन्हें मोक्ष कब प्राप्त हुआ ?

प्रश्न 2–कसायपाहुड़ ग्रंथ के प्रणेता आचार्य का नाम और उनका समय क्या था?

प्रश्न 3–श्री कुंदकुदस्वामी द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रंथों के नाम बतायें ?

प्रश्न 4–तिरेसठ शलाका पुरुष कौन हैं ? इनका वर्णन कहाँ आता है ?

प्रश्न 5–दिगम्बर जैन साध्वियों में साहित्य लेखन का शुभारंभ किनने किया और कितने ग्रंथ लिखे हैं ? 2

इकाई–5 जैन संस्कृति (Jain Culture)

इस इकाई में मुख्यरूप से निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया है—

(1) जैन संस्कृति की विशेषताएँ

(2) जैन कला और पुरातत्व

(3) जैन पर्व

(4) प्रमुख जैन तीर्थक्षेत्र

(5) विदेशों में जैनधर्म

पाठ-1–जैन संस्कृति की विशेषताएँ (Characteristics of Jain Culture)

1.1 संस्कृति का अर्थ (Meaning of Culture)—

'संस्कृति' में सम् और कृति–इन दो शब्दों का योग है। शब्द–व्युत्पत्ति के आधार पर 'सम् उपसर्ग' के साथ 'कृ' धातु में, 'क्तिन' प्रत्यय लगने से 'संस्कृति' शब्द बना है, जिसका अर्थ है–'सम्यक् कृति या चेष्टा।' जो जीवन में सम्यक् आचार–विचार से सम्बद्ध है, जहाँ ज्ञान और क्रिया का समन्वय है। अंग्रेजी का 'Culture' शब्द इसी का पर्यायवाची है। विशेष अर्थों में संस्कृति मनुष्य का मस्तिष्क है तो धर्म हृदय। संस्कृति का कार्य है मनुष्य में पुरुषार्थ, बल और सामर्थ्य संचित करना और धर्म का कार्य है मनुष्य के जीवन को शीलवान, सदाचारी और निर्मल बनाना। मस्तिष्क के विकारों से मुक्ति हृदय दिलाता है। इस दृष्टि से सुसंस्कारों के निर्माण में धर्म का योगदान सिद्ध होता है। जातीय संस्कार ही संस्कृति है। संस्कृति एक समूहवाचक शब्द है जो सामाजिक व्यवहारों को निश्चित करती है, जब किसी देश या जाति की संस्कृति पर विचार किया जाता है, तब प्रायः उसकी धार्मिक परम्परा, सामाजिक व्यवस्था, रीति–रिवाज, कला–कौशल, भाषा–साहित्य, व्यापार–वाणिज्य आदि की प्रगति देखी जाती है। संस्कृति किसी देश या जाति की आत्मा होती है।

संस्कृति शब्द का संबंध संस्कार से है, जिसका अर्थ है—संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना। संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं, जाति के भी। जातीय संस्कार को ही संस्कृति कहते हैं। जो संस्कार निरन्तर अभ्यास द्वारा विकसित किये जायें, वह संस्कृति है। संस्कृति आदर्श जीवन जीने की एक कला है। एक विद्वान् के मत में, संस्कृति के स्वरूप की जिज्ञासा वास्तव में अर्थ तथा मूल्य के स्वरूप की जिज्ञासा है। संस्कृति हमारी जीवन विधा में प्रतिदिन के परस्पर आदान–प्रदान में, कला, साहित्य, धर्म, विज्ञान तथा मनोरंजन की विशिष्ट विधाओं में व्यक्त हमारी प्रकृति ही है। संस्कृति के संबंध में एक विषय पर सभी विद्वानों में मतैक्य है। सभी विचारक यह मानते हैं कि मानवेतर प्राणियों में संस्कृति नहीं होती। संस्कृति मानव की अपनी विशिष्टता है। मानव के पास अपनी संस्कृति को व्यक्त करने के साधन हैं, जो मानवेतर प्राणियों के पास नहीं हैं।

1.2 संस्कृति और सभ्यता (Culture and Civilization)—

संस्कृति और सभ्यता दो अलग–अलग विषय हैं। संस्कृति मनुष्य की उन क्रियाओं, व्यापारों और विचारों का नाम है, जिन्हें वह साध्य के रूप में देखता है। संस्कृति का संबंध चिंतन, मनन तथा आचरण की उदात्तता से है। आध्यात्मिक स्तर विकसित होने पर ही मनुष्य संस्कृति के परिवेश में प्रविष्ट होता है। सभ्यता से तात्पर्य मनुष्य के भौतिक उपकरण, साधन, आविष्कार, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थान तथा उपयोगी सभाओं से है। किसी समाज या राष्ट्र की आन्तरिक प्रकृति की पहचान उसकी संस्कृति से होती है, सभ्यता से उस समाज या राष्ट्र–को प्राप्त, बाह्य उपकरणों से जानी–पहचानी जाती है। संस्कृति का लक्ष्य मानव जाति के लिए शाश्वत मूल्यों की खोज है। वहाँ सभ्यता का ध्येय मानव समाज के लिए भौतिक सुख–सुविधा के साधन जुटाने से है।

जैन संस्कृति (Jain Culture)—'जिन' भगवान का धर्म जैन कहलाता है। जैनधर्म के वे विचार जो आत्मशुद्धि में निमित्त बनते हैं, जैन संस्कृति कहलाते हैं। जैनधर्म अनादि है, अतः प्रवाह की दृष्टि से जैन संस्कृति भी अनादि है। उसके प्रथम-प्रवर्तक कौन थे ? यह ज्ञात करना इतिहास की सीमा के बाहर है। जैन संस्कृति का प्रमुख लक्ष्य व्यक्ति और समाज को अहिंसक, शांतिप्रिय, निर्भीक, प्रीतिपूर्ण, सौहार्दपूर्ण, सृजनोन्मुख जीवनशैली प्रदान करना है। त्याग, तप, संयम, बलिदान, सेवा, समर्पण, विसर्जन, करुणा, मैत्री आदि-आदि जैन संस्कृति की मौलिक विशेषताएँ हैं।

जैन संस्कृति के दो रूप (Two forms of Jain Culture)—जैन संस्कृति के दो रूप हैं। एक बाह्य और दूसरा आभ्यन्तर। बाह्य रूप वह है जिसे उस संस्कृति के अलावा दूसरे लोग भी आँख, कान आदि बाह्य इन्द्रियों से जान सकते हैं। जैसे—शास्त्र, उसकी भाषा, मंदिर, उसका स्थापत्य, समाज के खान-पान के नियम, उत्सव, त्योहार आदि जैन संस्कृति के बाह्य स्वरूप हैं। आभ्यन्तर संस्कृति के अन्तर्गत उन तत्त्वों का समावेश होता है, जो आत्मोपलब्धि में सहायक होते हैं। अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त, संयम, व्रत, नैतिक आदर्श आदि जैन संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

वर्तमान में जितने भी धर्म दुनिया में हैं, उन्हें तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. पहला वह है, जो केवल वर्तमान जन्म का ही विचार करता है।
2. दूसरा वह है, जो वर्तमान जन्म के अलावा जन्मान्तर (अगले जन्मों) पर भी विचार करता है।
3. तीसरा वह है, जो जन्म-जन्मान्तर के बाद उसके नाश या उच्छेद का भी विचार करता है।

जैन धर्म तीसरी विचारधारा का समर्थक है। जन्म-जन्मान्तर का उच्छेद करने के लिए ही उसने 'निवृत्ति धर्म' पर ज्यादा बल दिया है।

1.3 जैन संस्कृति की विशेषताएँ (Characteristics of Jain Culture)—

जैन संस्कृति का विश्व की संस्कृतियों में एक महत्वपूर्ण स्थान है। मानव-जीवन का परम लक्ष्य है—मोक्ष की प्राप्ति। उस लक्ष्य की प्राप्ति में जैन संस्कृति बहुत सहायक सिद्ध होती है। मानवोचित श्रेष्ठ संस्कारों को स्थापित करने वाली जैन संस्कृति को श्रमण संस्कृति कहना सार्थक और उपयुक्त है।

जैन संस्कृति के व्यापक तथा शाश्वत प्रभाव को लेकर भारतीय संस्कृति अपनी विजय यात्रा कर रही है। इसके तत्त्व इतने पुष्ट हैं कि वह विशाल जीवन यात्रा में कभी पथभ्रष्ट नहीं हुई। इसकी प्राचीनता विश्वप्रसिद्ध है। "सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा" इसी संस्कृति के लिए कहा जाता है। गौरवपूर्ण तत्त्वों से अभिमण्डित होने के कारण जैन वाङ्मय में आगम, पुराण, व्याकरण, गणित, ज्योतिष, न्याय, विज्ञान, धर्म, दर्शन आदि का पूर्ण निदर्शन हुआ है। इस प्रकार जैन संस्कृति जहां प्राचीन संस्कृतियों में अन्यतम है वहीं समग्र संस्कृति भी है।

श्रमण संस्कृति का तात्पर्य श्रमण शब्द की व्याख्या से ही स्पष्ट हो जाता है। प्राकृत भाषा में श्रमण के लिए 'समण' शब्द का प्रयोग होता है। समण शब्द के संस्कृत में तीन रूपान्तरण होते हैं—1. श्रमण, 2. समन और 3. शमन।

1. श्रमण शब्द श्रम् धातु से बना है, जिसका अर्थ है—परिश्रम या प्रयत्न करना अर्थात् जो व्यक्ति अपने आत्म-विकास के लिए परिश्रम करता है, वह श्रमण है।

2. समन शब्द के मूल में सम् है, जिसका अर्थ है—समत्वभाव। समता जैन आचारशास्त्र का मूल तत्त्व है, जो व्यक्ति सभी प्राणियों को अपने समान समझता है और अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में समभाव रखता है, वह समन कहलाता है।

3. शमन शब्द का अर्थ है—अपनी वृत्तियों को शांत रखना अथवा इन्द्रिय और मन पर संयम रखना। जो व्यक्ति अपनी वृत्तियों को संयमित रखता है, वह शमन है।

इस प्रकार श्रम—परिश्रम, सम—समता और शम—कषायों का उपशमन-ये जैन संस्कृति की विशेषताएँ हैं।

जैन संस्कृति का मूल आधार आचार में अहिंसा और अपरिग्रह तथा विचार में अनेकांत है। अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त- ये तीन जैन संस्कृति की ऐसी विशेषताएँ हैं, जो वर्तमान में व्याप्त हिंसा, संग्रह की मनोवृत्ति और अपने मत

का दुराग्रहरूप जो समस्याएँ हैं, उनका समाधान भी करती हैं।

1.4 अहिंसा (Non-Violence)—

अहिंसा जैन संस्कृति का प्राण है। मन, वचन और शरीर से किसी भी जीव का घात न करना अहिंसा है। प्रायः समस्त धर्मों की शिक्षाएँ वर्जनात्मक होती है। अहिंसा भी ऐसा ही एक निषेधात्मक शब्द है, किन्तु जैन-अहिंसा निषेध के द्वारा अकर्मण्यता को प्रोत्साहित नहीं करती। उसका क्रियात्मक रूप भी है। वह है-

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।

सब प्राणियों के प्रति मैत्री, गुणीजनों के प्रति प्रमोदभाव (गुणानुराग), दुःखी जीवों के प्रति दयाभाव और विपरीत आचरण या विचार वालों के प्रति माध्यस्थ भाव हो, यही अहिंसक हृदय भावना करता है। अहिंसक व्यक्ति सब जीवों को आत्मवत् (अपनी आत्मा के समान) समझता है। उसकी दृष्टि में जैसे मैं जीना चाहता हूँ, वैसे ही सारे प्राणी जीना चाहते हैं। कोई भी मरना नहीं चाहता। इसलिए वह किसी भी प्रकार की हिंसा में प्रवृत्त नहीं होता।

अपरिग्रह (Non-Possession)-अपरिग्रह का उपदेश जैन संस्कृति की विरल विशेषता है। तीर्थंकरों ने अर्थ के संग्रह को अनर्थ का मूल बताया। धार्मिक प्रगति में अर्थ को बाधक बताते हुए मुनिचर्या में उसका सर्वथा त्याग अनिवार्य बताया और श्रावक धर्म में उस पर नियंत्रण करना आवश्यक बतलाया।

जैन संस्कृति में मूर्च्छा को परिग्रह कहा गया है। वस्तु के प्रति हमारी जो आसक्ति है, वही परिग्रह है। जो व्यक्ति जितना अनासक्त जीवन जीता है, वह उतना ही अपरिग्रही जीवन जीता है और अध्यात्म की ओर प्रगति करता है।

अनेकांत (Non-absolutism)-अनेकान्त दृष्टि भी जैन संस्कृति की अत्यन्त उपयोगी देन है। इस दृष्टि के अनुसार कोई भी विचार या मतवाद एकान्ततः सही या गलत नहीं होता। वस्तु एक दृष्टिकोण से जैसी दिखाई देती है, दूसरे दृष्टिकोण से वैसी दिखाई नहीं देती। सत्य के अनेक पहलू होते हैं। किसी एक पहलू को देखते हुए उसके अन्य पहलुओं का भी ध्यान रखना अनेकान्त दृष्टि है। यही समन्वय दृष्टि है।

अनेकान्त हमें सिखाता है कि अपने आग्रह को सत्य मानने के साथ-साथ अन्य जनों के आग्रह में भी सत्य को स्वीकार करना चाहिए। किसी एक दृष्टिकोण से हमारी धारणा यदि सत्य है तो किन्हीं अन्य दृष्टिकोणों से अन्य जनों की धारणा भी सत्य होगी और इन सभी विरोधी धारणाओं के समन्वय से ही पूर्ण सत्य का कोई स्वरूप प्रकट हो सकेगा। यह समन्वयशीलता की प्रवृत्ति जैन संस्कृति की ऐसी विशेषता है, जिसमें पारस्परिक विरोध और संघर्ष की स्थिति को समाप्त कर देने की अचूक शक्ति है।

1.5 व्रत (Vows)—

जैन संस्कृति व्रात्यों की संस्कृति है। व्रात्य शब्द का मूल व्रत है। व्रत का अर्थ है-संयम और संवर। व्रत आत्मा की सन्निधि और बाह्य जगत् से अनासक्ति का सूचक है। जैन संस्कृति में साधु और श्रावक के लिए अलग-अलग व्रतों का विधान किया गया है। साधु के व्रत महाव्रत और श्रावक के व्रत अणुव्रत कहलाते हैं। व्रत का उपजीवी तत्त्व तप है। जैन परम्परा में तप को अहिंसा, समन्वय, मैत्री और क्षमा के रूप में मान्य किया गया है। व्रत या तप की आराधना के पीछे मूल लक्ष्य आत्मशुद्धि और कर्ममुक्ति का ही रहता है।

संयम (Self-restraint)-जैन संस्कृति की बहुमूल्य देन संयम है। संयम ही जीवन है। दुःख और सुख को ही जीवन का ह्रास और विकास मत समझो। संयम जीवन का विकास है और असंयम ह्रास है। असंयमी थोड़ों को व्यवहारिक लाभ पहुँचा सकता है, किन्तु वह छलना, क्रूरता और शोषण को नहीं त्याग सकता। हो सकता है संयमी थोड़ों का भी व्यवहारिक हित नहीं साध सके पर वह सबके प्रति निश्छल, दयालु और शोषणमुक्त रहता है। मनुष्य-जीवन उच्च संस्कारी बने, इसके लिए क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि उच्च वृत्तियाँ चाहिए। इन सबकी प्राप्ति का मूल आधार संयम है। 'एक ही साधै सब सधै' एक संयम की साधना हो जाये, तो सब अपने आप सध जाते हैं। षड्जीवकाय

का संयम आत्मशुद्धि का मार्ग तो है ही, वही पर्यावरण प्रदूषण जैसी अनेक समस्याओं का भी समाधान है।

1.6 नैतिक आदर्श (Moral Ideals)—

जैन संस्कृति के नैतिक आदर्श जैनधर्म की विशुद्ध आचार-प्रक्रिया पर आधारित हैं। आचार की शुद्धि के लिए साधु एवं गृहस्थ—दोनों के लिए कुछ नित्य कृत्यों का विधान है। सामायिक द्वारा व्यक्ति समभाव की साधना करता है। तीर्थंकरों के स्तवन से अपने भावों को पवित्र रखता है। वन्दना से विनय अर्जित करता है। प्रतिक्रमण के द्वारा प्रमादवश हुई भूलों का पश्चात्ताप एवं प्रमार्जन करता है। कायोत्सर्ग द्वारा शरीर के प्रति ममत्व को कम करता है तथा प्रत्याख्यान के द्वारा अपनी समस्त इच्छाओं के निरोध का प्रयास करता है। इस तरह का दैनिक अभ्यास एक दिन व्यक्ति को साधना की उस भूमि पर ला खड़ा करता है, जहाँ नैतिकता के सारे आदर्श पूरे हो जाते हैं। जैन संस्कृति की इस आचार-प्रक्रिया को यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना ले तो अनैतिकता की समस्या समाप्त हो सकती है।

कर्मवाद (The Theory of karma)—कर्मवाद का सिद्धान्त जैन संस्कृति का महत्वपूर्ण अवदान है। जैन दर्शन में कहा गया है कि किये गये कर्मों का फल भोगे बिना मोक्ष नहीं हो सकता। व्यक्ति जैसा कर्म करता है, उसे उसका वैसा फल भोगना पड़ता है। कर्मों का फल किसी ईश्वर के द्वारा नहीं मिलता अपितु समय आने पर पूर्वबद्ध कर्मों का प्रतिफल स्वयं मिल जाता है। कर्म सिद्धान्त हमें यह बताता है कि अपने भाग्य के निर्माता हम स्वयं हैं। हमारा आज का पुरुषार्थ ही, कल हमारा भाग्य बन जाता है अतः सदैव सही दिशा में पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। इस प्रकार कर्मवाद के सिद्धान्त ने व्यक्ति स्वातन्त्र्य का जो आदर्श उपस्थित किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

आचार-विचार के साथ-साथ साहित्य, कला, पर्व, व्रत आदि भी संस्कृति के महत्वपूर्ण पक्ष हैं। इनके आधार पर ही उनकी संस्कृति को सही तरीके से जाना जा सकता है।

पुनर्जन्मवाद (The Theory of Rebirth)—पुनर्जन्म विश्वव्यापक तथा भारतीय चिन्तकों की प्रमुख विशेषता है। समस्त प्राणियों को स्वोपार्जित कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। उसे भोगने के लिए कर्मसंयुक्त जीव पूर्ववर्ती स्थूल शरीर को छोड़कर नवीन शरीर धारण करता है। इस प्रकार पूर्व को छोड़कर उत्तरवर्ती शरीर धारण करना पुनर्जन्म कहलाता है।

राष्ट्रीय एकात्मकता और सर्वोदय की भावना (National Unity and Feeling of Upliftment of All)—साध्वाचार में वर्ण, जाति, रूप और समाज के विभाजन को कभी महत्त्व नहीं दिया है। आज के ईर्ष्या, द्वेष के विष से दग्ध संसार को कल्याण की भावना से ओतप्रोत इस उपदेशामृत को आत्मसात् करने की महती आवश्यकता है। संसार में उदात्त भावना का सम्प्रेषण करने वाला जैनधर्म प्रागैतिहासिक काल से प्रवाहमान है।

आचार में अहिंसा, विचारों में अनेकांत, वाणी में स्याद्वाद और समाज में अपरिग्रहवाद इन चार मणिस्तंभों पर जैन साध्वाचार का सर्वोदयी प्रासाद अवस्थित है।

1.7 स्याद्वाद और अनेकांत (*Syadvad* and Non-absolutism)—

वर्तमान युग वैज्ञानिक व बौद्धिक उन्नति का युग है। इस युग में प्रत्येक बात तर्क की कसौटी पर कसी जाती है। विज्ञान के चक्षु से देखी जाती है। इसी प्रकार अनेकांत एवं स्याद्वाद भी वैज्ञानिक व तार्किक दृष्टि से खरे उतरते हैं।

जैन साधकों की आचार साधना का सुचिन्तित परिणाम स्याद्वाद है। प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मात्मक है। अनेकान्तात्मक वस्तु तत्त्व को स्याद्वाद के माध्यम से समझा जा सकता है। समन्वयवाद एवं विचारसहिष्णुता के द्वारा विश्व के समस्त दर्शनों को आत्मसात् करके अनेकांत की प्रतिष्ठापना करता है।

वर्तमान में जैन संतों की समन्वयकारी व्यापक दृष्टि और अनेकांत सिद्धान्त मानव समाज को एक नई दिशाबोध करा रहे हैं, जिससे मानव मूल्यों की पुनःस्थापना हो सकती है।

साहित्य (Literature)—साहित्य के क्षेत्र में जैन साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जैनों का सबसे प्राचीनतम साहित्य आगम है। भगवान महावीर ने देखा कि समाज का मार्गदर्शन करने वाले पढ़े-लिखे लोग जिस भाषा

में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं, वह संस्कृत भाषा जन-समुदाय की भाषा नहीं है इसलिए उन्होंने अपने उपदेशों में जनभाषा प्राकृत (अर्धमागधी) का प्रयोग किया। उनके गणधरों ने भी उसी भाषा में इसे सूत्र रूप में गुम्फित किया। इस प्रकार जन-भाषा में एक विशाल धार्मिक साहित्य भण्डार सांस्कृतिक धरोहर के रूप में आगामी पीढ़ियों को मिला। इस साहित्य का संवर्धन टीकाओं या व्याख्याओं के द्वारा मध्यकाल तक होता रहा। इस प्रकार आज जैन साहित्य संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी आदि अनेक भाषाओं में उपलब्ध होता है।

जैन साहित्य सांस्कृतिक दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। जैनाचार्य देश के एक कोने से दूसरे कोने तक निरन्तर भ्रमण करते रहते थे अतः जब वे साहित्य सृजन करते थे, तब उनकी लेखनी से सारे देश का प्रतिबिम्ब उतर आता था। आज आधुनिक लोक-भाषाओं एवं उनकी साहित्यिक विधाओं के विकास को समझने के लिए जैन साहित्य का अध्ययन अपरिहार्य है।

1.8 कला (Art)—

साहित्य के साथ कला भी संस्कृति का अभिन्न अंग है। जैन संस्कृति के अन्तर्गत कला के जितने भी रूप उपलब्ध हैं, सबकी अपनी-अपनी दार्शनिक पृष्ठभूमि है। गुफाओं, स्तूपों, मंदिरों, मूर्तियों एवं चित्रों के द्वारा जैनधर्म में न केवल लोक को आध्यात्मिक एवं नैतिक स्तर तक उठाने का प्रयत्न किया है अपितु देश के विभिन्न भागों को सौन्दर्य से भी सजाया है।

जैन मूर्तिकला की अपनी विशिष्टता है। भारत की प्राचीनतम मूर्तियाँ जो आज उपलब्ध हैं, जैन संस्कृति से ही अधिक घनिष्ठ हैं। जैन मूर्तियों की ध्यानस्थ मुद्रा बहुत प्रभावशाली होती है।

जैन चित्रकला आध्यात्मिकता के प्रचार-प्रसार के लिए जितने महत्व की है, उतनी ही प्राचीन भारतीय चित्रकला के इतिहास को जानने के लिए भी आवश्यक है। अजन्ता की गुप्तकालीन बौद्ध-गुफाओं में चित्रकला का जो विकसित रूप दिखाई पड़ता है, उससे यह स्पष्ट होता है कि इससे पूर्व इसकी कोई आधुनिक चित्रकला अवश्य रही होगी अतः जिस प्रकार आधुनिक भाषाओं के अध्ययन के लिए प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा का अध्ययन करना आवश्यक है, वैसे ही भारतीय चित्रकला का क्रमिक इतिहास जानने के लिए जैन चित्रकला की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

पर्व और त्यौहार (Festivals)—पर्व और त्योहार समाज के अन्तर्मानस की सामूहिक अभिव्यक्ति हैं। दृष्टि और समष्टि के जीवन क्रम में जिस विश्वास, प्रेरणा एवं उत्साह की आवश्यकता पड़ती है, उसकी पूर्ति पर्वों से होती है। पर्व एवं त्योहार किसी न किसी धार्मिक एवं सामाजिक दायित्व के प्रति व्यक्ति को जगाने का कार्य करते हैं। जैन संस्कृति के भी अपने कुछ पर्व हैं। यथा—दीपावली, अक्षयतृतीया, महावीर जयंती, अष्टान्हिका, दशलक्षण आदि। इन पर्वों की यह विशेषता है कि ये व्यक्ति में त्याग, तप, स्वाध्याय, अहिंसा, सत्य, प्रेम तथा विश्वमैत्री की भावना को जागृत करने वाले होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन संस्कृति एक महान् संस्कृति है। उसका रूप सदा व्यापक रहा है। उसका द्वार सबके लिए खुला रहा है। उस व्यापक दृष्टिकोण का मूल असांप्रदायिकता और जातीयता का अभाव है। व्यवहार दृष्टि से जैनों के सम्प्रदाय हैं, पर उन्होंने धर्म को सम्प्रदाय के साथ नहीं बांधा। वे जैन सम्प्रदायों को नहीं, जैनत्व को महत्त्व देते हैं। जैनत्व का अर्थ है—सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की आराधना।

1.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)—

प्रश्न 1-संस्कृति किसे कहते हैं ?

प्रश्न 2-संस्कृति और सभ्यता में क्या अन्तर है ?

प्रश्न 3-जैन संस्कृति का मूल आधार क्या है, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वह किसका समाधान करती है ?

प्रश्न 4-किन चार मणिस्तंभों पर जैन साध्वाचार का सर्वोदयी प्रासाद अवस्थित है ?

प्रश्न 5-जैनत्व का क्या अर्थ है ?

पाठ-2—जैन कला और पुरातत्व (Jain Art and Archaeology)

2.1 जैन परम्परा के अनुसार इस अवसर्पिणी काल में ह्रास होते-होते जब भोगभूमि का स्थान कर्मभूमि ने ले लिया तो भगवान् ऋषभदेव ने जनता के योगक्षेम के लिए पुरुषों की बहत्तर कलाओं और स्त्रियों के चौसठ गुणों को बतलाया। जैन अंग साहित्य के तेरहवें पूर्व में उनका विस्तृत वर्णन था, वह अब नष्ट हो चुका है। इससे पता लगता है कि पहले कला का अर्थ बहुत व्यापक था। उसमें जीवन-यापन से लेकर जीव-उद्धार तक के सब सत्प्रयत्न सम्मिलित थे। कहा भी है—

कला बहत्तर पुरुष की, तामें दो सरदार।
एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार।।

जैनधर्म का तो प्रधान लक्ष्य ही जीव उद्धार है। बल्कि यदि कहा जाये कि जीव उद्धार के लिए किये जाने वाले सत्प्रयत्नों का नाम ही जैनधर्म है तो अनुचित न होगा। इसी से आज कला की परिभाषा जो 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की जाती है अर्थात् जो सत्य है, कल्याणकर है और सुन्दर है वही कला है, वह जैन कला में सुघटित है, क्योंकि जैनधर्म से सम्बद्ध चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्यकला सुन्दर होने के साथ ही साथ कल्याणकर भी है और सत्य का दर्शन कराती है। नीचे उनका परिचय संक्षेप में दिया जाता है।

2.2 जैन चित्रकला (Jain Paintings)-

सरगुजा राज्य के अन्तर्गत लक्ष्मणपुर से 12 मील रामगिरि नामक पहाड़ है वहाँ पर जोगीमारा गुफा है। गुफा की चौखट पर बड़े ही सुन्दर चित्र अंकित हैं। ये चित्र ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन हैं तथा जैनधर्म से संबंधित हैं परन्तु संरक्षण के अभाव में चित्रों की हालत खराब हो गई है।

पुदुकोटै राज्य में राजधानी से 9 मील उत्तर एक जैन गुफा मंदिर है उसे सितन्नवासल कहते हैं। सितन्नवासल का प्राकृत रूप है सिद्धण्णवास—सिद्धों का निवास। इसकी भीतों पर पूर्वपल्लव राजाओं की शैली के चित्र हैं जो तमिल संस्कृति और साहित्य के महान् संरक्षक प्रसिद्ध कलाकार राजा महेन्द्रवर्मा प्रथम (600-625 ई.) के बनवाये हुए हैं और अत्यन्त सुन्दर होने के साथ ही साथ सबसे प्राचीन जैन चित्र हैं। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि अजंता के सर्वोत्कृष्ट चित्रों के साथ सितन्नवासल के चित्रों की तुलना करना अन्याय होगा किन्तु ये चित्र भी भारतीय चित्रकला के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान रखते हैं। इनकी रचना शैली अजंता के भित्ति चित्रों से बहुत मिलती-जुलती है।

यहाँ अब दीवारों और छतों पर सिर्फ दो चार चित्र ही कुछ अच्छी हालत में बचे हैं। इनकी विशेषता यह है कि बहुत थोड़ी किन्तु स्थिर और दृढ़ रेखाओं में अत्यन्त सुन्दर आकृतियाँ बड़ी होशियारी के साथ लिख दी गई हैं जो सजीव सी जान पड़ती हैं। गुफा में समवसरण की सुन्दर रचना चित्रित है। सारी गुफा कमलों से अलंकृत है, खम्भों पर नर्तकियों के चित्र हैं। बरामदे की छत के मध्यभाग में पुष्करिणी का चित्र है। जल में पशु-पक्षी जलविहार कर रहे हैं। चित्र के दाहिनी ओर तीन मनुष्याकृतियाँ आकर्षक और सुन्दर हैं। गुफा में पर्यंकमुद्रा में स्थित पुरुष प्रमाण अत्यन्त सुन्दर पाँच तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं जो मूर्तिविधान कला की अपेक्षा से भी उल्लेखनीय हैं। वास्तव में पल्लवकालीन चित्र भारतीय विद्वानों के लिए अध्ययन की वस्तु हैं।

सितन्नवासल के बाद जैनधर्म से संबंधित चित्रकला के उदाहरण दशवीं शती से लगाकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक मिलते हैं। विद्वानों का कहना है कि इस मध्यकालीन चित्रकला के अवशेषों के लिए भारत जैन भण्डारों का आभारी है, क्योंकि प्रथम तो इस काल में प्राय: एक हजार वर्ष तक जैनधर्म का प्रभाव भारतवर्ष के एक बहुत बड़े भाग में फैला हुआ था। दूसरे जैनों ने बहुत बड़ी संख्या में धार्मिक ग्रंथ ताड़पत्रों पर लिखवाये और चित्रित करवाये थे। वि. सं. 1157 की चित्रित निशीथचूर्णि की प्रति आज उपलब्ध है जो देवनागरी कला में अति प्राचीन है। 15वीं शती के पूर्व की जितनी

भी कलात्मक चित्रकृतियाँ मिलती हैं वे केवल जैनग्रंथों में ही प्राप्त हैं।

आज तक जो प्राचीन जैन साहित्य उपलब्ध हुआ है उसका बहुभाग ताड़पत्रों पर लिखा हुआ मिला है अतः भारतीय चित्रकला का विकास ताड़पत्रों पर भी खूब हुआ है। मुनि जिनविजय जी का लिखना है कि चित्रकला के इतिहास और अध्ययन की दृष्टि से ताड़पत्र की ये सचित्र पुस्तकें बड़ी मूल्यवान और आकर्षणीय वस्तु हैं।

मद्रास गवर्नमेण्ट म्यूजियम से एक मूल्यवान ग्रंथ श्री टी.एन. रामचन्द्रन् द्वारा लिखित प्रकाशित हुआ है। इसमें प्रकाशित चित्रों से दक्षिण भारत की जैन चित्रकला पद्धति का अच्छा आभास मिलता है। इनमें से अधिकांश चित्र भगवान् ऋषभदेव और महावीर की जीवन घटनाओं पर प्रकाश डालते हैं। उनसे उस समय के पहनावे से, नृत्यकला आदि का परिचय मिला है।

ताड़पत्रों को सुरक्षित रखने के लिए काष्ठफलों का प्रयोग किया जाता था अतः उन पर भी जैन चित्रकला के सुन्दर नमूने मिलते हैं।

जैन चित्रकला के संबंध में चित्रकला के मान्य विद्वान् श्री एन.सी. मेहता ने जो उद्गार प्रकट किये हैं वे उस पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त होंगे। वे लिखते हैं—"जैन चित्रों में एक प्रकार की निर्मलता, स्फूर्ति और गतिवेग है, जिससे डॉ. आनन्दकुमार स्वामी जैसे रसिक विद्वान् मुग्ध हो जाते हैं। इन चित्रों की परम्परा अजंता, एलोरा, बाघ और सितन्नवासल के भित्तिचित्रों की है। समकालीन सभ्यता के अध्ययन के लिए इन चित्रों से बहुत कुछ ज्ञानवृद्धि होती है। खासकर पोशाक, सामान्य उपयोग में आने वाली चीजें आदि के संबंध में अनेक बातें ज्ञात होती हैं।

2.3 जैन मूर्तिकला (Jain Sculpture)-

जैनधर्म निवृत्तिप्रधान धर्म है अतः प्रारंभ से लेकर आज तक उसके मूर्तिविधान में प्रायः एक ही रीति के दर्शन होते हैं। ई. सं. के आरंभ में कुशान राज्यकाल की जो जैन प्रतिमाएँ मिलती हैं उनमें और सैकड़ों वर्ष पीछे की बनी जैन मूर्तियों में बाह्य दृष्टि से थोड़ा बहुत ही अन्तर है। प्रतिमा के लाक्षणिक अंग लगभग दो हजार वर्ष तक एक ही रूप में कायम रहे हैं। पद्मासन या खड्गासन मूर्तियों में लम्बा काल बीत जाने पर भी विशेष भेद नहीं पाया जाता। जैन तीर्थंकरों की मूर्ति विरक्त, शांत और प्रसन्न होती है। उसमें मनुष्य हृदय की विकृतियों को स्थान नहीं होता। इससे जैन प्रतिमा उनकी मुखमुद्रा के ऊपर से तुरन्त ही पहचानी जा सकती हैं। खड़ी मूर्तियों के मुख पर प्रसन्नता और दोनों हाथ निर्जीव जैसे सीधे लटकते हुए होते हैं। बैठी हुई प्रतिमा ध्यानमुद्रा में पद्मासन से विराजमान होती हैं। दोनों हाथ गोदी में सरलता से स्थापित रहते हैं। 24 तीर्थंकरों के प्रतिमा विधान में व्यक्ति भेद न होने से उनके आसन के ऊपर अंकित चिन्हों से जुदे-जुदे तीर्थंकर की प्रतिमा पहचानी जाती है।

मध्यकालीन जैन मूर्तियों में बौद्ध प्रथा के समान कपाल पर उर्णा और मस्तक पर उष्णीष तथा वक्षस्थल पर श्री वत्स का चिन्ह भी अंकित होने लगा किन्तु जैन मूर्तियों की लाक्षणिक रचना में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

वर्तमान में सबसे प्राचीन जैन मूर्ति पटना के लोहनीपुर स्थान से प्राप्त हुई है। यह मूर्ति निश्चय से मौर्यकाल की है और पटना म्यूजियम में रखी हुई है। इसकी चमकदार पालिस अभी तक भी ज्यों की त्यों बनी है। लाहौर, मथुरा, लखनऊ, प्रयाग आदि के म्यूजियमों में भी अनेक जैन मूर्तियाँ मौजूद हैं। इनमें से कुछ गुप्तकालीन हैं। श्री वासुदेव उपाध्याय ने लिखा है कि मथुरा में 24वें तीर्थंकर वर्धमान महावीर की एक मूर्ति मिली है जो कुमारगुप्त के समय में तैयार की गई थी। वास्तव में मथुरा में जैनमूर्ति कला की दृष्टि से भी बहुत काम हुआ है। श्री रायकृष्णदास ने लिखा है कि मथुरा की शुंगकालीन कला मुख्यतः जैन सम्प्रदाय की है।

खण्डगिरि और उदयगिरि में ई. पू. 188-30 तब की शुंगकालीन मूर्ति शिल्प के अद्भुत चातुर्य के दर्शन होते हैं। वहाँ पर इस काल की कटी हुई सौ के लगभग जैन गुफाएं हैं जिनमें मूर्ति शिल्प भी है। दक्षिण भारत के अलगामलै

नामक स्थान में खुदाई से जो जैन मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं उनका समय ई. पू. 300–200 के लगभग बताया जाता है। उन मूर्तियों की सौम्याकृति द्रविड़कला में अनुपम मानी जाती है। श्रवणबेलगोला की प्रसिद्ध जैन मूर्ति तो संसार की अद्‌भुत वस्तुओं में से है। वह अपने अनुपम सौंदर्य और अद्‌भुत शांति से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। यह विश्व को जैन मूर्तिकला की अनुपम देन है।

2.4 स्थापत्यकला (Art of Monuments)-

तीर्थंकरों की सादी प्रतिमाओं के आवासगृहों को सजाने में जैनाश्रित कला ने कुछ बाकी नहीं रखा। भारतवर्ष के चारों कोनों में जैन मंदिरों की अद्वितीय इमारतें आज भी खड़ी हुई हैं। मैसूर राज्य के हासन जिले में वेलूर के जैन मंदिर मध्यकालीन जैन वैभव की साक्षी देते हैं। गुजरात में आबू के मंदिरों में तो स्थापत्यकला देखते ही बनती है। विन्ध्य प्रान्त के छतरपुर राज्य के खजुराहो स्थान में नवमी से ग्यारहवीं शती तक के बहुत से सुन्दर देवालय बने हुए हैं और काले पत्थर की खंडित-अखंडित अनेक जैन प्रतिमाएँ जगह-जगह दृष्टिगोचर होती हैं। इलाहाबाद म्युनिसिपल संग्रहालय जैन मूर्तियों का अच्छा संग्रह है जो प्रायः बुन्देलखण्ड से लायी गयी हैं। किसी समय में बुन्देलखण्ड जैन पुरातत्व और कला का महान् पोषक था। उसने शिल्पियों को यथेच्छ द्रव्य देकर जैन कलात्मक कृतियों का सृजन कराया। इसका पूरा हाल खजुराहो और देवगढ़ की यात्रा करके ही जाना जा सकता है। चित्तौड़ का जैन स्तम्भ स्थापत्यकला की दृष्टि से उल्लेखनीय है। यह अपनी शैली का अकेला ही है। इसकी ऊँचाई 80 फुट है और धरातल से चोटी तक सुन्दर नक्काशी और सजावट से शोभित है। इसके नीचे एक शिलालेख भी है जिसमें उसका समय 896 ई. दिया है। यह स्तंभ प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ से संबद्ध है। इसके ऊपर उनकी सैकड़ों मूर्तियाँ अंकित हैं। ग्वालियर की पहाड़ी पर भी पुरातत्व की उल्लेखनीय सामग्री है। पहाड़ के चारों ओर बहुत सी मूर्तियाँ खोदी हुई हैं, उनमें से कुछ तो 57 फुट ऊँची हैं। फ्रेंच कलाविद ज्यूरिनों ने अपनी पुस्तक -ला रेलिजन द जैन' में ठीक ही लिखा है—विशेषतः स्थापत्य कला के क्षेत्र में जैनियों ने ऐसी पूर्णता प्राप्त कर ली है कि शायद ही कोई उनकी बराबरी कर सके।

जैन स्थापत्यकला के सबसे प्राचीन अवशेष उड़ीसा के उदयगिरि और खंडगिरि पर्वतों की तथा जूनागढ़ के गिरनार पर्वत की गुफाओं में मिलते हैं। उदयगिरि और खंडगिरि की गुफाओं के बारे में फर्ग्युसन का कहना है कि उनकी विचित्रता और प्राचीनता तथा उसमें पायी जाने वाली मूर्तियों के आकार-प्रकार के कारण उनका असाधारण महत्व है। उदयगिरि की हाथी गुफा तो खारवेल के कारण ही महत्वपूर्ण है परन्तु स्थापत्य कला की दृष्टि से रानी और गणेश गुफाएँ उल्लेखनीय हैं। उनमें भगवान पार्श्वनाथ का जीवन वृत्तान्त बड़ी कुशलता से खोदा गया है। कला की दृष्टि से मथुरा के आयागपट्ट, बोड़न स्तूप और तोरण उल्लेखनीय हैं।

जैन स्थापत्य कला के अपेक्षाकृत अर्वाचीन उदाहरण आबू आदि स्थान में और राणा कुम्भा के समय के अवशेषों में मिलते हैं। अलवर राज्य के भानुगढ़ स्थान में भी बहुत सुन्दर जैन मंदिर हैं। उनमें से एक तो 10-11वीं शती का है और खजुराहो के जैसा ही सुन्दर है। श्री फर्ग्युसन का कहना है कि राजपुताने में जैनी कम रह गये हैं फलतः उनके मंदिरों की दुरवस्था है किन्तु भारतीय कला के प्रेमियों के लिए वे बहुत काम के हैं। यही अवस्था पूरे देश की है।

जैनों की स्थापत्य कला ने गुजरात की भी शोभा बढ़ायी है। यह सब मानते हैं कि यदि जैन कला और स्थापत्य जीवित न होते तो मुस्लिम कला से हिन्दूकला दूषित हो जाती। फर्ग्युसन ने स्थापत्य पर एक ग्रंथ लिखा है। उसमें वह लिखते हैं कि जो कोई भी बारहवीं शती का ब्राह्मण धर्म का मंदिर है, गुजरात में जैनों के द्वारा व्यवहृत शैली का उदाहरण है। राणकपुर के जैन मंदिर के अनेक स्तम्भों को देखकर कला के पारखी मुग्ध हो जाते हैं। दक्षिण में जहाँ बौद्ध धर्म के स्थापत्य के इने-गिने अवशेष हैं वहाँ जैनधर्म के प्राचीन स्थापत्य के बहुत से उदाहरण आज भी उपलब्ध हैं। उनमें प्रमुख हैं—एलोरा की इन्द्रसभा और जगन्नाथसभा। संभवतः इनकी खुदाई चालुक्यों की बादामी शाखा या राष्ट्रकूटों के

तत्त्वावधान में हुई होगी, क्योंकि बादामी में भी इसी तरह की एक जैन गुफा है, जो सातवीं शती की मानी जाती है।

दक्षिण में जैन मंदिरों और मूर्तियों की बहुतायत है। श्रवणबेलगोला (मैसूर) में गोम्मटस्वामी की प्रसिद्ध जैन मूर्ति है जो स्थापत्य कला की दृष्टि से अपूर्व है। वहाँ अनेक जैन मंदिर हैं। जो द्रवेड़ियन शैली के हैं। कनाड़ा जिले में अथवा तुलु-प्रदेश में जैन मंदिरों की बहुतायत है किन्तु उनकी शैली न दक्षिण भारत की द्रवेड़ियन शैली से ही मिलती है और न उत्तर भारत की शैली से। मूडबिद्री के मंदिरों में लकड़ी का उपयोग अधिक पाया जाता है और उसकी नक्काशी दर्शनीय है। सारांश यह है कि भारतवर्ष का शायद ही कोई कोना ऐसा हो जहाँ जैन पुरातत्त्व के अवशेष न पाये जाते हों। जहाँ आज जैनों का निवास नहीं है वहाँ भी जैन कला के सुन्दर नमूने पाये जाते हैं।

इसी से प्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत रविशंकर रावल का कहना है—'भारतीय कला का अभ्यासी जैनधर्म की जरा भी उपेक्षा नहीं कर सकता। मुझे जैनधर्म, कला का महान् आश्रयदाता, उद्धारक और संरक्षक प्रतीत होता है।'

स्व. का. प्र. जायसवाल ने जैनधर्म से संबद्ध वास्तुकला के विषय में एक भ्रामक बात कही है। जैन और बौद्ध मंदिरों पर अप्सराओं आदि की मूर्ति को लेकर उन्होंने लिखा है—अब प्रश्न यह है कि बौद्धों और जैनों को ये अप्सराएं कहाँ से मिलीं ....मेरा उत्तर यह है कि उन्होंने ये सब चीजें सनातनी हिन्दू (वैदिक) इमारतों से ली हैं।

भारतीय कला को इस तरह फिर्कों में बांटने के संबंध में व्युहलर का मत उल्लेखनीय है जो उन्होंने मथुरा से प्राप्त पुरातत्व से शिक्षा ग्रहण करके निर्धारित किया था। उनका कहना है—'मथुरा से प्राप्त खोजों ने मुझे यह पाठ पढ़ाया है कि भारतीय कला साम्प्रदायिक नहीं है। बौद्ध, जैन और ब्राह्मण धर्मों ने अपने-अपने समय की और देश की कलाओं का उपयोग किया है। उन्होंने कला के क्षेत्र में प्रतीकों और रुढ़िगत रीतियों को एक ही रूप से लिया है। चाहे स्तूप हों या पवित्र वृक्ष या चक्र या और कुछ हों ये सभी धार्मिक या कलात्मक तत्त्वों के रूप में जैन, बौद्ध और सनातनी हिन्दू सभी के लिए समान रूप से सुलभ हैं।

उनके इस मत की पुष्टि विसेण्ट स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'द जैन स्तूप एण्ड अदर एण्टींक्विटीस ऑफ मथुरा' में की है।

इस तरह प्राचीन मंदिरों, मूर्तियों, शिलालेखों, गुफाओं और ताम्रपत्रों के रूप में आज भी जैन पुरातत्व यत्र-तत्र पाया जाता है और बहुत सा समय के प्रवाह में नष्ट हो गया अथवा नष्ट कर दिया गया। श्री फर्ग्युसन का कहना है कि बारह खंभों के गुम्बजों का जैनों में बहुत चलन रहा है। इस तरह का गुम्बज एक तो भेलसा में निर्मित समाधि में पाया जाता है जो संभवतः 4वीं शती का है। दूसरा बाघ की महान् गुफाओं में है जो छठी या सातवीं शती का है। इस तरह के गुम्बज के पतले और शानदार स्तंभों को मुसलमानों ने अपने काम का पाया, क्योंकि वे बड़ी सरलता से फिर से बैठाये जा सकते थे इसलिए उन्हें बिना नष्ट किये ही मुसलमानों ने अपने काम में ले लिया। उनका मत है कि अजमेर, देहली, कन्नौज, धार और अहमदाबाद की विशाल मस्जिद जैनों के मंदिरों को तोड़ने से प्राप्त सामग्री से ही पुनः निर्मित की गई हैं।

गुजरात के प्रसिद्ध सोमनाथ के मंदिर को कौन नहीं जानता। ई. 1025 में महमूद गजनवी ने इसे तोड़ा था। इस मंदिर की निर्माण शैली गिरनार पर्वत पर स्थित श्री नेमिनाथ के जैन मंदिरों से मिलती-जुलती हुई है। श्री फर्ग्युसन का कहना है कि जब मुसलमानों ने इस मंदिर पर आक्रमण किया उस समय वह सोमेश्वर का मंदिर कहा जाता था। सोमेश्वर नाम से ही शिव मान लिया गया। यदि वह शिव का था तो उसमें अवश्य ही शिवलिंग प्रतिष्ठित होना चाहिए किन्तु मुस्लिम इतिहास लेखकों का कहना है कि मूर्ति के सिर, हाथ, पैर और पेट था। ऐसी स्थिति में वह मूर्ति शिवलिंग न होकर विष्णु की या किसी जैन तीर्थंकर की होनी चाहिए। उस समय गुजरात में वैष्णव धर्म का नामोनिशान भी देखने को नहीं मिलता तथा मुसलमानों के बाद उस मंदिर का जीर्णोद्धार राजा भीमदेव, सिद्धराज और कुमारपाल ने कराया, सब जैन थे। इन सब बातों पर से फर्ग्युसन सा. ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सोमनाथ का मंदिर जैन मंदिर था।

कला की तरह पुरातत्व शब्द का अर्थ भी बहुत व्यापक है। इतिहास आदि के निर्माण में जिन साधनों की

आवश्यकता होती है वे सभी पुरातत्व में गर्भित हैं अत: प्राचीन मंदिरों, गुफाओं और स्तंभों की तरह प्राचीन शिलालेखों और शास्त्रों को भी पुरातत्व में सम्मिलित किया गया है।

श्रवणबेलगोला (मैसूर) में बहुत से शिलालेख अंकित हैं। मैसूर पुरातत्त्व विभाग के तत्कालीन अधिकारी लूइस राइस साहब ने श्रवणबेलगोला के 144 शिलालेखों का संग्रह प्रकाशित किया था। इसकी भूमिका में उन्होंने इन लेखों के ऐतिहासिक महत्व की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया और चन्द्रगुप्त मौर्य तथा भद्रबाहु के पारस्परिक संबंध का विवेचन कर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने भद्रबाहु से जिनदीक्षा ली थी तथा शि. लेख नं. 1 उन्हीं का स्मारक है।

उक्त संग्रह का दूसरा संस्करण रायबहादुर आर. नरसिंहाचार्य ने रचकर प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने 500 शिलालेखों का संग्रह किया है व भूमिका में उनके ऐतिहासिक महत्व का विवेचन किया है किन्तु ये संग्रह कनड़ी व रोमन लिपि में थे अत: उक्त लेखों का एक देवनागरी संस्करण प्रो. हीरालाल तथा श्री विजयमूर्ति आदि से सम्पादित कराके श्री नाथूराम जी प्रेमी ने प्रकाशित किया है। इस तरह आबू, देवगढ़ आदि में भी अनेक शिलालेख मूर्तिलेख वगैरह पाये जाते हैं। भारतीय इतिहास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण खण्डगिरि, उदयगिरि में प्राप्त जैन शिलालेख की चर्चा पहले की जा चुकी है।

इस तरह जैनों ने बहुसंख्यक शिलालेखों, प्रतिमालेखों, ताम्रपत्रों, ग्रंथ प्रशस्तियों, पुष्पिकाओं, पट्टावलियों, गुर्वावलियों, राज वंशावलियों और ग्रंथों के रूप में विपुल ऐतिहासिक सामग्री प्रदान की है।

स्व. वैरिस्टर श्री का. प्र. जायसवाल ने अपने एक लेख में लिखा था—'जैनों के यहाँ कोई 2500 वर्ष की संवत् गणना का हिसाब हिन्दुओं भर में सबसे अच्छा है। उससे विदित होता है कि पुराने समय में ऐतिहासिक परिपाटी की वर्ष गणना हमारे देश में थी। जब वह और जगह लुप्त और नष्ट हो गई, तब केवल जैनों में बची रही। जैनों की गणना के आधार पर हमने पौराणिक और ऐतिहासिक बहुत-सी घटनाओं को जो बुद्ध और महावीर के समय से इधर की हैं, समयबद्ध किया और देखा कि उनका ठीक मिलान सुज्ञात गणना से मिल जाता है। कई एक ऐतिहासिक बातों का पता जैनों की ऐतिहासिक लेख पट्टावलियों में ही मिलता है।'

2.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)—

प्रश्न 1-भगवान ऋषभदेव ने जनताके योगक्षेम के लिए कितनी कलाओं और गुणों को बताया ?

प्रश्न 2-सितन्नवासल किसे कहते हैं, उसका प्राकृत रूप क्या है ?

प्रश्न 3-जैन तीर्थंकरों की मूर्ति की क्या पहचान है ?

प्रश्न 4-जैन स्थापत्यकला के सबसे प्राचीन अवशेष कहाँ-कहाँ मिलते हैं ?

प्रश्न 5-सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने किनसे दीक्षा ली ?

पाठ-3 – जैन पर्व (Jain Festivals)

3.1 सोलहकारण पर्व (Solahkaran Parva)-

चैत्र, भादों तथा माघ महीनों में पूरे 30 दिन तक यह पर्व मनाया जाता है और सोलहकारण की पूजा तथा व्रत किये जाते हैं। यह अनादिनिधन पर्व है, जिसमें जैनधर्म में बतलाई गई दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप आदि सोलह प्रकार की तीर्थंकर प्रकृति का बंध कराने वाली सोलहकारण भावनाओं की आराधना की जाती है।

3.2 दशलक्षण (पर्यूषण पर्व) (Dash Lakshan or Paryushan Parva)-

जैनों का सबसे पवित्र पर्व दशलक्षण पर्व है, जिसे आजकल लोग पर्यूषण पर्व के नाम से भी जानते हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय में यह पर्व प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी तक तथा श्वेताम्बर में भाद्र कृ. 12 से भाद्र शु. 4 तक मनाया जाता है। इन दिनों में जैन मंदिरों में खूब आनन्द छाया रहता है। प्रतिदिन प्रात:काल से ही सब स्त्री–पुरुष स्नान करके मंदिरों में पहुँच जाते हैं और बड़े आनन्द के साथ भगवान् का पूजन करते हैं। पूजन समाप्त होने पर प्रतिदिन श्री तत्त्वार्थसूत्र के दस अध्यायों में से एक–एक अध्याय का व्याख्यान और उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य इन धर्मों में से एक–एक धर्म का विवेचन होता है। इन दस धर्मों के कारण इस पर्व को दशलक्षण पर्व कहते हैं क्योंकि धर्म के उक्त दस लक्षणों का इस पर्व में खासतौर से आराधना किया जाता है। व्याख्यान के लिए बाहर से बड़े–बड़े विद्वान् बुलाये जाते हैं और प्राय: सभी स्त्री–पुरुष उनके उपदेश से लाभ उठाते हैं। आश्विन कृष्णा प्रतिपदा के दिन पर्व की समाप्ति होने पर सब एकत्र होकर परस्पर में गले मिलते हैं और गत वर्ष की अपनी गलतियों के लिए परस्पर में क्षमायाचना करते हैं। जो लोग दूर–देशान्तर में बसते हैं उनसे पत्र लिखकर या क्षमावणी कार्ड आदि भेजकर क्षमायाचना की जाती है।

इन दिनों में प्राय: सभी स्त्री–पुरुष अपनी–अपनी शक्ति के अनुसार व्रत, उपवास वगैरह करते हैं। कोई–कोई दसों दिन उपवास करते हैं, बहुत से दसों दिन तक एक बार भोजन करते हैं। इन्हीं दिनों में भाद्रपद शुक्ला दशमी को सुगंध दशमी पर्व होता है, इस दिन सब जैन स्त्री–पुरुष एकत्र होकर मंदिर में धूप खेने के लिए जाते हैं, इन्दौर वगैरह में यह उत्सव दर्शनीय होता है।

भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी अनन्त चतुर्दशी कहलाती है। इसका जैनों में बड़ा महत्व है। जैन शास्त्रों के अनुसार इस दिन व्रत करने से बड़ा लाभ होता है। दूसरे, यह दशलक्षण पर्व का अंतिम दिन भी है इसलिए इस दिन प्राय: सभी जैन स्त्री–पुरुष व्रत रखते हैं और तमाम दिन मंदिरों में ही बिताते हैं। अनेक स्थानों पर इस दिन जुलूस भी निकलता है। कुछ लोग इन्द्र बनकर जुलूस के साथ जल लाते हैं और उस जल से भगवान का अभिषेक करते हैं फिर पूजन होता है। पूजन के बाद अनन्त चतुर्दशी व्रतकथा होती है। जो व्रती निर्जल उपवास नहीं करते वे भी प्राय: कथा सुनकर ही जल ग्रहण करते हैं।

3.3 रत्नत्रय पर्व (Ratntray Parva)-

चैत्र, भादों और माघ के अंतिम 3 दिन (सुदी 13–14–15) में रत्नत्रय की पूजा और व्रत आदि करके इस पर्व को मनाया जाता है। इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्ररूपी रत्नत्रय की आराधना करके श्रावकजन अपने मोक्ष मार्ग के प्रशस्त होने की मंगल भावनाएँ करते हैं।

3.4 क्षमावाणी पर्व (Kshamavani Parva)-

दशलक्षण पर्व की समाप्ति पर आश्विन कृष्णा एकम् को सभी लोग परस्पर मिलते हैं और गत वर्षों में अपने द्वारा

की गई गलतियों की क्षमा याचना करते हैं। जो लोग व्यक्तिशः मिल नहीं पाते हैं वे दूरभाष अथवा पत्र द्वारा क्षमा याचना करके इस पर्व को मनाते हैं।

वाचनिक क्षमा की अपेक्षा हार्दिक क्षमा महत्वपूर्ण है। सच्चे हृदय से क्षमायाचना और क्षमादान करना जैन श्रावक का एक बड़ा गुण है जिससे दोनों पक्षों को अकथनीय लाभ होता है। अतः इस पर्व को रस्मी तौर पर न मना कर सच्चे मन से मनाना चाहिए। जिनसे हमारा मनमुटाव है, विशेष तौर पर उनसे क्षमा याचना अवश्य करनी चाहिए।

3.5 अष्टान्हिका पर्व (Ashtahnika Festival)—

दिगम्बर परम्परा का दूसरा महत्वपूर्ण पर्व अष्टान्हिका पर्व है। यह पर्व कार्तिक, फाल्गुन और आसाढ़ मास के अंत के आठ दिनों में मनाया जाता है। जैन मान्यता के अनुसार मध्यलोक की अकृत्रिम रचना में असंख्यात द्वीप-समुद्रों के अन्दर आठवां नंदीश्वरद्वीप है। उस द्वीप में 52 जिनालय बने हुए हैं। उनकी पूजा करने के लिए स्वर्ग से चारों प्रकार के देवगण उक्त दिनों में जाते हैं। चूँकि मनुष्य वहाँ तक जा नहीं सकते इसलिए उक्त दिनों में आष्टान्हिका पर्व मानकर यहीं पर नंदीश्वर द्वीप के मंदिरों की पूजा कर लेते हैं। इन दिनों में सिद्धचक्र, इन्द्रध्वज, नंदीश्वर आदि पूजा विधान का आयोजन किया जाता है। यह पूजा महोत्सव दर्शनीय होता है।

3.6 अक्षय तृतीया पर्व (Akshay Tritiya Parva)-

भगवान आदिनाथ ने दीक्षा के समय छः मास का उपवास लिया था। उपवासोपरान्त उन्होंने आहार हेतु विहार किया। किन्तु उन्हें छह माह उन्नतालिस दिन आहार प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि दान की विधि किसी को मालूम नहीं थी। एक दिन भगवान आदिनाथ को देखकर हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस को अपने पूर्व भव का स्मरण हो जाने से दान की विधि मालूम हो गई थी और उन्होंने भगवान को प्रथम बार विधिवत् पड़गाहन कर इक्षुरस (गन्ने का रस) का आहार दिया था। उस दिन वैशाख शुक्ला तृतीया थी। उस दान के निमित्त से उस दिन राजा की रसोई में भोजन अक्षीण (जो कभी क्षीण नहीं होता है) हो गया था। अतः आज भी वैशाख शुक्ला तृतीया का दिन जैन समाज ही नहीं अपितु समस्त समाज में अत्यन्त शुभ माना जाता है, जिसे सभी अक्षय तृतीया पर्व के नाम से मनाते हैं।

3.7 महावीर जयंती (Mahaveer Jayanti)—

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी, भगवान महावीर की जन्मकल्याणक तिथि है। इस दिन भारतवर्ष के सभी जैन अपना कारोबार बंद रखकर अपने-अपने स्थानों पर बड़ी धूम—धाम से महावीर जयंती मनाते हैं। प्रातःकाल जुलूस निकालते हैं और रात्रि में सार्वजनिक सभा का आयोजन होता है। भारत भर में बहुत सी प्रान्तीय सरकारों ने अपने प्रान्त में महावीर जयंती की छुट्टी घोषित कर दी है। केन्द्रीय सरकार से भी जैनों की यही मांग है।

3.8 वीरशासन जयंती (Veer Shasan Jayanti)—

जैनों के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर को वैशाख शु. दशमी को केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर 66 दिन के बाद उनकी सबसे पहली धर्म देशना मगध की राजगृही नगरी के विपुलाचल पर्वत पर प्रातःकाल के समय खिरी थी। उसी के उपलक्ष्य में प्रतिवर्ष श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को वीरशासन जयंती मनायी जाती है।

3.9 श्रुतपंचमी (Shrut Panchmi)—

दिगम्बर परम्परा में धीरे-धीरे जब अंगज्ञान लुप्त हो गया, तो अंगों और पूर्वों के एकदेश के ज्ञाता आचार्य धरसेन हुए। वे सोरठ देश के गिरनार पर्वत की चन्द्रगुफा में ध्यान करते थे। उन्हें इस बात की चिंता हुई कि उनके बाद श्रुतज्ञान का लोप हो जायेगा अतः उन्होंने महिमा नगरी में होने वाले मुनि सम्मेलन को पत्र लिखा, जिसके फलस्वरूप वहाँ से दो

मुनि उनके पास पहुँचे। आचार्य ने उनकी बुद्धि की परीक्षा करके उन्हें सिद्धान्त पढ़ाया और उनका अलग विहार करा दिया। उन दोनों मुनियों का नाम पुष्पदन्त और भूतबलि रखा गया। उन्होंने वहाँ से आकर षट्खण्डागम नामक सिद्धान्त ग्रंथ की रचना की। रचना हो जाने पर भूतबलि आचार्य ने उसे पुस्तकारूढ़ करके ''ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी'' के दिन चतुर्विध संघ के साथ उसकी पूजा कराई, जिससे श्रुतपंचमी तिथि दिगम्बर जैनियों में प्रख्यात हो गयी। उस तिथि को वे शास्त्रों की पूजा करते हैं। उनकी देखभाल करते हैं, धूल तथा जीव-जन्तु से उनकी सफाई करते हैं।

उक्त पर्वों के सिवा प्रत्येक तीर्थंकर के गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण के दिन कल्याणक दिन कहे जाते हैं। उन दिनों में भी जगह-जगह उत्सव मनाये जाते हैं। अनेक नगरों में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की, पार्श्वनाथ की जन्मजयंती एवं निर्वाण तिथि मनायी जाती है।

3.10 दीपावली (Deepawali)—

ऊपर जो जैन पर्व बतलाये गये हैं वे ऐसे हैं जिन्हें केवल जैन धर्मानुयायी ही मानते हैं। इनके सिवा कुछ पर्व ऐसे भी हैं जिन्हें जैनों के सिवाय हिन्दू जनता भी मानती है। ऐसे पर्वों में सबसे अधिक उल्लेखनीय दीपावली का पर्व है। यह पर्व कार्तिक मास की अमावस्या की संध्या को मनाया जाता है। साफ सुथरे मकान कार्तिकी अमावस्या की संध्या को दीपों के प्रकाश से जगमगा उठते हैं। घर-घर लक्ष्मी का पूजन होता है। सदियों से यह त्योहार मनाया जाता है, कोई इसका संबंध रामचन्द्र जी के अयोध्या लौटने से लगाते हैं। कोई इसे सम्राट अशोक की दिग्विजय का सूचक बतलाते हैं किन्तु रामायण में इस तरह का कोई उल्लेख नहीं मिलता है, इतना ही नहीं, किन्तु किसी हिन्दू पुराण वगैरह में भी इस संबंध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। बौद्ध धर्म में तो यह त्योहार मनाया नहीं जाता, रह जाती है जैन संस्कृति। इस समाज में शक सं. 705 (वि. सं. 840) का रचा हुआ हरिवंशपुराण है। उसमें भगवान् महावीर के निर्वाण का वर्णन करते हुए लिखा है—'महावीर भगवान् भव्यजीवों को उपदेश देते हुए पावानगरी में पधारे और वहाँ के एक मनोहर उद्यान में चतुर्थ काल के तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी रह जाने पर कार्तिकी अमावस्या के प्रभातकालीन बेला के समय, योग का निरोध करके कर्मों का नाश करके मुक्ति को प्राप्त हुए। चारों प्रकार के देवताओं ने आकर उनकी पूजा की और दीपक जलाये। उस समय उन दीपकों के प्रकाश से पावानगरी का आकाश प्रदीप्त हो रहा था। उसी समय से भक्त लोग जिनेश्वर की पूजा करने के लिए भारतवर्ष में प्रतिवर्ष उनके निर्वाण दिवस के उपलक्ष्य में दीपावली मनाते हैं।

जिस दिन भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ, उसी दिन सायंकाल में उनके प्रधान शिष्य गौतम गणधर को पूर्णज्ञान-केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। मुक्ति और ज्ञान को जैनधर्म में सबसे बड़ी लक्ष्मी माना है और प्रायः मुक्तिलक्ष्मी और ज्ञानलक्ष्मी के नाम से ही शास्त्रों में उनका उल्लेख किया गया है, अतः संभव है कि आध्यात्मिक लक्ष्मी के पूजन की प्रथा ने धीरे-धीरे जनसमुदाय में बाह्य लक्ष्मी के पूजन का रूप ले लिया हो। बाह्यदृष्टिप्रधान मनुष्य समाज में ऐसा प्रायः देखा जाता है। लक्ष्मी पूजन के समय मिट्टी का घरौंदा (हटड़ी) और खेल-खिलौने भी रखे जाते हैं। इस बारे में लोग कहा करते हैं कि यह हटड़ी भगवान् महावीर अथवा उनके शिष्य गौतम गणधर की उपदेश सभा (समवसरण) की यादगार में है और चूँकि उनका उपदेश सुनने के लिए मनुष्य, पशु सभी जाते थे अतः उनकी यादगार में उनकी मूर्तियाँ (खिलौने) रखे जाते हैं। इस तरह दीपावली के प्रकाश में हम प्रतिवर्ष भगवान की निर्वाण लक्ष्मी का पूजन करते हैं और जिस रूप में उनकी उपदेश सभा लगती थी, उसका साज सजाते हैं। परम्परागतरूप से गौतम गणधर को प्राप्त केवल ज्ञानलक्ष्मी के प्रतीक में भी लक्ष्मी पूजन की जाती है।

दीपावली के प्रातःकाल में सभी जैन मंदिरों में महावीर निर्वाण की स्मृति में बड़ा उत्सव मनाया जाता है और निर्वाणलाडू चढ़ाकर भगवान की विशेष पूजा की जाती है। इस ढंग की पूजा का आयोजन केवल इसी दिन होता है।

इससे घर-घर में उस दिन जो मिष्ठान्न बनता है, उसका उद्देश्य भी समझ में आ जाता है।

3.11 वीर निर्वाण सम्वत् (Veer Nirvan Samvat)-

कार्तिक कृष्णा अमावस्या सन् 527 बी.सी. को भगवान महावीर का निर्वाण हुआ था। उस तिथि से वीर निर्वाण सम्वत् प्रारम्भ हुआ है। यह विक्रम सम्वत् से 470 वर्ष और ईसवी सन् से 526 वर्ष पुराना है।

3.12 सलूनो या रक्षाबंधन (*Saloono* or Raksha Bandhan)—

दूसरा उल्लेखनीय सार्वजनिक त्योहार, जिसे जैन लोग भी बड़ी श्रद्धा से मनाते हैं, सलूनो या रक्षाबंधन पर्व है। साधारणतः इस त्योहार के दिन घरों में सेमई की खीर बनती है।

साथ ही साथ उत्तर भारत में एक प्रथा और है। उस दिन हिन्दू मात्र के द्वार पर दोनों ओर मनुष्य के चित्र बनाये जाते हैं उन्हें 'सौन' कहते हैं। पहले उन्हें जिमाकर उनके राखी बांधी जाती है, तब घर के लोग भोजन करते हैं।

जैन पुराणों में रक्षाबंधन की कथा मिलती है, जो संक्षेप में इस प्रकार है—

किसी समय उज्जैनी नगरी में श्रीधर्म नाम का राजा राज्य करता था। उसके चार मंत्री थे—बलि, बृहस्पति, नमुचि और प्रह्लाद। एक बार दिगम्बर जैन मुनि अकम्पनाचार्य सात सौ मुनियों के संघ के साथ उज्जैनी में पधारे। मंत्रियों के मना करने पर भी राजा मुनियों के दर्शन के लिए गया। उस समय सब मुनि ध्यानस्थ थे। लौटते हुए मार्ग में एक मुनि से मंत्रियों का शास्त्रार्थ हो गया। मंत्री पराजित हो गये। क्रुद्ध मंत्री रात्रि में तलवार लेकर मुनियों को मारने के लिए निकले। मार्ग में गुरु की आज्ञा से उसी शास्त्रार्थ के स्थान पर ध्यान में मग्न अपने प्रतिद्वन्द्वी मुनि को देखकर मंत्रियों ने उन पर वार करने के लिए जैसे ही तलवार ऊपर उठाई, उनके हाथ ज्यों के त्यों कीलित हो गये। दिन निकलने पर राजा ने मंत्रियों को देश से निकाल दिया। चारों मंत्री अपमानित होकर हस्तिनापुर के राजा पद्म की शरण में आये। वहाँ बलि ने अपने रण कौशल से पद्म राजा के एक शत्रु को पकड़कर उसके सुपुर्द कर दिया। राजा पद्म ने प्रसन्न होकर उसे मुंहमांगा वरदान दिया। समय आने पर बलि ने वरदान मांगने के लिए कह दिया।

कुछ समय बाद मुनि अकम्पनाचार्य का संघ विहार करता हुआ हस्तिनापुर आया और वहीं वर्षावास कर लिया। जब बलि वगैरह को इस बात का पता चला तो वे बहुत घबराये, पीछे उन्हें अपने अपमान का बदला चुकाने की युक्ति सूझ गयी। उन्होंने वरदान का स्मरण दिलाकर राजा पद्म से सात दिन का राज्य मांग लिया। राज्य पाकर बलि ने मुनि संघ के चारों ओर एक बाड़ा खड़ा कर दिया और उसके अन्दर हवन यज्ञ करना शुरू कर दिया।

इधर मुनियों पर यह उपसर्ग प्रारंभ हुआ, उधर मिथिला नगरी में तपस्यारत एक निमित्तज्ञानी मुनि को इस उपसर्ग का पता लग गया। उनके मुंह से 'हा-हा' निकला। पास में बैठे एक क्षुल्लक ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने सब हाल बतलाया और कहा कि विष्णुकुमार मुनि को विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हो गई है वे इस संकट को दूर कर सकते हैं। क्षुल्लक तत्काल अपनी विद्या के बल से मुनि विष्णुकुमार के पास गये और उनको सब समाचार सुनाया। विष्णुकुमार मुनि हस्तिनापुर के राजा पद्म के भाई थे। वे तुरन्त अपने भाई पद्म के पास पहुँचे और बोले, 'पद्मराज! तुमने यह क्या कर रखा है ? अपनी कुलपरम्परा में ऐसा अनर्थ कभी नहीं हुआ। यदि राजा ही तपस्वियों पर अनर्थ करने लगे तो उसे कौन दूर कर सकेगा ? यदि जल ही आग को भड़काने लगे तो फिर उसे कौन बुझा सकेगा ?' उत्तर में पद्म ने बलि को राज्य दे देने का सब समाचार सुनाया और कुछ कर सकने में अपनी असमर्थता प्रकट की। तब विष्णुकुमार मुनि वामनरूप धारण करके बलि के यज्ञ में पहुँचे और बलि के प्रार्थना करने पर तीन पैर धरती उससे मांगी। जब बलि ने दान का संकल्प कर दिया तो विष्णुकुमार ने विक्रियाऋद्धि के द्वारा अपने शरीर को बढ़ाया। उन्होंने अपना पहला पैर सुमेरु पर्वत पर रखा, दूसरा पैर मानुषोत्तर पर्वत पर रखा और तीसरा पैर स्थान न होने से आकाश में डोलने लगा। तब सर्वत्र

हाहाकार मच गया, देवता दौड़ पड़े और उन्होंने विष्णुकुमार मुनि से प्रार्थना की, 'भगवन्! अपनी इस विक्रिया को समेटिये। आपके तप के प्रभाव से तीनों लोक चंचल हो उठे हैं। तब उन्होंने विक्रिया को समेटा। मुनियों का उपसर्ग दूर हुआ और बलि को देश से निकाल दिया गया।

बलि के अत्याचार से सर्वत्र हाहाकार मच गया था और लोगों ने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि जब मुनियों का संकट दूर होगा तो उन्हें आहार कराकर ही भोजन ग्रहण करेंगे। संकट दूर होने पर सब लोगों ने सेमइयों की खीर का हल्का भोजन तैयार किया, क्योंकि मुनि कई दिन के उपवासे थे। मुनि केवल सात सौ थे अतः वे केवल सात सौ घरों पर ही पहुँच सकते थे इसलिए शेष घरों में उनकी प्रतिकृति बनाकर और उसे आहार देकर प्रतिज्ञा पूरी की गई। सबने परस्पर में रक्षा करने का बंधन बांधा, जिसकी स्मृति त्योहार के रूप में अब तक चली आ रही है। दीवारों पर जो चित्र रचना की जाती है उसे 'सौन' कहा जाता है, यह 'सौन' शब्द 'श्रमण' शब्द का अपभ्रंश जान पड़ता है। प्राचीनकाल में जैन साधु श्रमण कहलाते थे। इस प्रकार से सलूनो या रक्षाबंधन त्योहार जैन त्योहार के रूप में जैनों में आज भी मनाया जाता है। उस दिन विष्णुकुमार और सात सौ मुनियों की पूजा की जाती है। उसके बाद परस्पर में राखी बांधकर दीवारों पर चित्रित 'सौन' को आहारदान दिया जाता है। तब सब भोजन करते हैं और गरीबों को दान भी देते हैं।

3.13 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-पर्यूषण पर्व का शाब्दिक अर्थ बताइये ?

प्रश्न 2-षट्खण्डागम नामक सिद्धान्त ग्रंथ की रचना किसने की ?

प्रश्न 3-जैन संस्कृति के अनुसार दीपावली पर्व क्यों मनाया जाता है ?

प्रश्न 4-अक्षय तृतीया पर्व किस तिथि को और क्यों मनाया जाता है ?

प्रश्न 5-रत्नत्रय पर्व किन-किन हिन्दी महीनों में आता है ?

पाठ-4—प्रमुख जैन तीर्थक्षेत्र (Important Jain Pilgrimages)

4.1 तीर्थ शब्द की व्याख्या (Definition of The Word 'Teerth')—

तीर्थ शब्द की व्याख्या करते हुए जैनाचार्यों ने लिखा है—"तीर्यते संसार सागरो येनासौ तीर्थः"अर्थात् जिसके द्वारा संसाररूपी महासमुद्र को तिरा जावे.पार किया जावे उसे तीर्थ कहा जाता है।

तीर्थ के भेद (Types of Teerth)—उस तीर्थ के प्रथमतः दो भेद किये हैं—भावतीर्थ, द्रव्यतीर्थ

भावतीर्थ (*Bhavteerth*)—आत्मा के परमशुद्ध परिणाम को भावतीर्थ कहते हैं क्योंकि शुद्ध भावों से ही जीव परमात्मपद को प्राप्त करता है।

द्रव्यतीर्थ (*Dravyateerth*)—महापुरुषों की चरणरज से पवित्र भूमियाँ द्रव्यतीर्थ के रूप में मानी जाती हैं। इनकी यात्रा को समाप्त करने की भावना भाते हैं।

एक गीत में तीर्थयात्रा का फल संजोया गया है—

तीर्थयात्रा का मंगल गीत (Song of *Teerthyatra*)—

तर्ज–जरा सामने तो............

तीरथयात्रा का पुण्य विशाल है, इसकी दूजी न कोई मिशाल है।।
इससे आत्मा बनेगी परमात्मा, भवसागर से होकर पार है।।टेक।।
कोई गंगा को तीरथ कह, उसमें डुबकी लगाते हैं।
कोई संगम तट पर जाकर, निज को शुद्ध बनाते हैं।।
सच्चे तीरथ की कीरत विशाल है, इसकी दूजी न कोई मिशाल है।।1।।
सत्य अहिंसा करुणा की, नदियाँ जहां कल कल बहती हैं।
उनमें पापों के क्षालन को, जनता आतुर रहती है।।
वही तीरथ अलौकिक विशाल है, इसकी दूजी न कोई मिशाल है।
इससे आत्मा बनेगी परमात्मा, भवसागर से होकर पार है।।2।।
कहीं किसी पर्वत पर जाकर, महामुनी तप करते हैं।
वृक्षों के नीचे भी तपकर, केवलज्ञानी बनते हैं।
वे ही तीरथ कहाते विशाल हैं, इसकी दूजी न कोई मिशाल है।
इससे आत्मा बनेगी परमात्मा भवसागर से होकर पार हैं।।3।।
ये सब द्रव्य तीर्थ हैं चेतन भाव तीर्थ कहलाता है।
चलते फिरते तीर्थ साधुगण जिनका मोक्ष से नाता है।।
"चंदनामति" ये तीरथ विशाल है, इसकी दूजी न कोई मिशाल है।
इससे आत्मा बनेगी परमात्मा, भवसागर से होकर पार है।।4।।

4.2 तीर्थों के प्रकार (Classification of *Teerths*)—

इस प्रकार से तीर्थों की महिमा को बतलाने जो पुण्यस्थल हैं उन्हें तीर्थ कहते हैं। उन तीर्थों को तीन भागों में विभक्त किया गया है–तीर्थक्षेत्र, सिद्धक्षेत्र, अतिशयक्षेत्र।

तीर्थक्षेत्र (*Teerthkshetra*)—तीर्थंकर भगवन्तों के गर्भ–जन्म–दीक्षा–केवलज्ञान कल्याणकों से पवित्र स्थल वास्तविक तीर्थक्षेत्र की श्रेणी में आते हैं तथा अन्य महापुरुषों के भी जन्म अथवा दीक्षा आदि से पावन भूमि को भी तीर्थ

की संज्ञा प्राप्त हो जाती है। जैसे–अयोध्या, पावापुर, गिरनारजी, सोनागिरी, मांगीतुंगी, कुंथलगिरि आदि।

सिद्धक्षेत्र (*Siddhkshetra*)—जहाँ से तीर्थंकर भगवान अथवा कोई महामुनि आदि मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं वे स्थान सिद्धक्षेत्र कहे जाते हैं। जैसे–सम्मेद शिखर, चम्पापुर, पावापुर, गिरनारजी, सोनागिरी, मांगीतुंगी, गजपंथा इत्यादि।

अतिशय क्षेत्र (*Atishayakshetra*)—जहाँ पर किसी प्रकार के अतिशय. चमत्कार प्रकट हो जाते हैं वे स्थल अतिशय क्षेत्र के नाम से जाने जाते हैं । जैसे–महावीर जी, तिजारा जी, चांदखेड़ी आदि ।

शाश्वततीर्थ (Eternal *Teerths*)—प्रकार के तीर्थक्षेत्र, सिद्धक्षेत्र और अतिशयक्षेत्र वर्तमान में भारत की धरती पर सैकड़ों की संख्या में हैं। उनमें से अयोध्या और सम्मेदशिखरजी ये दो तीर्थ शाश्वततीर्थ के रूप में जैन आगम ग्रंथों में माने गये हैं, क्योंकि अनादिकाल से हमेशा इस धरती पर चतुर्थकाल में होने वाले 24–24 तीर्थंकर अयोध्या में ही जन्मे हैं और आगे अनन्तकाल तक अयोध्या में ही जन्मेंगे।

4.3 हुण्डावसर्पिणी काल के दोष (Drawbacks of *Hundavasarpini Kal*)—

इसी प्रकार से सभी तीर्थंकरों ने सम्मेदशिखर पर्वत से ही निर्वाणधाम को प्राप्त किया है और आगे भी वहीं से निर्वाण प्राप्त करेंगे।

वर्तमान युग में भी सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की वन्दना का महत्व जैन समाज में अत्यधिक माना जाता है।

परन्तु यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने की है कि वर्तमान युग हुण्डावसर्पिणी काल के नाम से जाना जाता है। यह असंख्यातों कल्पकालों के बाद एक बार आता है और इसमें कई प्रकार के अनहोने कार्य होते हैं। जैसे–

(1) हमेशा तो चतुर्थकाल में तीर्थंकर जन्म लेते थे किन्तु इस बार तीसरे काल में ही प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव (आदिनाथ) का जन्म हो गया और तृतीयकाल के अन्त में ही उनका निर्वाण भी हो गया। पुनः चतुर्थ काल में भगवान अजितनाथ से महावीर तक 23 तीर्थंकर हुए।

(2) चौबीस तीर्थंकर में से पाँच तीर्थंकर (ऋषभदेव, अजितनाथ, अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ और अनंतनाथ) भगवान ही अयोध्या में जन्मे हैं तथा अन्य 19 तीर्थंकरों ने अन्यत्र स्थानों पर जन्म ले लिया। इसलिए वर्तमान में 24 तीर्थंकरों की 16 जन्मभूमियाँ हैं।

(3) इसी प्रकार शाश्वत तीर्थ सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र से वर्तमान चौबीसों के 20 तीर्थंकर भगवान मोक्ष गये हैं, शेष 4 तीर्थंकर कैलाशपर्वत, चम्पापुर, गिरनार और पावापुर से मोक्ष चले गये। इसलिए आज 24 भगवान की 5 निर्वाण भूमियाँ मानी जाती है।

(4) प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के 101 पुत्रों में से भरत प्रथम चक्रवर्ती बने, बाहुबली प्रथम कामदेव बने, वृषभसेन प्रथम गणधर मुनिराज बने, अनंतवीर्य मोक्षगामी हुए ब्राह्मी–सुन्दरी कन्याएँ प्रथम आर्यिका बनीं।

किन्तु बाहुबली के द्वारा चक्रवर्ती भरत का पराभव–अपमान हुआ यह हुण्डावसार्पिणी काल का दोष समझना चाहिए।

इसी प्रकार के कुछ दोष इस युग में उत्पन्न हो गये हैं, फिर भी अनेकानेक धर्म तीर्थों एवं धर्मगुरुओं के कारण जिनधर्म की प्रभावना आज भी निर्बाधरूप से हो रही है और आगे पंचमकाल के अन्त तक होती रहेगी।

तीन प्रकार के भेदों में विभक्त तीर्थ वर्तमान में लगभग 350 की संख्या में पाये जा रहे हैं। इन्दौर से प्रकाशित ''तीर्थक्षेत्र निर्देशिका'' पुस्तक में लगभग इन सभी तीर्थों के पते और फोन नं0 उपलब्ध हो जाते हैं अतः तीर्थयात्रियों को काफी सुविधा हो जाती है।

इस जैन इनसाइक्लोपीडिया में इन तीर्थों के सचित्र वर्णन आपको प्राप्त होंगे। कि प्रत्येक तीर्थ पर जितने जिनमंदिर हैं उनके चित्र एवं मंदिर में जितनी वेदियाँ हैं उनके चित्र, वेदी में विराजमान प्रतिमाओं की संख्या भी उसमें समाविष्ट करने का भी प्रयास चल रहा है।

4.4 जिनमंदिर और मूर्ति निर्माण का इतिहास एवं महत्व (History & Importance of Making of *Jin-Mandirs* & Idols)—

दिगम्बर जैन आगम ग्रन्थों के अनुसार जिनमंदिर और मूर्तियों के निर्माण की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है, क्योंकि जब-जब तीर्थंकर भगवन्तों के जन्म होने से पूर्व स्वर्ग से इन्द्र धरती पर आते थे तब वे अयोध्या नगरी में सर्वप्रथम चारों दिशाओं में और नगर के मध्यभाग में इस प्रकार पाँच जिनालयों की स्थापना करके ही महल की रचना करते थे एवं उसमें होने वाले तीर्थंकर के माता-पिता का मंगल प्रवेश कराते थे तथा समय-समय पर आकर तीर्थंकर के कल्याणक मनाना, रत्नवृष्टि करना आदि अपने कर्तव्य की पूर्ति करते थे।

श्री जिनसेनाचार्य जी द्वारा (By Shri Jinsenacharya)—श्रीजिनसेनाचार्य रचित महापुराण के अन्तर्गत आदिपुराण में भी वर्णन आया है-

इन्द्र ने अयोध्या का निर्माण करते समय नगर की चारों दिशाओं में और नगर के मध्य में पाँच देवालयों या जिनायतनों की रचना करके जिनायतनों का निर्माण करने और उसमें मूति-र्स्थापना करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया था।

एक बार जब सम्राट भरत कैलाश गिरि पर भगवान ऋषभदेव के दर्शन करके अयोध्या लौटे तो उनका मन भगवान की भक्ति से ओतप्रोत था। उन्होंने भगवान के दर्शन की उस घटना की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए कैलाश शिखर के आकार के घण्टे बनवाये और उन पर भगवान ऋषभदेव की मूर्ति का अंकन कराया। ये घण्टे नगर के चतुष्पथों, गोपुरो,ए राजप्रासाद के द्वारों और ड्यौढ़ियों में लटकवाये।

किन्तु इतने से सम्राट भरत के मन को सन्तुष्टि नहीं हुई। इससे भगवान की पूजा का उनका उद्देश्य पूरा नहीं होता था। तब उन्होंने इन्द्र द्वारा बनाये गए जिनायतनों से प्रेरणा प्राप्त करके कैलाशगिरि पर 72 जिनायतनों का निर्माण कराया और उनमें अनर्घ्य रत्नों की प्रतिमायें विराजमान कराई। अतः साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर यह स्वीकार करना असंगत न होगा कि नागरिक सभ्यता के विकास-काल को उषा-वेला में ही मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हो गया था।

पौराणिक जैन साहित्य में मन्दिरों और मूर्तियों के उल्लेख विभिन्न स्थलों पर प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। सगर चक्रवर्ती के साठ हजार पुत्रों ने भरत चक्रवर्ती द्वारा बनाये हुए इन मन्दिरों की रक्षा के लिए भारी उद्योग किया था और उनके चारों ओर परिखा खोदकर भागीरथी के जल से उसे पूर्ण कर दिया था। लंकाधिपति रावण इन मन्दिरों के दर्शनों के लिए कई बार आया था। लंका में एक शान्तिनाथ जिनालय था, जिसमें रावण पूजन किया करता था और लंका विजय के पश्चात् रामचन्द्र, लक्ष्मण आदि ने भी उसके दर्शन किये थे।

4.5 एक ऐतिहासिक तथ्य (A Historical Fact)—

पं. श्री बलभद्र जी ने "जैनधर्म का प्राचीन इतिहास" (भाग 1) में उल्लेख किया है कि-

साहित्य में ईसा पूर्व 600 से पहले के मन्दिरों के उल्लेख मिलते हैं। भगवान पार्श्वनाथ के काल में किसी कुवेरा देवी ने एक मन्दिर बनवाया था, जो बाद में देवनिर्मित बौद्ध स्तूप कहा जाने लगा। यह सातवें तीर्थकर सुपार्श्वनाथ के काल में सोने का बना था। जब लोग इसका सोना निकाल कर ले जाने लगे तब कुवेरा देवी ने इस प्रस्तर खण्डों और ईंटों से ढंक दिया। (विविध तीर्थ कल्प-मथुरापुरी कल्प)। स्थापना की इस अनुपम कलाकृति का उल्लेख कंकाली टीला (मथुरा) से प्राप्त भगवान मुनिसुव्रत की द्वितीय सदी की प्रतिमा की चरण-चौकी पर अंकित मिलता है।

भगवान पार्श्वनाथ के पश्चात् दन्तिपुर (उड़ीसा) नरेश करकण्डु ने तेरापुर गुफाओं में गुहा-मन्दिर (लयण) बनवाये और उनमें पार्श्वनाथ की पाषाण प्रतिमा विराजमान कराई। ये लयण और प्रतिमा अबतक विद्यमान है। करकण्डु चरिउ आदि ग्रन्थों के अनुसार तो ये लयण और पार्श्वनाथ-प्रतिमा करकण्डु नरेश से भी पूर्ववर्ती थे।

पुरातत्त्ववेत्ताओं के मत में लोहानीपुर (पटना का एक मुहल्ला) में नाला खोदते समय जो तीर्थंकर–प्रतिमा उपलब्ध हुई है, वह भारत की मूर्तियों में प्राचीनतम है। यह आजकल पटना म्यूजियम में सुरक्षित है। इसका सिर नहीं है। कुहनियों और घुटनों से भी खण्डित है। किन्तु कन्धों और बाहों की मुद्रा से यह खड्गासन सिद्ध होती है तथा इसकी चमकीली पालिश से इसे मौर्यकाल (320–185 ई0 पू0) की माना गया है। हड़प्पा में जो खण्डित जिनप्रतिमा मिली है, उससे लोहानीपुर की इस जिन–प्रतिमा में एक अद्भुत सादृश्य परिलक्षित होता है। और इसी सदृश्य के आधार पर कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि भारतीय मूर्ति–कला का इतिहास वर्तमान मान्यता से कहीं अधिक प्राचीन है। इससे यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि देव–मूर्तियों के निर्माण का प्रारम्भ जैनों ने किया। उन्होंने ही सर्वप्रथम तीर्थकर–मूर्तियों का निर्माण करके धार्मिक जगत को एक आदर्श प्रस्तुत किया। एक अन्य मूर्ति के सम्बन्ध में उदयगिरि की हाथीगुफा में एक शिलालेख मिलता है। इस शिलालेख के अनुसार कलिंग नरेश खारवेल मगध नरेश वहसतिमित्र को परास्त करके छत्र–भृगांरादि के साथ 'कलिंग जिन ऋषभदेव' की मूर्ति वापिस कलिंग लाये थे जिसे नन्द सम्राट कलिंग से पाटलिपुत्र ले गये थे। सम्राट् खारवेल ने इस प्राचीन मूर्ति को कुमारी पर्वत पर अर्हत्प्रासाद बनवाकर विराजमान किया था। इस ऐतिहासिक शिलालेख की इस सूचना को अत्यन्त प्रामाणिक माना गया है। इसके अनुसार मौय–र्काल से पूर्व में भी एक मूर्ति थी, जिसे 'कलिंगजिन' कहा जाता था।

4.6 मंदिर निर्माण का इतिहास (History of Temple-Building)—

मन्दिरों का निर्माण कब प्रारम्भ हुआ, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। पुरातात्विक साक्ष्यों के अनुसार जैन मन्दिरों का निर्माण काल जैन प्रतिमाओं के निर्माणकाल से प्राचीन प्रतीत नहीं होता। लोहानीपुर, श्रावस्ती, मथुरा आदि में जैन मन्दिरों के अवशेष उपलब्ध हुए हैं, किन्तु अब तक सम्पूर्ण मन्दिर कहीं पर भी नहीं मिला। इसलिये प्राचीन जैन मन्दिरों का रूप क्या था, यह निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता।

किन्तु गुहा–मन्दिर और लयण ईसा पूर्व सातवीं–आठवीं शताब्दी तक के मिलते हैं। तेरापुर के लयणए उदयगिरि–खण्डगिरि के गुहामन्दिर, अजन्ता–एलोरा और बादामी की गुफाओं मे उत्कीर्ण जैन मूर्तियाँ इस बात के प्रमाण हैं कि गुफाओं को मन्दिरों का रूप प्रदान कर उनका धार्मिक उपयोग ईसा पूर्व से होने लगा था। इन गुहामन्दिरों का विकास भी हुआ। विकास का यह रूप मात्र इतना ही था कि कहीं–कहीं गुफाओं में भित्ति–चित्रों का अंकन किया गया। ऐसे कलापूर्ण भित्ति चित्र सित्तन्नवासन आदि गुफाओं में अब भी मिलते हैं। गुहा मन्दिरों का सामान्य मन्दिरों की अपेक्षा स्थायित्व अधिक रहा। इसीलिये हम देखते हैं कि ईसा पूर्व का कोई मन्दिर आज विद्यमान नहीं है, जबकि गुहा–मन्दिर अब भी मिलते हैं। इस प्रकार दिगम्बर साहित्यिक साक्ष्य के अनुसार कर्मभूमि के प्रारम्भिक काल में इन्द्र ने अयोध्या में पाँच मन्दिरों का निर्माण किया भरत चक्रवर्ती ने 72 जिनालय बनवाये शत्रुघ्न ने मथुरा में अनेक जिनमन्दिरों का निर्माण कराया। जैन मान्यतानुसार तो तीन लोकों की रचना में कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्यालयों का पूजा–विधान जैन परम्परा में अब तक सुरक्षित है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि जैन परम्परा में जिन चैत्यालयों की कल्पना बहुत प्राचीन है।

किन्तु पुरातत्व को ज्ञात जैन मन्दिरों का प्रारम्भिक रूप–विधान कैसा थाद्ध इसमें अवश्य मतभेद दृष्टिगोचर होता है। लगता है, प्रारम्भ में मन्दिर सादे बनाये जाते थे। उन पर शिखर का विधान पश्चात्काल में विकसित हुआ। शिखर सुमेरु और कैलाश के अनुकरण पर बने। अनेक प्राचीन सिक्कों पर मन्दिरों का प्रारम्भिक रूप माना है। ई0 पू0 द्वितीय और प्रथम शताब्दी के मथुरा–जिनालयों में दो विशेषतायें दिखाई देती हैं–प्रथम वेदिका और द्वितीय शिखर। इस सम्बन्ध में प्रो0 कृष्णदत्त वाजपेयी का अभिमत है कि मन्दिर के चारों ओर वृक्षों की वेष्टनी बनाई जाती थी। इसे ही वेदिका कहा जाता था। बाद में यह वेष्टनों प्रस्तरनिर्मित होने लगी।

मौर्या और शुंग काल में जैन मन्दिरों का निर्माण अच्छी संख्या में होने लगा था। उस समय ऊचें स्थान पर स्तम्भों के ऊपर छत बनाकर मन्दिर बनाये जाते थे। छत गोलाकार होती थी, पश्चात् अण्डाकार बनने लगी। शक–सातवाहन–

काल (ई0 पू0 100 से 200 ई0) में मन्दिरों का निर्माण और अधिक संख्या में होने लगा। इस काल में जैन मन्दिरों, उनके स्तम्भों और ध्वजाओं पर तीर्थंकर की मूर्ति बनाई जाने लगी। इस काल में प्रदक्षिणा-पथ भी बनने लगे जो प्राय: काष्ठ की वेष्टनी से बनाये जाते थे। कुषाण काल में ये पाषाण के बनने लगे। कुषाण काल में जैन मन्दिर और भी अधिक बनने लगे। इस काल में मथुरा, अहिच्छत्र, कौशाम्बी, कम्पिला और हस्तिनापुर प्रमुख जैन केन्द्र थे।

गुप्त काल (ई0 चैथी से छटी शताब्दी) में मन्दिरों का निर्माण प्रचुरता से होने लगा। सौन्दर्य और मन्दिरों के अलंकरण पर विशेष ध्यान दिया गया। इस काल में स्तम्भों को पत्रावली और मांगलिक चिन्हों से अलंकृत किया जाने लगा। तोरण और सिरदल के उपर तीर्थंकर मूर्ति बनाई जाने लगी। गर्भगृह के ऊपर शिखर बनने लगा। बाहर स्तम्भों पर आधारित मण्डप की रचना होने लगी। बाह्य भित्तियों पर मूत्त्यिों का अंकन होने लगा।

ईसवी सन् 600 के बाद उत्तर भारत में नागर शैली और दक्षिण भारत में द्रविड़ शैली का विशेष रूप से विकास हुआ। शिखर के अलंकरण की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। इस प्रकार विभिन्न कालों में मन्दिरों के रूप और कला में विभिन्न परिवर्तन होते रहे। कला एकरूप होकर कभी स्थिर नहीं रही। समय के प्रभाव से वह अपने आपको मुक्त भी नहीं कर सकी। एक समय थाए जब तीर्थंकर प्रतिमा अष्ट प्रातिहार्य युक्त बनाई जाती थी किन्तु आज तो तीर्थकरों के साथ अष्ट प्रातिहार्य का प्रचलन ही समाप्त सा हो गया है जबकि शास्त्रीय दृष्टि से यह आवश्यक है।

यह प्रकरण इसलिये दिया गया है जिससे विभिन्न शैलियों के प्राचीन मन्दिरों के काल-निर्णय करने में पाठकों को मार्गदर्शक तत्वों की जानकारी हो सके।

4.7 लांछन (Symbol)—

तीर्थकर चौबीस हैं। प्रत्येक तीर्थंकर का एक चिन्ह है, जिसे लांछन कहा जाता है। तीर्थंकर-मूर्तियां प्राय: समान होती हैं। केवल ऋषभदेव की कुछ मूर्तियों के सिर पर जटायें पाई जाती हैं तथा पार्श्वनाथ की मूर्तियों के ऊपर सर्प का फण होता है। सुपार्श्वनाथ की कुछ मूत्त्यिों के सिर के उपर भी सर्प का फण मिलते हैं। पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ के सर्प-फणों में साधारण सा अन्तर मिलता है। सुपार्श्वनाथ की मूर्तियों के ऊपर पाँच फण होते हैं और पार्श्वनाथ की मूर्तियों के सिर के ऊपर सात, नौ, ग्यारह अथवा सहस्त्र सर्प-फण पाये जाते हैं। इन तीर्थंकरों के अतिरिक्त शेष सभी तीर्थकरों की मूर्तियों में कोई अन्तर नहीं होता। उनकी पहचान चरण-चौकी पर अंकित उनके चिन्हों से ही होती है। चिन्ह न हो तो दर्शक को पहचानने में बड़ा भ्रम हो जाता है। कभी-कभी तो लांछनरहित मूर्ति को साधारण जन चतुर्थकाल की मान बैठते हैं, जबकि वस्तुत: श्रीवत्स लांछन और अष्ट प्रातिहार्य से रहित मूर्ति सिद्धों की कही जाती है। इसलिये मूर्ति के द्वारा तीर्थंकर की पहचान करने का एकमात्र साधन तीर्थकर-प्रतिमा की चरण-चैकी पर अंकित उसका चिन्ह ही है। इसलिये तीर्थकर-मूर्ति-विज्ञान में चिन्ह या लांछन का अपना विशेष महत्व है।

4.8 तीर्थंकर भगवान के चिन्ह (Symbols of Teerthankar Bhagwants)—

इन चौबीस तीर्थंकरों के चिन्ह निम्न प्रकार हैं—

1. भगवान ऋषभदेव का –वृषभ (बैल)
2. अजितनाथ का –हाथी
3. संभवनाथ का –अश्व (घोड़ा)
4. अभिनन्दननाथ का –बन्दर
5. सुमतिनाथ का –चक्रवाक पक्षी (चकवा)
6. पद्मप्रभ का –कमल

7. सुपार्श्वनाथ का	–स्वस्तिक
8. चन्द्रप्रभ का	–अर्धचन्द्र
9. पुष्पदंतनाथ का	–मगर
10. शीतलनाथ का	–कल्पवृक्ष
11. श्रेयांसनाथ का	–गेंडा
12. वासुपूज्यनाथ का	–महिष (भैंसा)
13. विमलनाथ का	–शूकर
14. अनंतनाथ का	–सेही
15. धर्मनाथ का	–वज्रदण्ड
16. शांतिनाथ का	–हिरण
17. कुंथुनाथ का	–बकरा
18. अरनाथ का	–मछली
19. मल्लिनाथ का	–कलश
20. मुनिसुव्रतनाथ का	–कछुआ
21. नमिनाथ का	–नीलकमल
22. नेमिनाथ का	–शंख
23. पार्श्वनाथ का	–सर्प
24. महावीर का	–सिंह

4.9 उपसंहार (Conclusion)—

यहाँ पर यह थोड़ा सा प्राचीन परिचय जिनमंदिर और मूर्तियों के निर्माण के सम्बन्ध में प्रदान किया गया है। वर्तमान में भी पूरे देश के अन्दर अतिशय सुन्दर शिल्पकलायुक्त मंदिरों के निर्माण हो रहे हैं और जिनमूर्तियों का शिल्प भी अब पूर्व काल की अपेक्षा काफी अच्छे रूप में निखर कर आया है। मूर्ति निर्माण के संदर्भ में जयपुर की मूलचन्द रामचन्द्र नाठा फर्म भी अति प्रसिद्ध हुई है। इनके द्वारा बड़ी-बड़ी प्रतिमाएँ निर्मित करवाकर अनेक स्थान पर विराजमान की गई हैं। उनमें से हस्तिनापुर के जम्बूद्वीप तीर्थ परिसर में सूरजनारायण नाठा की देखरेख में एक इंच की अष्ट धातु प्रतिमा से लेकर (तेरहद्वीप एवं तीनलोक रचना में विराजमान) 31-31 फुट उत्तुंग (भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरनाथ की) खड्गासन प्रतिमाएँ विशेष दर्शनीय हैं। मंदिर एवं मूर्तियों की संख्या-अकृत्रिम जिनमंदिरों की गणना जो तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रन्थों में कही है वह तीनों लोकों की अपेक्षा आठ करोड़ छप्पन लाख सत्तानवे हजार चार सौ इक्यासी (8,56,97,481) है तथा उन सबमें 108.108 प्रतिमाएँ विराजमान रहती हैं अतः सब मिलाकर कुल नौ सौ पच्चीस करोड़, त्रेपन लाख, सत्ताईस हजार, नौ सौ अड़तालिस (925 53, 27, 948) प्रतिमाओं की संख्या मानी है। इसके अलावा भवन-व्यंतर और ज्योतिर्वासी देवों के भवनों की अपेक्षा असंख्यातों जिनमंदिर तथा असंख्यातों जिन प्रतिमाएँ जानना चाहिए।

वर्तमान में हम सभी को इन अकृत्रिम मंदिरों के दर्शन उपलब्ध नहीं हैं किन्तु कृत्रिम मंदिर बनाने की परम्परा भी जो प्राचीन काल से धरती पर चली आ रही है उन्हीं के विषय में यहाँ आप सभी को जानना है। भारतदेश की सीमा जो आज उपलब्ध हो रही है उसमें विभिन्न प्रदेशों के अन्दर दिगम्बर जैन तीर्थों की संख्या लगभग 300 है और दिगम्बर जैन मंदिर लगभग 12000 की संख्या में हैं।

4.10 जैन रामायण के अनुसार (According to Jain Ramayan)—

पदमपुराण (जैनरामायण) में श्री रविषेणाचार्य ने 32 वें पर्व में कहा है—

भवनं यस्तु जैनेन्द्रं, निर्मापयति मानवः।
तस्य भोगोत्सवः शक्यः केन वक्तुं सुचेतसः।।172।।
प्रतिमां यो जिनेन्द्राणां, कारयत्यचिरादसौ।
सुरासुरोत्तमसुखं, प्राप्य याति परं पदम्।।173।।
व्रतज्ञान तपोदानैर्यान्युपात्तानि देहिनः।
सर्वैस्त्रिष्वपिकालेषु, पुण्यानि भुवनत्रये।।174।।
एकस्मादपि जैनेन्द्र बिम्बान् भावेन कारितान्।
यत्पुण्यं जायते तस्य न संमान्त्यतिमात्रतः।।175।।

अर्थ—जो मनुष्य जिनमंदिर बनवाता है उस शुद्ध चित्तवाले मनुष्य के भोगोत्सव का वर्णन कौन कर सकता है अर्थात् उसको संसार के इतने भोगोपभोग के साधन प्राप्त होते हैं जिनका वर्णन करना भी अशक्य है।।172।।

जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा बनवाता है वह शीघ्र सुर तथा असुरों के उत्तम सुख प्राप्त कर परमपद को प्राप्त होता है। अर्थात् वह कुछ भवों में ही मोक्षसुख को प्राप्त कर लेता है।।173।।

तीनों कालों और तीनों लोकों में व्रत.ज्ञान.तप और दान के द्वारा मनुष्य के जो पुण्यकर्म संचित होते हैं वे भावपूर्वक एक जिनेन्द्र प्रतिमा बनवाने से उत्पन्न हुए पुण्य की बराबरी नहीं कर सकते हैं।।174-175।।

इसी प्रकार से आचार्य श्रीवसुनंदि स्वामी ;बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुए हैं, ने अपने श्रावकाचार ग्रंथ में कहा है-

कुत्थुंभरिदलमत्तं जिणभवणे जो ठवेइ जिणपडिमं।
सरिसवमेत्तं पि लहेइ सो णरो तित्थयरपुण्णं।।481।।
जो पुण जिणिंदभवणं समुणणयं परिहि.तोरणसमग्गं।
णिम्मावइ तस्स फलं को सक्कइ वणिणउं सयलं।।482।।

अर्थ—जो मनुष्य कुंथुम्भरी (धनिया) के दलमात्र अर्थात् पत्र बराबर जिनभवन बनवाकर उसमें सरसों के बराबर भी जिनप्रतिमा को स्थापन करता है, वह तीर्थकर पद पाने के योग्य पुण्य को प्राप्त करता है, तब जो कोई अति उन्नत और परिधि, तोरण आदि से संयुक्त जिनेन्द्रभवन बनवाता है, उसका समस्त् वर्णन करने के लिए कोन समर्थ हो सकता है।।481-482।।

आप सभी पाठकों एवं श्रद्धालु भक्तों के लिए यह मंगल प्रेरणा है कि उपलब्ध तीर्थ एवं मंदिरों के दर्शन करके असीम पुण्य का संचय करें तथा मंदिर-मूर्तियों के निर्माण में उनके जीर्णोद्धार विकास में अपने तन मन धन का सदुपयोग करें एवं जैन संस्कृति की सुरक्षा में अपना योगदान देकर कर्तव्य का पालन करें।

जैनों के तीर्थों की संख्या बहुत है। यहाँ सबको बतला सकना शक्य नहीं है, क्योंकि जैन धर्म की अवनति के कारण अनेक प्राचीन तीर्थ आज विस्मृत हो चुके हैं, अनेक स्थान दूसरों के द्वारा अपहृत कर लिये गये हैं। कई प्रसिद्ध स्थानों पर जैनमूर्तियाँ दूसरे देवताओं के रूप में पूजी जा रही हैं।

जैनधर्म में दिगम्बर ही नहीं श्वेताम्बर आदि सम्प्रदायों के भी तीर्थस्थान हैं। उनमें बहुत से ऐसे हैं जिन्हें दोनों ही मानते पूजते हैं और बहुत से ऐसे हैं जिन्हें या तो दिगम्बर ही मानते हैं या केवल श्वेताम्बर अथवा एक सम्प्रदाय एक स्थान में मानता है तो दूसरा दूसरे स्थान में। कैलाश, चम्पापुर, पावापुर, गिरनार, शत्रुञ्जय और सम्मेदशिखर आदि ऐसे तीर्थ हैं जिनको दोनों ही मानते हैं। गजपंथा, मांगीतुंगी, पावागिरि, द्रोणगिरि, मेढ़ागिरि, सिद्धवरकूट, बड़वानी आदि तीर्थ ऐसे हैं,

जिन्हें केवल दिगम्बर परम्परा ही मानती है और इसी तरह आबूगिरि, शंखेश्वर आदि कुछ ऐसे तीर्थ हैं जिन्हें श्वेताम्बर सम्प्रदाय ही मानता है। यहाँ प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्रों का सामान्य परिचय प्रान्तवार कराया जाता है।

4.11 झारखण्ड एवं बिहार प्रदेश के प्रमुख तीर्थ (Important Pilgrimages of Jharkhand and Bihar Provinces)—

सम्मेदशिखर (Sammed Shikhar)—झारखण्ड प्रदेश में जैनों का यह एक अतिप्रसिद्ध और अत्यन्त पूज्य शाश्वत सिद्धक्षेत्र है। इसे दिगम्बर और श्वेताम्बर समान रूप से मानते और पूजते हैं। श्री ऋषभदेव, वासुपूज्य, नेमिमाथ और महावीर के सिवाय शेष बीस तीर्थंकरों ने इसी पर्वत से निर्वाण प्राप्त किया था। 23वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ के नाम के ऊपर से आज यह पर्वत 'पारसनाथ हिल' के नाम से प्रसिद्ध है। पूर्वीय रेलवे पर इसके रेलवे स्टेशन का नाम भी कुछ वर्षों से पारसनाथ हो गया है। इस पर्वत की चोटियों पर बने अनेक मंदिरों का दर्शन करने के लिए प्रतिवर्ष हजारों तीर्थयात्री आते हैं। इसकी यात्रा में 18 मील की पर्वत वंदना है और 8 घंटे लगते हैं। प्राचीन ग्रंथों में इसे शाश्वत तीर्थ कहा गया है क्योंकि इस पर्वत से भूतकाल में अनंत तीर्थंकरों ने निर्वाण की प्राप्ति की है तथा भविष्य काल में भी अनन्तों तीर्थंकर इसी पर्वत से मोक्ष जाएंगे। शास्त्र कहते हैं कि इस पर्वत की वंदना करने वाले को नरक व तिर्यंचगति में जन्म नहीं लेना पड़ता। भव्य जीव ही इस पर्वत की यात्रा कर सकते हैं। वर्तमान में पर्वत के अलावा तलहटी में भी अनेक दिगम्बर जैन मंदिर यहाँ निर्मित हो गये हैं।

कुलुआ पहाड़ (Kuluaa Mountain)—यह पहाड़ जंगल में है। गया से वहाँ जाने की पूरी सुविधा है। इसकी चढ़ाई 2 मील है। इस पर सैकड़ों जैन प्रतिमाएँ खण्डित पड़ी हैं। अनेक जैन मंदिरों के भग्नावशेष भी पड़े हैं। कुछ जैन मंदिर और प्रतिमाएँ खण्डित भी हैं। कहा जाता है कि इस पहाड़ पर 10वें तीर्थंकर शीतलनाथ ने तप करके केवलज्ञान प्राप्त किया था। इण्डियन एन्टीक्वायरी (मार्च 1901) में एक अंग्रेज लेखक ने इसके संबंध में लिखा था—पूर्वकाल में यह पहाड़ अवश्य जैनियों का एक प्रसिद्ध तीर्थ रहा होगा, क्योंकि सिवाय दुर्गादेवी की नवीन मूर्ति के और बौद्ध मूर्ति के एक खण्ड के अन्य सब चिन्ह जो पहाड़ पर हैं, ये सब जैन तीर्थंकरों को प्रकट करते हैं।

गुणावां (Gunawa)—यह भगवान महावीर के प्रथम गणधर गौतम स्वामी का निर्वाण क्षेत्र है। गया-पटना (ई. आर.) लाइन में स्थित नवादा स्टेशन से डेढ़ मील है। यहाँ दिगम्बर जैन मंदिर तथा जल के मध्य में भी एक मंदिर है। ईसवी सन् 2004 में यहाँ कमलाकार एक मंदिर का निर्माण करके उसमें गौतम स्वामी की खड्गासन सवा पाँच फीट की प्रतिमा विराजमान की गई, जो अत्यन्त मनोहारी है।

पावापुर (Pawapur)—गुणावां से 13 मील पर अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का यह निर्वाणक्षेत्र है। उसके स्मारकस्वरूप तालाब के मध्य में एक विशाल मंदिर है, जिसको जलमंदिर कहते हैं। जलमंदिर में महावीर स्वामी, गौतम स्वामी और सुधर्मा स्वामी के चरण स्थापित हैं। कार्तिक कृष्णा अमावस्या को भगवान महावीर के निर्वाण दिवस के उपलक्ष्य में यहाँ बहुत बड़ा मेला भरता है। देश के कोने-कोने से जैन यात्री आते हैं। दिगम्बर परम्परा के हजारों श्रद्धालु यात्री दीपावली के दिन यहाँ निर्वाण लड्डू चढ़ाने आते हैं। यहाँ एक दिगम्बर मंदिर व उसके प्रांगण में मानस्तंभ स्थापित है।

भगवान महावीर स्वामी के निर्वाणगमन से पावन पावापुरी सिद्धक्षेत्र बिहार प्रान्त के नालंदा जिले में स्थित है। पावापुरी के मनोहर नामक उद्यान में कमलों से व्याप्त सरोवर के मध्य मणिमयी शिला पर भगवान महावीर विराजमान हुए थे, उस समय समवसरण विघटित हो चुका था। दो दिन तक ध्यान में लीन हुए महावीर स्वामी ने कार्तिक कृष्णा अमावस के दिन प्रातः उषाकाल के समय शुक्लध्यान के द्वारा सर्वकर्म नाशकर निर्वाण प्राप्त कर लिया था। उस समय देवों ने देदीप्यमान दीपकों की पंक्ति से पावापुर नगरी को सब ओर से जगमगा दिया था। तभी से आज तक संसार के प्राणी इस भरतक्षेत्र में प्रतिवर्ष कार्तिक कृ. अमावस्या को दीपावली पर्व मनाने लगे।

भगवान महावीर के निर्वाण के दिन ही सायंकाल में उनके प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी को भी पावापुर में ही

केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

वर्तमान में पावापुर नगरी में जलमंदिर के निकट स्थित पांडुकशिला परिसर में भगवान महावीर स्वामी की खड्गासन प्रतिमा (दिसम्बर 2003 में) स्थापित की गई हैं।

राजगृही या पंचपहाड़ी (Rajgrahi or *Panch Pahari*)—पावापुरी से लगभग 20 किमी. की दूरी पर राजगृही है। एक समय यह मगध देश की राजधानी थी। यहाँ 20वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ का जन्म हुआ था। राजगृही तीर्थ पर पाँच पर्वत हैं। इसी से इसे पंचपहाड़ी भी कहते हैं। महावीर भगवान का प्रथम उपदेश (दिव्यध्वनि रूप) इसी नगरी के विपुलाचल पर्वत पर हुआ था। पाँचों पहाड़ों के ऊपर जैन मंदिर बने हैं। इन सभी की वंदना करने में 15-16 मील की यात्रा हो जाती है।

यहाँ तलहटी में भी तीन मंदिर हैं। जिनमें से एक लाल मंदिर के नाम से जाना जाता है।

अनेकों पौराणिक घटनाओं से परिपूर्ण इस नगरी में दिसम्बर 2003 में भगवान मुनिसुव्रतनाथ का कमल मंदिर निर्मित करके उसमें भगवान की सवा बारह फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान हुई हैं तथा विपुलाचल पर्वत की तलहटी में गौतमस्वामी के मानभंग के प्रतीक में एक उत्तुंग मानस्तंभ का निर्माण भी किया गया है।

कुण्डलपुर (Kundalpur)—यह राजगृही से 13 किमी. पर है। यह भगवान महावीर का वास्तविक जन्मस्थान है। यहाँ सैकड़ों वर्ष प्राचीन भगवान महावीर का मंदिर एवं प्राचीन चरण विराजमान हैं। भगवान महावीर के 2600वें जन्मकल्याणक के अवसर पर सन् 2003-2004 में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से इसका अद्भुत विकास किया गया। यहाँ सात मंजिल का नंद्यावर्त महल, त्रिकाल चौबीसी मंदिर, भगवान ऋषभदेव मंदिर, भगवान महावीर मंदिर, नवग्रहशांति जिनमंदिर का निर्माण हुआ तथा यात्रियों के ठहरने की भी उत्तम व्यवस्था है।

पुराने मंदिर परिसर में 36 फुट ऊँचे इस कीर्तिस्तंभ का निर्माण कराया गया है। इसमें ऊपर दो मंजिलों के चैत्यालयों में भगवान महावीर की 8 प्रतिमाएं विराजमान हैं तथा नीचे की मंजिल में महावीर स्वामी का जीवनचरित्र आदि उत्कीर्ण है।

उपर्युक्त धार्मिक एवं ऐतिहासिक निर्माण के साथ कुण्डलपुर के इस नवविकसित तीर्थ स्थल पर भगवान महावीर की दीक्षामुद्रा वाली (पिच्छी-कमण्डलु सहित 6 फुट खड्गासन) प्रतिमा एवं उनके कौशाम्बी में हुए ऐतिहासिक आहार वाली प्रतिमा (महावीर स्वामी की आहार लेते हुए एवं आहार देते हुए सती चन्दना की) स्थापित हैं तथा अतिथि भवन (तीन मंजिली दो धर्मशाला), पानी की टंकी, तीर्थ परिसर का मुख्य द्वार आदि निर्माण से सहित तीर्थ परिसर अत्यन्त सुसज्जित रूप से निर्मित हैं।

चम्पापुर एवं मन्दारगिरि (Champapur and Mandargiri)—बारहवें तीर्थंकर भगवान वासुपूज्य के पाँचों कल्याणक से पवित्र चम्पापुर तीर्थ है। भागलपुर चम्पापुर से 30 मील पर मन्दारगिरि नामक एक छोटा सा पहाड़ है। इसको बारहवें तीर्थंकर श्री वासुपूज्य स्वामी का मोक्ष स्थान माना जाता है। किन्तु वर्तमान में चम्पापुर को ही पाँचों कल्याणकों का स्थान माना जाता है। चम्पापुर में बीसपंथी व तेरहपंथी कोठी के नाम से प्रचलित स्थान पर जिनालय हैं तथा तेरहपंथी कोठी के परिसर में 31 फुट ऊँची भगवान वासुपूज्य की खड्गासन प्रतिमा ईसवी सन् 2014 में विराजमान की गयी हैं।

पटना (Patna)—यह बिहार प्रान्त की राजधानी है। पटना सिटी में गुलजारबाग स्टेशन के पास में ही एक छोटी सी टीकरी पर चरण पादुकाएं स्थापित हैं। यहाँ से सेठ सुदर्शन ने मुक्तिलाभ किया था। इनकी जीवन कथा अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद है।

4.12 उत्तरप्रदेश (Uttar Pradesh)-

बनारस (Varanasi)—इस नगर के भदैनी घाट मुहाल में गंगा के किनारे पर दो विशाल दिगम्बर जैन मंदिर हैं जो सातवें तीर्थंकर भगवान सुपार्श्वनाथ के जन्मस्थान के रूप में माने जाते हैं। यहाँ पर जैनों का अतिप्रसिद्ध स्याद्वाद महाविद्यालय स्थापित है जिसमें संस्कृति और जैनधर्म की ऊँची शिक्षा दी जाती है। भेलूपुर मोहल्ले में दिगम्बर सम्प्रदाय व श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अलग-अलग दो जिनमंदिर हैं। दिगम्बर जैनों का अति विशाल सुंदर मंदिर है, जिसमें काले पाषाण की सुंदर भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा विराजमान हैं। इस मंदिर में देवी पद्मावती की भी प्राचीन व चमत्कारी प्रतिमा है, जिसकी बहुत मान्यता है। यात्रियों के लिए भी आवास की सुन्दर व्यवस्था है। यह स्थान तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की गर्भ-जन्म एवं दीक्षा भूमि होने से परम पूज्यनीय है। इस प्रकार बनारस दो तीर्थंकरों का जन्मस्थान है। शहर में अन्य भी कई जैन मंदिर हैं।

सिंहपुरी (Simhpuri)—बनारस से 10 किमी. की दूरी पर सारनाथ नाम का स्थान है जो बौद्ध पुरातत्व की दृष्टि से अतिप्रसिद्ध है। यहीं पर किसी समय सिंहपुर नाम का महानगर बसा था, जिसमें 11वें तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथ ने जन्म लिया था। यहाँ पर जैन मंदिर और जैन धर्मशाला है। दिगम्बर जैनों का मंदिर तो बौद्ध मंदिर के ही पास में है यहीं एक विशाल परिसर में भगवान श्रेयांसनाथ की सवा ग्यारह फुट पद्मासन प्रतिमा सन् 2005 में विराजमान हैं।

चन्द्रपुरी (Chandrapuri)—सारनाथ से लगभग 15 किमी. पर चन्द्रवटी नाम का गांव है जो चन्द्रपुरी का भग्नावशेष कहा जा सकता है। जैन पुराणों के अनुसार यहाँ पर आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ भगवान ने जन्म लिया था। यहाँ गंगा के तट पर दिगम्बर जैन मंदिर है।

प्रयाग (Prayag)—यहाँ त्रिवेणी संगम के पास ही एक पुराना किला है। किले के भीतर जमीन के अंदर एक अक्षयवट (बड़ का पेड़) है। कहते हैं कि श्री ऋषभदेव ने यहाँ तप किया था। किले में प्राचीन जैन मूर्तियाँ भी हैं।

इलाहाबाद शहर में भी प्राचीन जैन मंदिर है। शहर से 13 किमी. दूर इलाहाबाद-बनारस हाइवे पर ही ईसवी सन् 2001 में पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर की संस्था द्वारा भगवान ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण किया गया है, जिसमें भगवान ऋषभदेव दीक्षाकल्याणक मंदिर, भगवान ऋषभदेव समवसरण रचना मंदिर, भव्य कैलाशपर्वत, कैलाशपर्वत गुफा मंदिर, भगवान ऋषभदेव कीर्ति स्तंभ आदि दर्शनीय हैं।

यह तीर्थ आज से करोड़ों वर्ष पूर्व का इतिहास जीवन्त कर रहा है। जब युग की आदि में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने अयोध्या में जन्म लेकर राज्यभोग के पश्चात् वैराग्यभाव प्राप्त करके जिस स्थान पर जाकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की थी, वही स्थल "प्रयाग" नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रयाग में वटवृक्ष के नीचे दीक्षा लेकर ध्यानस्थ मुद्रा में भगवान ऋषभदेव ने छह माह तक योग धारण किया था। इसी कथानक को पुनर्जीवित करने हेतु तपस्थली तीर्थ पर निम्न दर्शनीय एवं वंदनीय स्थलों का निर्माण किया गया है।

आधुनिक सुविधायुक्त 26 फ्लैटों एवं कमरों की इस धर्मशाला में यात्रियों की समुचित आवास आदि की व्यवस्था है तथा आचार्य श्री शांतिसागर प्रवचन हाल में विभिन्न कार्यक्रम सम्पन्न होते हैं।

अयोध्या (Ayodhya)—यह तीर्थ पूर्वी उत्तरप्रदेश के फैजाबाद जनपद में अवस्थित है। अयोध्या में भगवान् आदिनाथ, अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ और अनन्तनाथ इन पाँच तीर्थंकरों के जन्म हुए तथा आज से 9 लाख वर्ष पूर्व मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी ने जन्म लेकर अपने आदर्शों के द्वारा नगरी को राममय बना दिया।

जैनधर्म के अनुसार अनन्त तीर्थंकरों की जन्मभूमि होने से यह अयोध्या नगरी शाश्वत एवं अनादि तीर्थ तो है ही, वर्तमान में वहाँ सभी धर्मों के अनुयायी अपने-अपने ढंग से उसे पवित्र तीर्थ मानते हैं।

वर्तमान के दिगम्बर जैन मंदिर (Present Digambar Jain Temples)—

वर्तमान के जैन मंदिरों में कटरा मुहल्ले में एक प्राचीन जैन मंदिर है, जहाँ सन् 1952 में भगवान आदिनाथ, भरत, बाहुबली जी की खड्गासन प्रतिमाएँ विराजमान हुईं, यहाँ 4 और वेदियाँ हैं तथा प्रांगण के बीच में तीर्थंकर सुमतिनाथ भगवान की टोंक है। बेगमपुरा मुहल्ले में भगवान अजितनाथ की टोंक है। कटरा स्कूल तथा ऊँची सरकारी टंकी के पास भगवान अभिनंदननाथ की टोंक है, उसी के पास प्रथम चक्रवर्ती भरत तथा प्रथम कामदेव बाहुबली की टोंक है। करोड़ों वर्षों से बह रही वहाँ सरयू नदी के तट पर राजकीय उद्यान के पीछे बड़े परिसर में भगवान अनन्तनाथ की टोंक है। अयोध्या के रायगंज मोहल्ले में सन् 1965 में विशाल मंदिर का निर्माण होकर 31 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा विराजित हुईं तथा 6 अन्य तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं।

तीर्थ विकास के क्रम में सन् 1993–1994 में यहाँ तीन चौबीसी मंदिर एवं समवसरण मंदिर का निर्माण हुआ। सन् 1995 में राजकीय उद्यान में 21 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा निर्मित हुई, कटरा मंदिर के एक स्थल पर बनी पाण्डुकशिला में शांति–कुंथु–अरहनाथ के चरण विराजमान हुए। सन् 2011 में भगवान ऋषभदेव की टोंक पर सुन्दर जिनमंदिर का निर्माण होकर भगवान ऋषभदेव की श्वेतवर्णी प्रतिमा विराजमान हुई पुनः सन् 2014 तक सभी टोंकों पर उन–उन तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ विराजमान हो चुकी हैं जो तीर्थ के प्राचीन स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए जैन संस्कृति की गौरव गाथा वर्णित कर रही हैं।

इसके अतिरिक्त यहाँ प्रशासन द्वारा भगवान ऋषभदेव नेत्र चिकित्सालय तथा अवध विश्वविद्यालय में भगवान ऋषभदेव जैन पीठ की स्थापना हुई है। क्षेत्र पर यात्रियों के लिए भोजन एवं आवास की समुचित व्यवस्था है।

काकंदी (Kakandi)—गोरखपुर से एन.ई. रेलवे का नोनखार स्टेशन 29 मील है। वहाँ से 3 मील की दूरी पर खुखुन्दु गांव है। इसका प्राचीन नाम किष्किन्धा बतलाया जाता है। यहाँ के मंदिर में श्री पुष्पदंत भगवान की मूर्ति विराजमान है। यह 9वें तीर्थंकर भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि है। यहाँ पर सन् 2010 में विशाल नवीन जिनमंदिर का निर्माण किया गया है, जिसमें 9 फुट उत्तुंग पद्मासन भगवान पुष्पदंतनाथ की प्रतिमा विराजमान की गयी है। तीर्थ परिसर में नवनिर्मित कीर्तिस्तंभ एवं प्राचीन जिनमंदिर भी दर्शनीय है।

श्रावस्ती (सहेटमहेट) (Shravasti)—फैजाबाद से गोंडा रोड पर 21 मील बलरामपुर है। बलरामपुर से 10 मील पर सहेट महेट है। इसका प्राचीन नाम श्रावस्ती बतलाया जाता है जो कि तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ का जन्मस्थान है।

रत्नपुरी (Ratnapuri)—यह स्थान फैजाबाद जिले में सोहावल स्टेशन से डेढ़ मील है। यह श्री धर्मनाथ स्वामी की जन्मभूमि है। यहाँ दो जिनमंदिर हैं।

कम्पिला (Kampila)—यह तीर्थक्षेत्र जिला फरुखाबाद के निकट कायमगंज स्टेशन से 8 मील है। यहाँ तेरहवें तीर्थंकर श्री विमलनाथ के 4 कल्याणक हुए हैं। प्रतिवर्ष चैत्र मास में यहाँ मेला भी भरता है और रथोत्सव होता है।

अहिच्छत्र (Ahichhatra)—बरेली–अलीगढ़ लाइन पर आंवला स्टेशन है। वहाँ से 8 मील रामनगर गांव है। उसी से लगा हुआ यह क्षेत्र है। इस क्षेत्र पर तपस्या करते हुए भगवान पार्श्वनाथ के ऊपर कमठ के जीव ने घोर उपसर्ग किया था और उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

अहिच्छत्र (बरेली) उ.प्र. तीर्थ पर क्षेत्रकमेटी द्वारा भारत में प्रथम बार तीस चौबीसी तीर्थंकरों की 720 जिनप्रतिमाओं से समन्वित ग्यारह शिखरों वाला विशाल जिनमंदिर निर्मित किया गया है।

गाँव के अंदर एक प्राचीन जिनमंदिर है तथा तीर्थ परिसर में तिखाल वाले बाबा का विशाल मंदिर, मानस्तंभ, पार्श्वनाथ पद्मावती मंदिर आदि दर्शनीय हैं।

हस्तिनापुर (Hastinapur)—ऐतिहासिक तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुर अयोध्या के समान ही अत्यन्त प्राचीन एवं पवित्र माना जाता है। जिस प्रकार जैन पुराणों के अनुसार अयोध्या नगरी की रचना देवों ने की थी, उसी प्रकार युग के प्रारंभ में हस्तिनापुर की रचना भी देवों द्वारा की गयी थी। अयोध्या में वर्तमान के पाँच तीर्थंकरों ने जन्म लिया तो हस्तिनापुर को शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ इन तीन तीर्थंकरों को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इतना ही नहीं, इन तीनों जिनवरों के चार-चार कल्याणक (गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान) हस्तिनापुर में इन्द्रों ने मनाए हैं ऐसा वर्णन जैन ग्रंथों में है।

ये तीनों तीर्थंकर चक्रवर्ती और कामदेव पदवी के धारक भी थे। प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव को एक वर्ष 39 दिन के उपवास के पश्चात् हस्तिनापुर में ही युवराज श्रेयांस एवं राजा सोमप्रभ ने इक्षुरस का प्रथम आहार दिया था। उस समय भी वहाँ पर देवों द्वारा पंचाश्चर्य वृष्टि की गई थी एवं सम्राट् चक्रवर्ती भरत ने अयोध्या से हस्तिनापुर जाकर राजा श्रेयांस का सम्मान करके उन्हें "दानतीर्थ प्रवर्तक" की पदवी से अलंकृत किया था। पुराण ग्रंथों में वर्णन आता है कि भरत ने उस प्रथम आहार की स्मृति में हस्तिनापुर की धरती पर एक स्तूप का निर्माण करवाया था। आज तो उसका कोई अवशेष देखने को नहीं मिलता है किन्तु इससे यह ज्ञात होता है कि धर्मतीर्थ एवं दानतीर्थ की प्रशस्ति का उल्लेख उसमें अवश्य होगा। काल के थपेड़ों में वह इतिहास आज समाप्तप्राय हो गया किन्तु हस्तिनापुर एवं उसके आसपास में इक्षु—गन्ने की हरी-भरी खेती आज भी इस बात का परिचय कराती है कि कोड़ाकोड़ी वर्ष पूर्व भगवान के द्वारा आहार में लिया गया गन्ने का रस वास्तव में अक्षय हो गया है इसीलिए उस क्षेत्र में अनेक शुगर फैक्ट्री तथा क्रेशर गुड, खांड और चीनी बनाकर देश के विभिन्न नगरों में भेजते हैं।

इसी प्रकार से हस्तिनापुर की पावन वसुन्धरा पर रक्षाबन्धन कथानक, महाभारत का इतिहास, मनोवती की दर्शन प्रतिज्ञा की प्रारम्भिक कहानी, राजा अशोक व रोहिणी का कथानक आदि प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध हुए हैं। जिनका वर्णन प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त होता है और हस्तिनापुर नगरी की ऐतिहासिकता सिद्ध होती है।

हस्तिनापुर की अर्वाचीन स्थिति (Recent position of Hastinapur)—सन् 1948 में भारत के प्रधानमंत्री स्व. पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उजड़े हुए हस्तिनापुर को पुनः बसाया था जो कि "हस्तिनापुर सेन्ट्रल टाउन" के नाम से जाना जाता है। वहाँ लगभग 20 हजार की जनसंख्या है एवं शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, डाक व्यवस्था, आवागमन सुविधा आदि के समस्त साधन वहाँ सरकार की ओर से उपलब्ध हैं। टाउनेरिया की सक्रियता से हस्तिनापुर कसबे की सारी जनता प्रसन्नतापूर्वक अपना जीवन यापन करती है। यहाँ हिन्दू-मुसलमान, पंजाबी-बंगाली सभी जाति के लोग जातीय एकता के साथ अपने-अपने धर्म एवं ईश्वर की उपासना करते हैं।

तीर्थक्षेत्र की अवस्थिति (Location of Pilgrimage Place)—सेन्ट्रल टाउन से लगभग डेढ़ किमी. दूर जैन तीर्थ क्षेत्र का अवस्थान है। मेरठ से रामराज जाती हुई मुख्य सड़क से बाईं ओर लगभग 400 वर्ष पुराना प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर है। वहाँ के परिसर में अन्य कई नये मंदिरों का निर्माण हुआ है। मंदिर से जम्बूद्वीप के आगे जंगलों में चार तीर्थंकरों के जन्म की प्रतीक नसियाएं दिगम्बर जैन समाज की तथा एक श्वेताम्बर समाज की है जहाँ भक्तगण श्रद्धापूर्वक दर्शन करने जाते हैं।

जम्बूद्वीप रचना तीर्थक्षेत्र की प्रगति का मुख्य कारण है (Main reason of progress of *Teerth* is Jambudweep)—सन् 1974 में जबसे हस्तिनापुर की धरा पर परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने जम्बूद्वीप रचना का शिलान्यास करवाया, तब से तो वहाँ की ख्याति देश-विदेश में फैल गई है। 101 फुट ऊँचे सुमेरु पर्वत से समन्वित जम्बूद्वीप की रचना में विराजमान 205 जिनबिम्ब जहाँ श्रद्धालुओं के पापक्षय में निमित्त हैं, वहीं गंगा-सिंधु आदि नदियाँ, हिमवन आदि पर्वत, भरत-ऐरावत आदि क्षेत्र, लवण समुद्र जनमानस के लिए मनोरंजन के साधन भी हैं। बिजली-फौव्वारों की तथा हरियाली की प्राकृतिक शोभा देखने हेतु दूर-दूर से लोग जाकर वहाँ स्वर्ग

सुख जैसी अनुभूति करते हैं।

जम्बूद्वीप के उस परिसर में कमल मंदिर, ध्यानमंदिर, तीनमूर्ति मंदिर, शान्तिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, भगवान ऋषभदेव मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, अष्टापद मंदिर, तीनलोक रचना, विशाल भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ जिनमंदिर, नवग्रह शांति मंदिर, चौबीसी मंदिर, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना, शांतिनाथ समवसरण मंदिर आदि अद्वितीय एवं नयनाभिराम हैं। जम्बूद्वीप पुस्तकालय, णमोकार महामंत्र बैंक आदि हैं जो भक्तों को भक्ति और ध्यान अध्ययन की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र पर पहुँचने वाले प्रत्येक तीर्थयात्री के लिए जम्बूद्वीप स्थल पर लगभग 500 कमरे हैं जिनमें से अधिकतर डीलक्स फ्लैट और अनेक कोठियाँ भी आधुनिक सुविधायुक्त हर समय तैयार रहते हैं।

आवास सुविधा के साथ-साथ शुद्ध विशाल भोजनालय अपने अतिथियों की सुबह से शाम तक सेवा में तत्पर है। जगह-जगह पानी की सुविधा हेतु जलपरी, वाटरकूलर, हैण्डपम्प, नल आदि उपलब्ध हैं।

इन सबके अतिरिक्त वहाँ नित्य ही नवनिर्माण का कार्य चालू रहता है। सुन्दर पक्की सड़कें, हरे-हरे लॉन, फूलों के उद्यान, झूले, नाव, खेल के मैदान, बच्चों की रेल, ऐरावत हाथी आदि परिसर की शोभा में चार चाँद लगाते हैं। कभी-कभी बिजली न होने पर यात्री देर रात तक रुककर जम्बूद्वीप के लाइट-फौव्वारे की शोभा देखकर ही वापस जाने की इच्छा रखते हैं।

यहाँ की स्वच्छता सबको मोह लेती है (Cleanliness Here Attracts All)—जम्बूद्वीप के प्रमुख द्वार तक प्रतिदिन दिल्ली और मेरठ की 10-15 रोडवेज बसें सुबह से शाम तक यात्रियों को लाती और वहाँ से ले जाती हैं। वहाँ उतर कर कल्पवृक्ष द्वार में घुसते ही हर नर-नारी के मुँह से सर्वप्रथम यही निकलता है कि—''ऐसा लगता है स्वर्ग में आ गए''। पुनः वहाँ भ्रमण करने के पश्चात् वे लोग परिसर की स्वच्छता का गुणगान करते नहीं थकते हैं। पूरे स्थल पर कहीं कागज का एक टुकड़ा भी पड़ा नहीं दिखता जो वहाँ के सौन्दर्य में बाधक हो।

इन सबसे प्रभावित होकर ही उत्तरप्रदेश सरकार के पर्यटन विभाग ने जम्बूद्वीप रचना के चित्र से हस्तिनापुर की पहचान बनाते हुए विभाग द्वारा प्रकाशित फोल्डर में लिखा है—

Jambudweep is the.......has today blossomed into a man-made heaven of unparallel superlatives and natural wonders.

मथुरा चौरासी (Mathura Chaurasi)—मथुरा शहर से करीब डेढ़ मील पर दिगम्बर जैनों का यह प्रसिद्ध सिद्धक्षेत्र है। परम्परा के अनुसार यह अंतिम केवली श्री जम्बू स्वामी का मोक्षस्थान माना जाता है। यहाँ पर एक विशाल जैन मंदिर है जिसमें अनेक जिन प्रतिमाएँ एवं श्री जम्बूस्वामी के चरण चिन्ह स्थापित हैं। यहाँ से पास में ही प्रसिद्ध कंकाली टीला है। जहाँ से जैन पुरातत्व की अति प्राचीन सामग्री प्राप्त हुई। यहाँ पर ही भा. दि. जैन संघ का मुख्य भवन बना हुआ है। जिसमें उसका प्रधान कार्यालय तथा एक विशाल सरस्वती भवन है। पास में ही श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित है।

शौरीपुर (Shauripur)—मैनपुरी जिले के शिकोहाबाद नामक स्थान से 13 मील पर यमुना नदी के तट पर बटेश्वर नाम का एक प्राचीन गांव है। गांव के बीच में विशाल जैन मंदिर है। नीचे धर्मशाला है। यहाँ से 1 मील की दूरी पर जंगल में कई प्राचीन मंदिर हैं और एक छतरी है। जिसमें श्री नेमिनाथ के चरण चिन्ह स्थापित हैं। यह स्थान श्री नेमिनाथ भगवान का जन्मस्थान तीर्थ है।

4.13 बुन्देलखण्ड व मध्य प्रान्त (Bundelkhand and Middle Provinces)-

ग्वालियर (Gwalior)—यह कोई तीर्थक्षेत्र तो नहीं है किन्तु यहाँ के किले के आसपास चट्टानों में बहुत सी दिगम्बर जैन मूर्तियाँ बनी हुई हैं। एक मूर्ति श्री नेमिनाथ जी की 30 फुट ऊंची है और दूसरी आदिनाथ की मूर्ति उससे भी

विशाल है। लश्कर और ग्वालियर में लगभग 25 दिगम्बर जैन मंदिर हैं, जिनमें से अनेक मंदिर बहुत विशाल हैं।

सोनागिरि (Sonagiri)—ग्वालियर-झांसी लाइन पर सोनागिरि नाम का स्टेशन है, उससे लगभग 2 मील पर यह सिद्धक्षेत्र है। वहाँ एक छोटी सी पहाड़ी है। पहाड़ पर 77 दिगम्बर जैन मंदिर हैं, जिनकी वंदना में डेढ़ मील का चक्कर पड़ता है। यहाँ से बहुत से मुनि मोक्ष गये हैं। तलहटी में अनेक धर्मशालाएँ और अनेक मंदिर हैं। यहाँ एक विद्यालय भी स्थापित है।

अजयगढ़ (Ajaygarh)—यह अजयगढ़ स्टेट की राजधानी है। इसके पास ही एक पहाड़ है, उस पर एक किला है। उसकी दीवारों की दो शिलाओं में लगभग 20 दिगम्बर जैन मूर्तियाँ उकेरी हुई हैं। पास में ही तालाब है। उसकी दीवार में बहुत सी प्राचीन प्रतिमाएँ हैं, जिनमें से एक की ऊँचाई 15 फुट और दूसरी की 10 फुट है। एक मानस्तंभ है। उसमें भी अनेक मूर्तियाँ बनी हैं।

खजुराहो (Khajuraho)—पन्ना से छतरपुर को जाते हुए 21वें मील पर एक तिराहा पड़ता है, वहाँ से खजुराहो 7 मील है। एक छोटा सा गांव है। दो धर्मशालाएँ हैं। यहाँ अनेक दिगम्बर जैन मंदिर हैं। यहाँ के मंदिरों की स्थापत्य कला दर्शनीय और विश्वविख्यात है।

द्रोणगिरि (Drongiri)—छतरपुर से सागर रोड़ पर बड़ा मलहरा गांव है, वहाँ से दाहिनी ओर रोड़ से 6 मील पर सेंधपा नाम का गांव है। गांव के पास ही एक पर्वत है, जिसे द्रोणगिरि कहते हैं। यहाँ से गुरुदत्त आदि मुनि मोक्ष गये हैं। पहाड़ पर 24 मंदिर हैं। प्रतिवर्ष चैत सुदी 8 से 14 तक मेला भरता है।

नैनागिरि (Nainagiri)—यह क्षेत्र सेन्ट्रल रेलवे के सागर स्टेशन से 30 मील दलपतपुर गांव के पास है। इस तीर्थ की तलहटी में धर्मशाला और अनेक मंदिर हैं। धर्मशाला से 2 फर्लांग पर रेसिन्दी पर्वत है, यहाँ से श्री वरदत्त आदि मुनि मोक्ष गये हैं। पर्वत पर 25 मंदिर हैं। एक मंदिर तालाब के बीच में है। प्रतिवर्ष कार्तिक सुदी 8 से 15 तक मेला भरता है।

कुण्डलपुर (Kundalpur)—सेन्ट्रल रेलवे की कटनी-बीना लाइन पर दमोह स्टेशन है। वहाँ से लगभग 25 मील पर यह क्षेत्र है। इस क्षेत्र पर कुण्डल के आकार का एक पर्वत है। इसी से शायद इसका नाम कुण्डलपुर पड़ा है। पर्वत तथा उसकी तलहटी में बहुत सारे मंदिर हैं। पर्वत के मंदिरों के बीच में एक बड़ा मंदिर है, इसमें एक जैन मूर्ति विराजमान है जो पहाड़ को काटकर बनायी गयी जान पड़ती है। यह मूर्ति पद्मासन है फिर भी इसकी ऊँचाई 9-10 फुट से कम नहीं है। यह भगवान महावीर की मूर्ति मानी जाती है, किन्तु है ऋषभदेव की। इस प्रान्त में इन बड़े बाबा की बड़ी मान्यता है। दूर-दूर से लोग इनकी पूजा करने के लिए आते हैं। इसके माहात्म्य के संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। महाराज छत्रसाल के समय में उन्हीं की प्रेरणा से इसका जीर्णोद्धार हुआ था, जिसका शिलालेख अंकित है।

बीना जी (Beena Ji)—सागर से 48 मील पर बीनाजी क्षेत्र है। यहाँ तीन जैन मंदिर हैं, जिनमें एक प्रतिमा शांतिनाथ भगवान की 14 फुट ऊँची तथा एक प्रतिमा महावीर भगवान की 12 फुट ऊँची विराजमान है और भी अनेक मनोहर मूर्तियाँ हैं। सागर से 38 मील पर मालथौन गांव है। गांव से 1 मील पर एक जैन मंदिर है। इसमें 10 गज से लेकर 24 गज तक की ऊंची खड़े आसन की अनेक प्रतिमाएँ हैं। ललितपुर से 10 मील पर सीरोन गांव है। वहाँ से आधा मील पर 5-6 प्राचीन जैन मंदिर हैं। चारों ओर कोट हैं। यहाँ एक मूर्ति 20 गज ऊँची शांतिनाथ भगवान की है तथा चार-पांच फुट ऊँची सैकड़ों खण्डित मूर्तियाँ हैं।

देवगढ़ (Devgarh)—सेन्ट्रल रेलवे के ललितपुर स्टेशन से 19 मील दूर पहाड़ी पर यह क्षेत्र स्थित है। यह सचमुच देवगढ़ है। यहाँ अनेक प्राचीन जिनालय हैं और अगणित खण्डित मूर्तियाँ हैं। कला की दृष्टि से भी यहाँ की मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। कुशल कारीगरों ने पत्थर को मोम कर दिया है। करीब 200 शिलालेख यहाँ उत्कीर्ण हैं। 8 मनोहर

मानस्तंभ हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य भी अनुपम है। यहाँ से 6 मील पर चांदपुर स्थान है। वहाँ भी अनेक जैन मूर्तियाँ हैं। जिनमें 14 गज ऊँची एक मूर्ति शांतिनाथ तीर्थंकर की है।

पपौरा (Papaura)—विंध्य प्रान्त में टीकमगढ़ से कुछ दूरी पर जंगल में यह क्षेत्र स्थित है। उसके चारों ओर कोट बना है। जिसके अंदर लगभग 90 मंदिर हैं। एक वीर विद्यालय भी है। कार्तिक सुदी 14 को प्रतिवर्ष मेला भरता है।

अहार (Ahar)—टीकमगढ़ से 9 मील पर अहार गांव है। वहाँ से करीब 6 मील पर एक ऊजड़ स्थान में तीन दिगम्बर जैन मंदिर हैं। एक मंदिर में 21 फुट की ऊँची शांतिनाथ भगवान की अति मनोज्ञ मूर्ति विराजमान है जो खण्डित है किन्तु बाद में जोड़कर ठीक की गई है। यह प्रतिमा वि. सं. 1237 में प्रतिष्ठित की गई थी। इन मंदिरों के सिवाय यहाँ अन्य भी अनेक मंदिर बने हुए थे किन्तु बादशाही जमाने में वे सब नष्ट कर दिये और अब अगणित खण्डित मूर्तियाँ वहाँ वर्तमान हैं। क्षेत्र कलाप्रेमियों के लिए भी दर्शनीय है। अब यहाँ एक संग्रहालय और पाठशाला भी चालू हैं।

चन्देरी (Chanderi)—यह ललितपुर से बीस मील है। यहाँ एक जैन मंदिर में चौबीस वेदियाँ बनी हुई हैं और उनमें जिस तीर्थंकर के शरीर का जैसा रंग था उसी रंग की चौबीसों तीर्थंकरों की चौबीस मूर्तियाँ विराजमान हैं। ऐसी चौबीसी अन्यत्र कहीं भी नहीं है। यहाँ से उत्तर में 9 मील पर बूढ़ी चन्देरी है। यहाँ पर सैकड़ों जैन मंदिर जीर्णशीर्ण दशा में हैं। जिनमें बड़ी ही सौम्य और चित्ताकर्षक मूर्तियाँ हैं।

पचराई (Pachrai)—चन्देरी से 34 मील खनियाधाना स्थान है और वहाँ से 8 मील पर पचराई गांव है। यहाँ पर अनेक जिनमंदिर हैं। उनमें लगभग एक हजार मूर्तियाँ हैं, इनमें आधे के लगभग साबुत हैं, शेष खण्डित हैं।

थूबोन जी (Thoobonji)—चन्देरी से 8 मील पर थूबोन जी है। यहाँ अनेक मंदिर हैं, प्रायः सभी प्रतिमाएँ पत्थरों में उकेरी हुईं हैं, खड़े योग में हैं और 20–30 फुट तक की ऊँची हैं।

4.14 राजस्थान व मध्यप्रदेश (Rajasthan and Madhya Pradesh)–

श्री महावीरजी (Shri Mahaveer Ji)—पश्चिमी रेलवे की नागदा–मथुरा लाइन पर 'श्री महावीर जी' नाम का स्टेशन है। यहाँ से 4 मील पर यह क्षेत्र है। यहाँ एक विशाल दिगम्बर जैन मंदिर है, उसमें महावीर स्वामी की एक अति मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है। यह प्रतिमा पास के ही एक टीले के अंदर से निकली थी। इसे जैन और जैनेतर खास करके जयपुर रियासत के मीना और गूजर बड़ी श्रद्धा और भक्ति से पूजते हैं। यात्रियों का सदा तांता लगा रहता है। प्रतिवर्ष वैशाख बदी एकम् को महावीर भगवान की सवारी रियासती लवाजमें के साथ निकलती है। लाखों मीना एकत्र होते हैं। वे ही सवारी को नदी तक ले जाते हैं। उधर गूजर तैयार खड़े रहते हैं। मीना चले जाते हैं और गूजर सवारी को लौटाकर लाते हैं फिर गूजरों का मेला भरता है।

चांदखेड़ी (Chandkheri)—कोट रिसायत में खानपुर नामक एक प्राचीन नगर है। खानपुर से 2 फर्लांग की दूरी पर चांदखेड़ी नाम की पुरानी बस्ती है। यहाँ भूगर्भ में एक अति विशाल जैन मंदिर है। इसमें अनेक विशाल जैन प्रतिमाएँ हैं। सब प्रतिमाएँ 577 हैं। द्वार के उत्तर भाग में एक ही पाषाण का 10 फुट ऊँचा कीर्तिस्तंभ है इसमें चारों ओर दिगम्बर प्रतिमाएँ खुदी हुई हैं। तीन तरफ लेख भी हैं।

मक्सी पार्श्वनाथ (Maksi Parshvanath)—सेन्ट्रल रेलवे की भूपाल उज्जैन शाखा में इस नाम का स्टेशन है। यहाँ से एक मील पर एक प्राचीन जैन मंदिर है। उसमें श्री पार्श्वनाथ स्वामी की ढाई फुट ऊँची पद्मासन मूर्ति विराजमान है। जो बड़ी ही मनोज्ञ है। इसको दोनों परम्परा वाले पूजते हैं परन्तु समय नियत है।

पदमपुरा (बाड़ा) (Padampura)—जयपुर से 30 किमी. दूरी पर स्थित यह एक प्रसिद्ध अतिशय क्षेत्र है। विक्रम संवत् 2009 में मकान की खुदाई में श्री पद्मप्रभु भगवान की मूर्ति प्रकट हुई। विशाल मंदिर व आवास स्थल हैं। यहाँ अनेक चमत्कार होते रहते हैं तथा व्यंतर बाधा से मुक्ति मिलती है।

माधोराजपुरा (Madhorajpura)—यहाँ लगभग 25 किमी0 दूर फागी तहसील में माधोराजपुरा है। चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से वैशाख कृष्णा द्वितीया सन् 1956 को बीसवीं सदी की प्रथम बाल ब्रह्मचारिणी पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी की आर्यिका दीक्षा होने के कारण यह नगर प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ और यहाँ दीक्षा तीर्थ का निर्माण किया गया। भगवान पार्श्वनाथ की अतिशयकारी खड्गासन मूर्ति सहित चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियाँ दर्शनीय है। जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के अगणित उपकारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने हेतु भक्तजन इस नवोदित तीर्थ की यात्रा कर महान पुण्यार्जन करते हैं।

बिजौलिया पार्श्वनाथ (Bijolia Parshvanath)—नीमच से 68 मील पर बिजौलिया रियासत है। बिजौलिया गाँव के समीप में ही श्री पार्श्वनाथ स्वामी का अतिप्राचीन और रमणीक अतिशय क्षेत्र है। एक मंदिर में एक ताक के महराब के ऊपर 23 प्रतिमाएँ खुदी हुई हैं। चारों तरफ दीवारों पर भी मुनियों की बहुत सी मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। एक विशाल सभामण्डप, चार गुमटियाँ और दो मानस्तंभ भी हैं। मानस्तंभों पर प्रतिमाएँ और शिलालेख हैं।

श्रीऋषभदेव (केशरिया जी) (Shri Rishabhdev Kesariya Ji)—उदयपुर से करीब 40 मील पर यह क्षेत्र है। यहाँ श्री ऋषभदेव जी का एक बहुत विशाल मंदिर बना हुआ है। उसके चारों ओर कोट है। भीतर मध्य में संगमरमर का एक बड़ा मंदिर है, जिसके 48 फुट ऊँचे-ऊँचे शिखर हैं। इसके भीतर जाने पर श्री ऋषभदेव जी का बड़ा मंदिर मिलता है, जिसमें श्री ऋषभदेव जी की 6-7 फुट ऊँची पद्मासन श्यामवार्ण की दिगम्बर जैन मूर्ति हैं। यहाँ केशर चढ़ाने का इतना रिवाज है कि सारी मूर्ति केशर से ढकी जाती है। इसलिए इसे केशरिया जी भी कहते हैं। श्वेताम्बरों की ओर से मूर्ति पर आंगी, मुकुट और सिन्दूर भी चढ़ता है। इसकी बड़ी मान्यता है। समस्त जैनी इसकी पूजा करते हैं।

आबू पहाड़ (Mount Abu)-पश्चिमी रेलवे के आबू रोड स्टेशन से आबू पहाड़ के लिए मोटरें जाती हैं। पहाड़ पर सड़क के दायीं ओर एक दिगम्बर जैन मंदिर है तथा बायीं ओर दैलवाड़ा के प्रसिद्ध श्वेताम्बर मंदिर बने हुए हैं। जिनमें से एक मंदिर विमलशाह ने वि. सं. 1088 में 18 करोड़ 53 लाख रुपये खर्च करके बनवाया था। दूसरा मंदिर वस्तुपाल तेजपाल ने बारह करोड़ 53 लाख रुपये खर्च करके बनवाया था। संगमरमर पर छैनी के द्वारा जो नक्काशी की गई है वह देखने की ही चीज है। दोनों विशाल मंदिरों के बीच में एक छोटा सा दिगम्बर जैन मंदिर भी है।

अचलगढ़ (Achalgarh)—दैलवाड़ा से पाँच मील की दूरी पर अचलगढ़ है। यहाँ तीन श्वेताम्बर मंदिर हैं। उनमें से एक मंदिर में सप्तधातु की 14 प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

सिद्धवरकूट (Siddhvarkoot)—इंदौर से खण्डवा लाइन पर मौरटक्का नाम का स्टेशन है। वहाँ से ओंकार जी जाते हैं जो नर्मदा के तट पर है। यहाँ से नाव में सवार होकर सिद्धवरकूट को जाते हैं। यह क्षेत्र रेवा नदी के तट पर है। यहाँ से दो चक्रवर्ती व दस कामदेव तथा साढ़े तीन करोड़ मुनि मुक्त हुए हैं। यहाँ क्षेत्र परिसर में 10-15 दिगम्बर जैन मंदिर हैं, जो अति प्राचीन हैं। प्रतिवर्ष फाल्गुन पूर्णिमा पर बहुत बड़ा मेला लगता है।

ऊन (पावागिरी) (Oon, Pavagiri)—खण्डवा से ऊन मोटर के द्वारा जाया जाता है। 3-4 घंटे का रास्ता है। यहाँ एक प्राचीन मंदिर है जो सं. 1218 का बना हुआ है। दो और भी प्राचीन मंदिर हैं जो जीर्ण हो गये हैं। इसे पावागिरी सिद्धक्षेत्र कहा जाता है। यहाँ से सुवर्णभद्र आदि 4 मुनियों ने मोक्ष को प्राप्त किया है। पहाड़ी पर भी खुदाई में मंदिर प्राप्त हुआ, जिसमें भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की अति प्राचीन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। एक अन्य पहाड़ी पर पाँच मंदिर हैं, जो पंचपहाड़ी के नाम से जानी जाती हैं। यहाँ पर चारों मुनियों के चरण भी वर्तमान में स्थापित किये गये हैं। चैत्र वदी पंचमी को प्रतिवर्ष मेला लगता है।

बड़वानी (Badwani)—बड़वानी से 4 मील पहाड़ पर जाने से बड़वानी क्षेत्र मिलता है। बड़वानी से निकट

होने के कारण इस क्षेत्र को बड़वानी कहते हैं। वैसे इसका नाम चूलगिरि है। इस चूलगिरि से इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण ने मुक्ति प्राप्त की थी। क्षेत्र की वंदना को जाते हुए सबसे पहले एक विशालकाय मूर्ति के दर्शन होते हैं। यह खड़ी हुई मूर्ति भगवान ऋषभदेव की है, इसकी ऊँचाई 84 फुट है। इसे बावनगजा भी कहते हैं। सं. 1223 में इसके जीर्णोद्धार होने का उल्लेख मिलता है। पहाड़ पर अनेक मंदिर हैं। प्रतिवर्ष पौष सुदी 8 से 15 तक मेला होता है।

4.15 गुजरात तथा महाराष्ट्र प्रान्त (Gujrat and Maharashtra Provinces)-

तारंगा (Taranga)—यह प्राचीन सिद्धक्षेत्र गुजरात प्रान्त के महीकांटा जिले में पश्चिमी रेलवे के तारंगा हिल नाम के स्टेशन से तीन मील पहाड़ के ऊपर है। यहाँ से वरदत्त आदि साढ़े तीन करोड़ मुनि मुक्त हुए हैं। यहाँ पर दोनों परम्परा के अनेक मंदिर और गुमटियाँ हैं।

गिरनार जी (Girnar Ji)—सौराष्ट्र प्रान्त में जूनागढ़ के निकट यह सिद्धक्षेत्र वर्तमान है। जूनागढ़ स्टेशन से 4-5 मील की दूरी पर गिरिनार पर्वत की तलहटी है, वहाँ दोनों परम्परा की धर्मशालाएँ हैं। पहाड़ पर चढ़ने के लिए धर्मशाला के पास से ही पक्की सीढ़ियाँ प्रारंभ हो जाती हैं और अन्त तक चली जाती हैं। 22वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ ने इसी पहाड़ के सहस्राम्र वन में दीक्षा धारण करके तप किया था। यहीं इन्हें केवलज्ञान हुआ था और यहीं से उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया था। उनकी वाग्दत्ता पत्नी राजुल ने भी यहीं दीक्षा ली थी। पहले पहाड़ पर पहुँचने पर एक गुफा में राजुल की मूर्ति बनी हुई है तथा दिगम्बरों और श्वेताम्बरों के अनेक मंदिर बने हुए हैं। दूसरे पहाड़ पर चरण चिन्ह हैं। यहाँ से अनिरुद्धकुमार ने निर्वाण प्राप्त किया था। तीसरे से शंभुकुमार ने निर्वाण लाभ किया था। चौथे पहाड़ पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ नहीं हैं इसलिए उस पर चढ़ना बहुत कठिन है। यहाँ से श्रीकृष्ण जी के पुत्र प्रद्युम्नकुमार ने मोक्ष प्राप्त किया है और पाँचवें पहाड़ से भगवान नेमिनाथ मुक्त हुए हैं। सब जगह चरण चिन्ह हैं तथा कहीं-कहीं पहाड़ में उकेरी हुई जिनमूर्तियाँ भी हैं। जैन संस्कृति में शिखर जी की तरह इस क्षेत्र की भी बड़ी प्रतिष्ठा है। वर्तमान में इस तीर्थ का विकास हुआ है तथा तलहटी में भी कई मंदिरों का निर्माण हुआ है। भगवान नेमिनाथ की बड़ी प्रतिमा भी विराजमान है।

शत्रुञ्जय (Shatrunjay)—पश्चिमी रेलवे के पालीताना स्टेशन से डेढ़-दो मील तलहटी है। वहाँ से पहाड़ की चढ़ाई आरंभ हो जाती है, साफ रास्ता है। पहाड़ के ऊपर श्वेताम्बरों के करीब साढ़े तीन हजार मंदिर हैं। जिनकी लागत करोड़ों रुपया है। श्वेताम्बर भाई सब तीर्थों से इस तीर्थ को बड़ा मानते हैं। दिगम्बरों का तो केवल एक मंदिर है। पालीताना शहर में भी श्वेताम्बरों की बहुत सारी धर्मशालाएँ और अनेक मंदिर हैं। यहाँ से तीन पाण्डु पुत्रों और आठ करोड़ मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया था।

पावागढ़ (Pawagarh)—बड़ौदा से 28 मील की दूरी पर चांपानेर के पास पावागढ़ सिद्धक्षेत्र है। यह पावागढ़ एक बहुत विशाल पहाड़ी किला है। पहाड़ पर चढ़ने का मार्ग एकदम कंकरीला है। पहाड़ के ऊपर आठ-दस मंदिरों के खण्डहर हैं, जिनका जीर्णोद्धार कराया गया है। यहाँ से श्री रामचन्द्र के पुत्र लव और कुश को तथा पाँच करोड़ मुनियों को निर्वाण लाभ हुआ था।

मांगीतुंगी (Mangitungi)—यह क्षेत्र गजपंथा (नासिक) से लगभग अस्सी मील पर है। वहाँ पास ही पास दो पर्वत शिखर हैं, जिनमें से एक का नाम मांगी और दूसरे का नाम तुंगी है। मांगी शिखर की गुफाओं में लगभग साढ़े तीन सौ प्रतिमाएँ और चरण हैं और तुंगी में लगभग तीस। यहाँ अनेक प्रतिमाएँ साधुओं की हैं जिनके साथ पीछी और कमडलु भी हैं और पास में ही उन साधुओं के नाम भी लिखे हैं। यहाँ से श्रीरामचन्द्र, हनुमान, सुग्रीव वगैरह ने निर्वाण लाभ किया था। परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से यहाँ विश्व की सबसे ऊँची 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की मूर्ति का निर्माण हो गया है।

गजपंथा (Gajpantha)—नासिक के निकट महसरूल गांव की एक छोटी सी पहाड़ी पर यह सिद्धक्षेत्र है। यहाँ से बलभद्र और यदुवंशी राजाओं ने मोक्ष प्राप्त किया था।

एलोरा (Alora)—मनमाड़ जंक्शन से 60 मील दूर एलोरा तीर्थ है। यह ग्राम गुफा मंदिरों के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध है। इससे सटा हुआ एक पहाड़ है। ऊपर दो गुफाएं हैं, नीचे उतरने पर सात गुफाएं और हैं जिनमें हजारों जैन प्रतिमाएँ हैं।

कुंथलगिरि (Kunthalgiri)—यह क्षेत्र महाराष्ट्र प्रदेश में है और वार्सी टाऊन रेलवे स्टेशन से लगभग 21 मील दूर एक छोटी सी पहाड़ी पर स्थित है। यहाँ से श्री देशभूषण, कुलभूषण मुनि मुक्त हुए हैं पर्वत पर मुनियों के चरण मंदिर सहित अनेक मंदिर हैं। माघ मास में पूर्णिमा को प्रतिवर्ष मेला भरता है। यहाँ दिगम्बर जैन गुरुकुल भी है। इसी कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र पर बीसवीं सदी के प्रथम आचार्य चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने सन् 1955 में समाधि ग्रहण की थी, जिनके चरण चिन्ह भी विराजमान हैं।

करकण्डु की गुफाएँ (Caves of Karkandu)—शोलापुर से मोटर के द्वारा कुंथलगिरि जाते हुए मार्ग में उस्मानाबाद नाम का नगर आता है, जिसका पुराना नाम धाराशिव है। धाराशिव से कुछ मील की दूरी पर 'तेर' नाम का स्थान है। तेर के पास पहाड़ी है। उसकी बाजू में गुफाएँ हैं। प्रधान गुफा बड़ी विशाल है। इसमें पाँच फुट की पार्श्वनाथ भगवान की काले पाषाण की पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इसके दूसरे कमरे में एक सप्तफणी नाग सहित पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। दो पत्थर और भी हैं जिन पर जैन प्रतिमाएँ खुदी हैं। प्रधान गुफा सहित यहाँ चार गुफाएँ हैं। इन सब गुफाओं में जो प्रतिमाएँ हैं वे अधिकतर पार्श्वनाथ भगवान की ही हैं। महावीर भगवान की तो एक भी प्रतिमा नहीं है। करकण्डु चरित के अनुसार राजा करकण्डु ने जो गुफाएँ बनवायी थी, वे ये ही गुफाएं बतलायी जाती हैं।

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ (Antriksh Parshvanath)—सेन्ट्रल रेलवे के अकोला (बराबर) स्टेशन से लगभग 40 मील पर शिरपुर नामक गांव है। गांव के मध्य धर्मशालाओं के बीच में एक बहुत बड़ा प्राचीन विशाल दुमंजिला जैन मंदिर है। नीचे की मंजिल में एक श्यामवर्ण की ढाई फुट ऊँची पार्श्वनाथ जी की प्राचीन प्रतिमा है जो वेदी में अधर विराजमान है। सिर्फ दक्षिण घुटना कील बनाकर सटा हुआ है। इसी से यह प्रतिमा अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध है।

कारंजा (Karanja)—अकोला जिले में मुर्तिजापुर स्टेशन से यवतमाल को जाने वाली रेलवे लाइन पर यह एक कस्बा है। यहाँ पर तीन विशाल प्राचीन जैन मंदिर हैं। एक मंदिर में चांदी, सोने, हीरे, मूंगे और पन्ने की प्रतिमाएँ हैं। यहाँ दो भट्टारकों की गद्दियाँ हैं। एक बलात्कारगण की दूसरी सेनगण की। सेनगण के भट्टारक के मंदिर में संस्कृत प्राकृत के प्राचीन जैन ग्रंथों का बहुत बड़ा भंडार है। यहाँ महावीर ब्रह्मचर्याश्रम नाम की एक आदर्श शिक्षा संस्था भी है।

मुक्तागिरि (Muktagiri)—यह सिद्धक्षेत्र बराड़ के एलचपुर से 12 मील पर पहाड़ी जंगल में है। नीचे धर्मशाला है। पास में ही एक छोटी पहाड़ी है, जिस पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। ऊपर कई गुफाएँ हैं जिनमें बहुत सी प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। गुफाओं के आस-पास बहुत सारे मंदिर हैं। यहाँ से बहुत से मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया था।

भातकुली (Bhaatkuli)—यह अतिशय क्षेत्र अमरावती से 10 मील पर है। यहाँ अनेक दिगम्बर जैन मंदिर हैं। जिनमें से एक में श्री ऋषभदेव स्वामी की पद्मासनयुक्त तीन फुट ऊँची मूर्ति विराजमान है। इसकी यहाँ बहुत मान्यता है। प्रतिवर्ष कार्तिक बदी पंचमी को मेला भरता है।

रामटेक (Ramtek)—यह स्थान नागपुर से 24 मील पर है। यहाँ दिगम्बर जैनों के आठ मंदिर हैं। जिनमें से एक प्राचीन मंदिर में सोलहवें तीर्थंकर श्री शांतिनाथ स्वामी की 15 फुट ऊँची मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है।

4.16 कर्नाटक प्रदेश (Karnatak Pradesh)-

बीजापुर (Beejapur)—मध्य दक्षिण रेलवे पर बीजापुर नाम का पुराना नगर है। स्टेशन के करीब ही संग्रहालय है। इनमें अनेक जैन मूर्तियाँ रखी हुई हैं। एक मूर्ति करीब तीन हाथ ऊँची पद्मासन भगवान पार्श्वनाथ की है। उस पर सं.

1232 खुदा है। बीजापुर से करीब दो मील पर एक मंदिर है, इसमें श्री पार्श्वनाथ भगवान की सहस्त्रफणा सहित एक मूर्ति विराजमान है जो दर्शनीय है। बीजापुर से 17 मील पर बाबानगर है। वहाँ पर एक प्राचीन मंदिर है, उसमें भगवान पार्श्वनाथ की हरे पाषाण की डेढ़ हाथ ऊँची पद्मासन मूर्ति विराजमान है। इसका बहुत अतिशय है तथा इसके विषय में अनेक दन्तकथाएँ सुनी जाती हैं।

बादामी गुफा मंदिर (Badami Cave Temple)—बीजापुर जिले में बादामी एक छोटा कस्बा है। इसके पास में दो प्राचीन पहाड़ी किले हैं। दक्षिण पहाड़ी की बगल में छठी सदी के बने हुए हिन्दुओं के तीन और जैनियों का एक गुफा मंदिर है। जैन गुफा मंदिर में अनेक मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। यह गुफा मंदिर बादामी के प्रसिद्ध चालुक्य वंश के राजा पुलकेशी ने बनवाया था।

बेलगांव (Belgaon)—मध्य दक्षिण रेलवे पर यह शहर बसा है। शहर से पूर्व की ओर एक प्राचीन किला है। कहते हैं कि पहले यहाँ 108 जैन मंदिर थे। उनको तुड़वाकर बीजापुर के बादशाह के सरदार ने यह किला बनवाया था अब केवल तीन मंदिर शेष हैं। जिनकी कारीगरी दर्शनीय है। बेलगांव जिले में ही स्तवनिधि नाम का क्षेत्र है। यहाँ 5–6 जैन मंदिर हैं। जिनमें सैकड़ों जैन मूर्तियाँ विराजमान हैं।

हुम्मच पद्मावती (Hummach Padmavati)—मैसूर स्टेट में शिमोगा शहर है। वहाँ से सीधे हुम्मच पद्मावती क्षेत्र को जाते हैं। यहाँ कई मंदिर हैं। जिनमें पंचवसदि विशाल और बेशकीमती मंदिर है। यहाँ पर बड़ी–बड़ी विशाल गुफाएं और सातिशय पद्मावती प्रतिमा है।

वरांग (Varang)—दक्षिण कनाड़ा जिले में एक छोटा सा गांव है। सड़क से लगा प्रकार के अंदर एक बहुत विशाल मंदिर है। मंदिर में पाँच वेदियाँ हैं। जिनमें बहुत सी प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। एक मंदिर पास ही तालाब में है। यद्यपि मंदिर छोटा सा है परन्तु बहुत सुन्दर है।

कारकल (Karkal)—वरांग से 15 मील पर यह एक अच्छा स्थान है। यह दिगम्बर जैनों का बहुत प्राचीन तीर्थस्थान है। यहाँ अनेक जैन मंदिर हैं। एक पर्वत पर श्री बाहुबलि स्वामी की 32 फुट ऊँची खड्गासन मूर्ति विराजमान है। इसके सामने एक दूसरा पर्वत है, उस पर एक मंदिर है। उसमें चारों ओर खड्गासन की तीन–तीन विशाल प्रतिमाएं स्थित हैं। यह मंदिर कारीगरी की दृष्टि से भी दर्शनीय है।

मूडबिद्री (Moodbidri)—कारकल से तीस मील पर यह एक अच्छा कस्बा है। यहाँ अनेकानेक मंदिर हैं। जिनमें एक मंदिर बहुत विशाल है। उसका नाम त्रिभुवनतिलक चूड़ामणि है। यह एक कोट से घिरा है, तीन मंजिल का है। नीचे भी कई वेदियाँ हैं, इसके ऊपर वेदियाँ हैं और उसके भी ऊपर वेदियाँ हैं। एक मंदिर सिद्धान्त वसति कहलाता है। यह दुमंजिला है। इस मंदिर में दिगम्बर जैनों के प्रख्यात ग्रंथ श्रीधवल, जयधवल और महाबंध कनड़ी लिपि में ताड़पत्रों पर लिखे हुए सुरक्षित हैं। इसमें अनेक मूर्तियाँ पन्ना, पुखराज, गोमेद, मूंगा, नीलम आदि रत्नों की है, यहाँ श्री भट्टारक चारुकीर्ति पंडिताचार्य महाराज की गद्दी है। प्राचीन जैन ग्रंथों का अच्छा संग्रह है।

वेणूर (Venoor)—नदी के किनारे यह एक छोटा सा गांव है। गाँव के पश्चिम में एक कोट है। उसके अंदर श्री गोमट स्वामी की 31 फुट ऊँची प्रतिमा विराजमान है। गांव में अनेक जैन मंदिर हैं।

वेलूर-हलेविड (Veloor-Halevid)—वेलूर और हलेविड, कर्नाटक के हासन शहर के उत्तर में एक दूसरे से दस–बारह मील के अंतर पर स्थित हैं। यहाँ का मूर्तिनिर्माण दुनिया में अपूर्व माना जाता है। एक समय यह दोनों स्थान राजधानी के रूप में मशहूर थे। आज कलाधानी के रूप में ख्यात हैं। दोनों स्थानों के आसपास जैन मंदिर हैं। दक्षिण के सभी मंदिर दिगम्बर तथा प्राचीन हैं और उच्चकोटि की कारीगरी के जीते–जागते नमूने हैं।

श्रवणबेलगोला (Shravanbelgola)—हासन जिले के अन्तर्गत जिन तीन स्थानों ने मैसूर राज्य को विश्वविख्यात

बना दिया है, वे हैं वेलूर, हलेविड और श्रवणबेलगोला। हासन से पश्चिम में श्रवणबेलगोला है जो हासन या बैंगलोर से मोटर के द्वारा 4 घंटे का मार्ग है। श्रवणबेलगोला में चन्द्रगिरि और विन्ध्यगिरि नाम की दो पहाड़ियाँ पास-पास हैं। इन दोनों पहाड़ियों के बीच में एक चौकोर तालाब है। इसका नाम बेलगोल अथवा सफेद तालाब था। यहाँ श्रमणों के आकर रहने के कारण इस गांव का नाम श्रमणबेलगोला पड़ा। यह मूल में दिगम्बर जैनों का एक महान् तीर्थस्थान है। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त अपने गुरु भद्रबाहु के साथ अपने जीवन के अंतिम दिन बिताने के लिए यहाँ आये थे। गुरु ने वृद्धावस्था के कारण चन्द्रगिरि पर सल्लेखना धारण करके शरीर त्याग दिया। चन्द्रगुप्त ने गुरु की पादुका की बारह वर्ष तक पूजा की और अंत में समाधि धारण करके इह जीवन लीला समाप्त की।

विन्ध्यगिरि नाम की पहाड़ी पर गोमटेश्वर की विशालकाय मूर्ति विराजमान है। विन्ध्यगिरि की ऊँचाई चार सौ सत्तर फीट और ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। काका कालेलकर के शब्दों में मूर्ति का सारा शरीर भरावदार, यौवनपूर्ण, नाजुक और कान्तिमान है। एक ही पत्थर से निर्मित इतनी सुन्दर मूर्ति संसार में और कहीं नहीं। इतनी बड़ी मूर्ति इतनी अधिक स्निग्ध है कि भक्ति के साथ कुछ प्रेम की भी यह अधिकारिणी बनती है। धूप, हवा और पानी के प्रभाव से पीछे की ओर ऊपर की पपड़ी गिर पड़ने पर भी इस मूर्ति का लावण्य खण्डित नहीं हुआ है। इसकी स्थापना आज से एक हजार वर्ष पहले गंगवंश के सेनापति और मंत्री चामुण्डराय ने करायी थी। इस पर्वत पर अनेक मंदिर हैं।

चन्द्रगिरि पर चढ़ने के लिए भी सीढ़ियाँ बनी हैं। पर्वत के ऊपर मध्य में एक कोट बना है। उसके अंदर बड़े-बड़े प्राचीन 14 मंदिर हैं। मंदिरों में बड़ी-बड़ी विशाल प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। एक गुफा में श्रीभद्रबाहु स्वामी के चरण चिन्ह बने हुए हैं। जो लगभग एक फुट लम्बे हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह पहाड़ी बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इस पर बहुत से प्राचीन शिलालेख अंकित हैं, जो मुद्रित हो चुके हैं।

नीचे ग्राम में भी अनेक मंदिर और चैत्यालय हैं। एक मंदिर में चित्रकला से शोभित कसौटी पाषाण के स्तंभ हैं। यहाँ भी श्री भट्टारक चारुकीर्ति जी महाराज की मुख्य गद्दी है। उसके मंदिर में भी कुछ रत्नों की प्रतिमाएँ हैं। बड़ा अच्छा शास्त्र भंडार है।

इस प्रान्त में धर्मस्थल आदि अनेक स्थान भी हैं जहाँ जैन मंदिर और मूर्तियाँ दर्शनीय हैं।

4.17 उड़ीसा प्रदेश (Orissa Pradesh)-

खण्डगिरि (Khandgiri)—उड़ीसा प्रदेश की राजधानी कटक है। कटक के आसपास हजारों जैन प्रतिमाएँ हैं किन्तु उड़ीसा में जैनियों की संख्या कम होने से उनकी रक्षा का कोई प्रबंध नहीं है। कटक से ही सुप्रसिद्ध खण्डगिरि-उदयगिरि को जाते हैं। भुवनेश्वर से पाँच मील पश्चिमपुरी जिले में खण्डगिरि-उदयगिरि नाम की दो पहाड़ियाँ हैं। दोनों पर पत्थर काटकर अनेक गुफाएं और मंदिर बनाये गये हैं जो ईसा से लगभग 50 वर्ष पहले से लेकर 500 वर्ष बाद तक के बने हुए हैं। उदयगिरि की हाथी गुफा में कलिंग चक्रवर्ती जैन सम्राट खारवेल का सुप्रसिद्ध शिलालेख अंकित है।

विशेष नोट—उपरोक्त प्राय: सभी तीर्थ क्षेत्रों का जीर्णोद्धार एवं विकास समय-समय पर जैन समाज द्वारा कराया गया है और आज सभी भक्तजन इन तीर्थों के नूतन विकसित स्वरूप का दर्शन करके पुण्यार्जन करते हैं।

4.18 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-जैन मान्यतानुसार 'तीर्थ' किसे कहा जाता है ?

प्रश्न 2-भगवान मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि का नाम बताइये ?

प्रश्न 3-भगवान महावीर की जन्मभूमि कहाँ अवस्थित है तथा वहाँ किसकी प्रेरणा से क्या-क्या विकास कार्य हुए हैं ?

प्रश्न 4-महाराष्ट्र में स्थित किन्हीं 5 तीर्थों के नाम बताइये ?

प्रश्न 5-उदयगिरि की हाथी गुफा में क्या अंकित है ?

पाठ-5 – विदेशों में जैनधर्म (Jain Religion in Foreign Countries)

5.1 विदेशों में जैनधर्म एवं समाज (Jain Religion and Society in Foreign Countries) —

अमेरिका, फिनलैण्ड, सोवियत गणराज्य, चीन एवं मंगोलिया, तिब्बत, जापान, ईरान, तुर्किस्तान, इटली, एबीसिनिया, इथोपिया, अफगानिस्तान, नेपाल, पाकिस्तान आदि विभिन्न देशों में किसी न किसी रूप में वर्तमानकाल में जैनधर्म के सिद्धान्तों का पालन देखा जा सकता है। उनकी संस्कृति एवं सभ्यता पर इस धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है। इन देशों में मध्यकाल में आवागमन के साधनों का अभाव एक–दूसरे की भाषा से अपरिचित रहने के कारण, रहन–सहन, खान–पान में कुछ–कुछ भिन्नता आने के कारण हम एक–दूसरे से दूर हटते ही गये और अपने प्राचीन संबंधों को सब भूल गये।

अमेरिका में लगभग 2000 ईसा पूर्व में संघपति जैन आचार्य 'क्वाजन कोटल' के नेतृत्व में श्रमण साधु अमेरिका पहुँचे और तत्पश्चात् सैकड़ों वर्षों तक श्रमण अमेरिका में जाकर बसते रहे। अमेरिका में आज भी अनेक स्थलों पर जैनधर्म श्रमण–संस्कृति जितना स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वहाँ जैन–मंदिरों के खण्डहर, प्रचुरता में पाये जाते हैं।

कतिपय हस्तलिखित ग्रंथों में महत्वपूर्ण प्रमाण मिले हैं कि अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, टर्की आदि देशों तथा सोवियत संघ के जीवन–सागर एवं ओब की खाड़ी से भी उत्तर तक तथा जाटविया से उल्लई के पश्चिमी छोर तक किसी काल में जैनधर्म का व्यापक प्रचार–प्रसार था। इन प्रदेशों में अनेक जैन–मंदिरों, जैन–तीर्थंकरों की विशाल मूर्तियों, धर्मशास्त्रों तथा जैन–मुनियों की विद्यमानता का उल्लेख मिलता है।

चीन की संस्कृति पर जैन–संस्कृति का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। चीन में भगवान् ऋषभदेव के एक पुत्र का शासन था। जैन–संघों ने चीन में अहिंसा का व्यापक प्रचार–प्रसार किया था, अति प्राचीनकाल में भी श्रमण–सन्यासी यहाँ विहार करते थे–हिमालय क्षेत्र आविस्थान को दिया और कैस्पियाना तक पहले ही श्रमण–संस्कृति का प्रचार–प्रसार हो चुका था।

चीन और मंगोलिया में एक समय जैनधर्म का व्यापक प्रचार था। मंगोलिया के भूगर्भ से अनेक जैन–स्मारक निकले हैं तथा कर्मखण्डित जैन–मूर्तियाँ और जैन–मंदिरों के तोरण मिले हैं, जिनका आँखों देखा पुरातात्त्विक विवरण 'मुम्बई समाचार' (गुजराती) के 4 अगस्त सन् 1934 के अंक में निकला था।

यात्रा–विवरणों के अनुसार सिरगम देश और ढाकुल की प्रजा और राजा सब जैन धर्मानुयायी हैं। तातार–तिब्बत, कोरिया, महाचीन, खासचीन आदि में सैकड़ों विद्या–मंदिर हैं। इस क्षेत्र में आठ तरह के जैनी हैं। चीन में 'तलावारे' जाति के जैनी हैं। महाचीन में 'जांगडा' जाति के जैनी थे।

चीन के जिगरम देश ढाकुल नगर में राजा और प्रजा सब जैन–धर्मानुयायी हैं।

पीकिंग नगर में 'तुबाबारे' जाति के जैनियों के 300 मंदिर हैं, ये सब मंदिर शिखरबंद हैं। इनमें जैन–प्रतिमाएँ खड्गासन व पद्मासन मुद्रा में विराजमान हैं। यहाँ जैनियों के पास जो आगम हैं, वे 'चीन्डी लिपि' में हैं। कोरिया में भी जैनधर्म का प्रचार रहा है। यहाँ 'सोवावारे' जाति के जैनी हैं।

'तातार' देश में 'जैनधर्मसागर नगर' में जैन–मंदिर 'यातके' तथा 'घघेरवाल' जातियों के जैनी हैं। इनकी प्रतिमाओं का आकार साढ़े तीन गज ऊँचा और डेढ़ गज चौड़ा है।

'मुंगार' देश में जैनधर्म (Jain Religion in Mungar Country) — यहाँ 'बाधामा' जाति के जैनी हैं। इस नगर में जैनियों के 8000 घर हैं तथा 2000 बहुत सुन्दर जैन मंदिर हैं।

तिब्बत और जैनधर्म (Jain Religion in Tibbet) — तिब्बत में जैनी 'आवरे' जाति के हैं। एरूल नगर में एक नदी के किनारे बीस हजार जैन–मंदिर हैं। तिब्बत में सोहना–जाति के जैनी भी हैं। खिलवन नगर में 104 शिखरबंद जैनमंदिर हैं। वे सब मंदिर रत्नजटित और मनोरम हैं। यहाँ के वनों में तीस हजार जैन–मंदिर हैं।

दक्षिण तिब्बत के हनुवर देश में दस–पन्द्रह कोस पर जैनियों के अनेक नगर हैं, जिनमें बहुत से जैन मंदिर हैं। हनुवर

देश के राजा–प्रजा सब जैनी हैं।

यूनान और भारत में समुद्र सम्पर्क था। यूनानी लेखकों के अनुसार जब सिकन्दर भारत से यूनान लौटा था, तब तक्षशिला के एक जैन–मुनि 'कोलानस' या 'कल्याण–मुनि' उनके साथ यूनान गये और अनेक वर्षों तक वे एथेन्स नगर में रहे। उन्होंने एथेन्स में सल्लेखना ली। उनका समाधि–स्थान यहीं पर है।

जापान और जैनधर्म (Japan and Jain Religion)—जापान में भी प्राचीनकाल में जैन–संस्कृति का व्यापक प्रचार था तथा स्थान–स्थान पर श्रमण–संघ स्थापित थे। उनका भारत के साथ निरंतर संपर्क बना रहता था। बाद में भारत से संपर्क दूर हो जाने पर इन जैन–श्रमण साधुओं ने बौद्धधर्म से संबंध स्थापित कर लिया। चीन और जापान में ये लोग आज भी जैन–बौद्ध कहलाते हैं।

ब्रह्मदेश (बर्मा) में जैनधर्म (Jain Religion in Burma)—शास्त्रों में ब्रह्मदेश को स्वर्णद्वीप कहा गया है। जनमत प्रसिद्ध जैनाचार्य कालकाचार्य और उनके शिष्य गया स्वर्णद्वीप में निवास करते थे, वहाँ से उन्होंने आसपास के दक्षिण–पूर्व एशिया के अनेक देशों में जैनधर्म का प्रचार किया था। थाईलैण्ड–स्थित नागबुद्ध की नागफण वाली प्रतिमाएँ पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ हैं।

श्रीलंका में जैनधर्म (Jain Religion in Shree Lanka)—भारत और लंका (सिंहलद्वीप) के युगों पुराने सांस्कृतिक संबंध रहे हैं। सिंहलद्वीप में प्राचीनकाल में जैनधर्म का प्रचार था। मंदिर, मठ, स्मारक विद्यमान थे जो बाद में बौद्ध संघाराम बना लिये गये।

अफगानिस्तान में जैनधर्म (Jain Religion in Afganistan)—अफगानिस्तान प्राचीनकाल में भारत का भाग था तथा अफगानिस्तान में सर्वत्र जैन–साधु निवास करते थे। भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग के भूतपूर्व संयुक्त महानिदेशक श्री टी.एन. रामचन्द्रन अफगानिस्तान गये एक शिष्टमंडल के नेता के रूप में यह मत व्यक्त किया था, कि 'मैंने ई. छठी, सातवीं शताब्दी के प्रसिद्ध चीनी–यात्री ह्वेनसांग के इस कथन का सत्यापन किया है कि यहाँ जैन–तीर्थंकरों के अनुयायी बड़ी संख्या में हैं। उस समय एलेग्जेन्ड्रा में जैनधर्म और बौद्धधर्म का व्यापक प्रचार था।

चीनी–यात्री ह्वेनसांग 686–712 ईसवी के यात्रा के विवरण के अनुसार कपिश देश में 10 जैन मंदिर हैं। यहाँ निर्ग्रन्थ जैन–मुनि भी धर्म–प्रचारार्थ विहार करते थे। 'काबुल' में भी जैनधर्म का प्रसार था। वहाँ जैन–प्रतिमाएँ उत्खनन में निकलती रहती हैं।

हिन्द्रेशिया, जावा, मलाया, कम्बोडिया आदि देशों में जैनधर्म (Jain Religion in Hindresia, Jawa, Malaya, Combodia etc. Countries)—इन द्वीपों के सांस्कृतिक इतिहास और विकास में भारतीयो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन द्वीपों के प्रारंभिक अप्रवासियों का अधिपति सुप्रसिद्ध जैन–महापुरुष 'कौटिल्य' था, जिसका कि जैनधर्म–कथाओं में विस्तार से उल्लेख हुआ है। इन द्वीपों के भारतीय आदिवासी विशुद्ध शाकाहारी थे। उन देशों से प्राप्त मूर्तियाँ तीर्थंकर–मूर्तियों से मिलती–जुलती हैं। यहाँ पर चैत्यालय भी मिलते हैं, जिनका जैन–परम्परा में बड़ा महत्व है।

नेपाल देश में जैनधर्म (Jain Religion in Nepal)—नेपाल का जैनधर्म के साथ प्राचीनकाल से ही बड़ा संबंध रहा है। आचार्य भद्रबाहु महावीर निर्वाण–संवत् 170 में नेपाल गये थे और नेपाल की कन्दराओं में उन्होंने तपस्या की थी, जिससे सम्पूर्ण हिमालय–क्षेत्र में जैनधर्म की बड़ी प्रभावना हुई थी।

भूटान देश में जैनधर्म (Jain Religion in Bhutan)—भूटान में जैनधर्म का खूब प्रसार था तथा जैन मंदिर और जैन साधु–साध्वियाँ विद्यमान थे। विक्रम–संवत् 1806 में दिगम्बर जैन तीर्थयात्री लामचीदास गोलालारे ब्रह्मचारी भूटान देश में जैन–तीर्थयात्रा के लिये गया था, जिसके विस्तृत यात्रा–विवरण (जैन शास्त्र–भण्डार, तिजारा, राजस्थान) की 108 प्रतियां भिन्न–भिन्न जैन शास्त्र–भण्डारों में सुरक्षित हैं।

पाकिस्तान के परवर्ती-क्षेत्रों में जैनधर्म (Jain Religion in Pakistan and Nearby Areas)— आदिनाथ स्वामी ने भरत को अयोध्या, बाहुबली को पोदनपुर तथा शेष 98 पुत्रों को अन्य देश प्रदान किये थे। बाहुबलि ने बाद में अपने पुत्र महाबलि को पोदनपुर का राज्य सौंपकर मुनि-दीक्षा ली थी। पोदनपुर वर्तमान पाकिस्तान क्षेत्र में विन्ध्यार्थ पर्वत के निकट सिंधु नदी के सुरम्य एवं रम्यक के देश उत्तरार्ध में था और जैन-संस्कृति का आदित्य जगत-विख्यात विश्वकेन्द्र था। कालान्तर में पोदनपुर अज्ञात कारणों से नष्ट हो गया।

5.2 विदेशों में जैन-साहित्य और कला-सामग्री (Jain Literature and Art Material Abroad)—

लंदन—स्थित अनेक पुस्तकालयों में भारतीय ग्रंथ विद्यमान हैं, जिनमें से एक पुस्तकालय में तो लगभग 1500 हस्तलिखित भारतीय ग्रंथ हैं और अधिकतर ग्रंथ प्राकृत, संस्कृत, भाषाओं में हैं और जैनधर्म से संबंधित हैं।

जर्मनी में भी बर्लिन-स्थित एक पुस्तकालय में बड़ी संख्या में जैन-ग्रंथ विद्यमान हैं, अमेरिका के वाशिंगटन और बोस्टन नगर में 500 से अधिक पुस्तकालय हैं, इनमें से एक पुस्तकालय में 40 लाख हस्तलिखित पुस्तके हैं, जिनमें भी 20000 पुस्तकें प्राकृत, संस्कृत, भाषाओं में हैं, जो भारत से गई हुई हैं।

फ्रांस में 1100 से अधिक बड़े पुस्तकालय हैं, जिनमें पेरिस स्थित बिब्लियोथिक नामक पुस्तकालय में 40 लाख पुस्तकें हैं। उनमें 12 हजार पुस्तकें प्राकृत, संस्कृत भाषा की हैं, जिनमें जैन-ग्रंथों की अच्छी संख्या है।

रूस में एक राष्ट्रीय पुस्तकालय है, जिसमें 5 लाख पुस्तकें हैं। उनमें 22 हजार पुस्तकें प्राकृत, संस्कृत की हैं। इसमें जैन-ग्रंथों की भी बड़ी संख्या है।

इटली के पुस्तकालयों में 60 हजार पुस्तकें तो प्राकृत, संस्कृत की हैं और इसमें जैन-पुस्तकें बड़ी संख्या में हैं।

नेपाल के काठमाण्डु स्थित पुस्तकालयों में हजारों की संख्या में जैन प्राकृत और संस्कृत-ग्रंथ-विद्यमान हैं।

इसी प्रकार चीन, तिब्बत, वर्मा, इंडोनेशिया, जापान, मंगोलिया, कोरिया, तुर्की, ईरान, अल्जीरिया, काबुल आदि के पुस्तकालयों में भी जैन-भारतीय-ग्रंथ बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं।

भारत से विदेशों में ग्रंथ ले जाने की प्रवृत्ति केवल अंग्रेजी काल से ही प्रारंभ नहीं हुई अपितु इससे हजारों वर्ष पूर्व भी भारत की इस अमूल्य निधि को विदेशी लोग अपने-अपने देशों में ले जाते रहे हैं।

वे लोग भारत से कितने ग्रंथ ले गये, उनकी संख्या का सही अनुमान लगाना कठिन है। इसके अतिरिक्त म्लेच्छों, आततायियों, धर्मद्वेषियों ने हजारों, लाखों की संख्या में हमारे साहित्य-रत्नों को जला दिया।

इसी प्रकार जैन-मंदिरों, मूर्तियों, स्मारकों, स्तूपों आदि पर भी अत्यधिक अत्याचार हुए हैं। बड़े-बड़े जैन तीर्थ, मंदिर, स्मारक आदि मूर्ति-भंजकों ने धराशायी किये। अफगानिस्तान, काश्यपक्षेत्र, सिंधु, सोवीर, बलूचिस्तान, बेबीलोन, सुमेरिया, पंजाब, लक्षशिला तथा कामरूप-प्रदेश बांग्लादेश आदि प्राचीन जैन-संस्कृति-बहुल क्षेत्रों में यह विनाशलीला चलती रही। अनेक जैन-मंदिरों को हिन्दू और बौद्ध मंदिरों में परिवर्तित कर लिया गया था उनमें मस्जिदें बना ली गईं। अनेक जैन-मंदिर, मूर्तियाँ आदि अन्यधर्मियों के हाथों में चले जाने से आज अन्य देवी-देवताओं के रूप में पूजे जाने से जैन-इतिहास और पुरातत्त्व एवं कला-सामग्री को भारी क्षति पहुँची है।

विदेशों में स्थित जैन सम्पर्क केन्द्र (Jain Contact Centres situated in Foreign Countries)— विश्व के लगभग सभी देशों में भारतीय परिवार निवास कर रहे हैं। इनमें से बहुत से जैन परिवार हैं, जो आर्थिक-उन्नति के साथ जैनधर्म में अपनी आस्था बनाये हुए हैं। आज अनेक देशों में इनके द्वारा जैन-मंदिर, पुस्तकालय, केन्द्र, सोसायटी, पत्र-पत्रिकाओं की स्थापना की जा रही है।

5.3 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)-

प्रश्न 1-पीकिंग नगर में जैन आगम किस लिपि में हैं ?

प्रश्न 2-बर्मा में कौन से प्रसिद्ध जैनाचार्य निवास करते थे, उन्होंने कहाँ-कहाँ जैनधर्म का प्रचार-प्रसार किया ?

प्रश्न 3-लंदन स्थित पुस्तकालय में कितने हस्तलिखित भारतीय ग्रंथ किस-किस भाषा के और किस धर्म से संबंधित हैं ?

जैन दर्शन और संस्कृति का इतिहास

-संदर्भ ग्रंथ-

1. आदिपुराण –आचार्य श्री जिनसेन
2. उत्तरपुराण –आचार्य श्री गुणभद्र
3. तिलोयपण्णत्ति –श्री यतिवृषभाचार्य
4. हरिवंशपुराण –श्री जिनसेनाचार्य
5. षट्खण्डागम –श्री पुष्पदंत–भूतबलि आचार्य
6. जैनधर्म एवं दर्शन –मुनि श्री प्रमाणसागर जी
7. जैन भारती –गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी
8. भगवान महावीर –गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी
9. चौबीस तीर्थंकर –गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी
10. गोम्मटसार जीवकाण्डसार –गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी
11. ज्ञानामृत (भाग–1) –गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी
12. ज्ञानामृत (भाग–2) –गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी
13. प्रवचन निर्देशिका –गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी
14. जैनदर्शन और संस्कृति का इतिहास –डॉ. भागचन्द जैन भास्कर
15. जैनधर्म –पं. कैलाशचंद जैन सिद्धान्तशास्त्री
16. जैनधर्म जानिए –श्री शेखरचंद जैन
17. जैनधर्म का प्राचीन इतिहास –पं. परमानंद शास्त्री
18. भगवान महावीर की परम्परा एवं समसामायिक संदर्भ –डॉ. त्रिलोकचंद कोठारी
19. जैनधर्म की प्राचीनता –श्रुतसंवर्द्धन संस्थान, मेरठ
20. www.encyclopediaofjainism.com

प्रश्नावली (Questions Bank)

प्रश्न 1 -जैनदर्शन की परिभाषा बताइए ?

प्रश्न 2 -जैनदर्शन के मूल सिद्धान्त क्या हैं ?

प्रश्न 3 -जैन दर्शन की क्या-क्या विशेषताएँ हैं ?

प्रश्न 4 -रत्नकरण्ड श्रावकाचार के अनुसार धर्म की परिभाषा बताइए ?

प्रश्न 5 -णमोकार मंत्र में कितने अक्षर, कितने पद और कितनी मात्राएँ हैं ?

प्रश्न 6 -महामंत्र णमोकार में अरिहंत परमेष्ठी को पहले नमस्कार क्यों किया है ?

प्रश्न 7 -णमोकार मंत्र को और किन-किन नामों से जाना जाता है ?

प्रश्न 8 -णमोकार मंत्र का माहात्म्य बताइये ?

प्रश्न 9 -पंचपरमेष्ठी का संक्षिप्त रूप बताते हुए उसे बनाने की प्रक्रिया बताइये ?

प्रश्न 10 -परमेष्ठी किसे कहते हैं?

प्रश्न 11 -अरिहंत परमेष्ठी के कितने मूलगुण हैं?

प्रश्न 12 -जन्म के दश अतिशय और चार अनंत चतुष्टय के नाम बताओ?

प्रश्न 13 -सिद्धों के मूल गुण कितने हैं?

प्रश्न 14 -आचार्य किसे कहते हैं?

प्रश्न 15 -बारह तप के नाम बताओ?

प्रश्न 16 -पाँच आचारों के लक्षण कहो?

प्रश्न 17 -चौदह पूर्वों के नाम बताओ?

प्रश्न 18 -साधु परमेष्ठी के कितने मूलगुण हैं?

प्रश्न 19 -षट् आवश्यक क्रिया और सात शेष गुणों के नाम बताओ?

प्रश्न 20 -आचार्य, उपाध्याय और साधु में क्या अन्तर है?

प्रश्न 21 -जैनधर्म की स्थापना किसने की ?

प्रश्न 22 -जैनधर्म का मुख्य उद्देश्य क्या है ?

प्रश्न 23 -जैन मूर्तियों की क्या विशेषता है ?

प्रश्न 24 -अवसर्पिणी काल से क्या आशय है ? इसकी कितनी अवधि है ?

प्रश्न 25 -वर्तमान में कौन सा काल किस नाम से चल रहा है ?

प्रश्न 26 -कल्पवृक्ष से क्या आशय है ?

प्रश्न 27 -कल्पवृक्ष के भेदों के नाम बताइये ?

प्रश्न 28 -कुलकर से क्या आशय है ? ये कितने होते हैं ?

प्रश्न 29 -प्रथम और अंतिम कुलकर का नाम बताइये ?

प्रश्न 30 -कुलकरों की दण्ड व्यवस्था का उल्लेख कीजिए ?

प्रश्न 31 -भरत चक्री की दण्ड व्यवस्था क्या थी ?

प्रश्न 32 -शलाका पुरुष से क्या आशय है ? ये कौन-कौन से होते हैं ?

प्रश्न 33 -बारह चक्रवर्तियों के नाम लिखिए ?

प्रश्न 34 -नौ नारायण कौन-कौन से हैं ?

प्रश्न 35 –केवली और तीर्थंकर भगवान में अन्तर बताइये ?

प्रश्न 36 –तीर्थंकर के पाँचों कल्याणकों के नाम बताइये ?

प्रश्न 37 –वर्तमान के बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर कौन–कौन से थे ?

प्रश्न 38 –तीन पदवी के धारी तीर्थंकरों के नाम बताइये ?

प्रश्न 39 –एक से अधिक नाम वाले तीर्थंकर कौन–कौन से हैं ?

प्रश्न 40 –भगवान अजितनाथ और सुमतिनाथ के चिन्ह क्या–क्या है ?

प्रश्न 41 –विद्यमान तीर्थंकर कितने और कहाँ हैं ?

प्रश्न 42 –भगवान ऋषभदेव के महल का क्या नाम था ?

प्रश्न 43 –भगवान ऋषभदेव का जन्म किस तिथि में हुआ था ?

प्रश्न 44 –भगवान ऋषभदेव के कितने पुत्र–पुत्रियाँ थे ?

प्रश्न 45 –भगवान ऋषभदेव ने कौन से षट्कर्मों का उपदेश प्रजा को दिया था ?

प्रश्न 46 –भगवान ऋषभदेव के दीक्षा एवं निर्वाणस्थल का नाम बताओ ?

प्रश्न 47 –भगवान नेमिनाथ जैनधर्म के कौन से तीर्थंकर माने जाते हैं ?

प्रश्न 48 –भगवान नेमिनाथ का जन्म कहाँ हुआ था ?

प्रश्न 49 –भगवान नेमिनाथ के माता–पिता का क्या नाम था ?

प्रश्न 50 –भगवान नेमिनाथ ने दीक्षा कहाँ धारण की थी ?

प्रश्न 51 –भगवान नेमिनाथ का मोक्ष किस तिथि में हुआ था ?

प्रश्न 52 –भगवान पार्श्वनाथ का जन्म किस तिथि में हुआ था ?

प्रश्न 53 –भगवान पार्श्वनाथ के नाना का क्या नाम था ?

प्रश्न 54 –भगवान पार्श्वनाथ ने कितने वर्ष की आयु में दीक्षा ली थी ?

प्रश्न 55 –भगवान पार्श्वनाथ ने मोक्ष कहाँ से प्राप्त किया था ?

प्रश्न 56 –भगवान महावीर का जन्म कहाँ हुआ और उनके माता–पिता का क्या नाम था ?

प्रश्न 57 –भगवान महावीर की माता किस देश के राजा की पुत्री थी ?

प्रश्न 58 –भगवान महावीर के सन्मति और महावीर नाम किस प्रकार रखा गया ?

प्रश्न 59 –भगवान महावीर के महल का क्या नाम था ?

प्रश्न 60 –भगवान महावीर के प्रमुख गणधर और प्रमुख गणिनी का नाम बताइये ?

प्रश्न 61 –भगवान महावीर का निर्वाण कब और कहाँ से हुआ ?

प्रश्न 62 –363 मतों के नाम क्या हैं ?

प्रश्न 63 –नियतिवाद का क्या अर्थ है ?

प्रश्न 64 –श्रुत अज्ञान किसे कहते हैं ?

प्रश्न 65 –गणधर स्वामी के कितनी ऋद्धियाँ होती हैं ?

प्रश्न 66 –चौबीस तीर्थंकरों के कुल कितने गणधर हैं ?

प्रश्न 67 –आचार्य श्री वीरसेन स्वामी ने किन–किन ग्रंथों की टीका लिखी है ?

प्रश्न 68 –दिगम्बर परम्परा के अनुसार भगवान महावीर की माता का नाम बताएं ?

प्रश्न 69 –श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार तीर्थंकर चातुर्मास करते हैं या नहीं ?

प्रश्न 70 –दिगम्बर परम्परा के अनुसार तीर्थंकर की माता कितने स्वप्न देखती है ?

प्रश्न 71 –द्वादशांग श्रुतज्ञान क्या है ?

प्रश्न 72 –श्रुतज्ञान के कितने भेद हैं ? अंगबाह्य के 12 भेद के नाम बताओ।

प्रश्न 73 –दृष्टिवाद अंग के पाँच अधिकार कौन से हैं ?

प्रश्न 74 –363 पाखण्ड मत कौन से हैं ?

प्रश्न 75 –चूलिका के 5 भेद के नाम बताओ ? एवं पाँचों चूलिकाओं के पदों का जोड़ कितना है ?

प्रश्न 76 –भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर कौन हुए और उन्हें मोक्ष कब प्राप्त हुआ ?

प्रश्न 77 –कसायपाहुड़ ग्रंथ के प्रणेता आचार्य का नाम और उनका समय क्या था?

प्रश्न 78 –श्री कुंदकुदस्वामी द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रंथों के नाम बतायें ?

प्रश्न 79 –तिरेसठ शलाका पुरुष कौन हैं ? इनका वर्णन कहाँ आता है ?

प्रश्न 80 –दिगम्बर जैन साध्वियों में साहित्य लेखन का शुभारंभ किनने किया और कितने ग्रंथ लिखे हैं ?

प्रश्न 81 –संस्कृति किसे कहते हैं ?

प्रश्न 82 –संस्कृति और सभ्यता में क्या अन्तर है ?

प्रश्न 83 –जैन संस्कृति का मूल आधार क्या है, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वह किसका समाधान करती है ?

प्रश्न 84 –किन चार मणिस्तंभों पर जैन साध्वाचार का सर्वोदयी प्रासाद अवस्थित है ?

प्रश्न 85 –जैनत्व का क्या अर्थ है ?

प्रश्न 86 –भगवान ऋषभदेव ने जनताके योगक्षेम के लिए कितनी कलाओं और गुणों को बताया ?

प्रश्न 87 –सितन्नवासल किसे कहते हैं, उसका प्राकृत रूप क्या है ?

प्रश्न 88 –जैन तीर्थंकरों की मूर्ति की क्या पहचान है ?

प्रश्न 89 –जैन स्थापत्यकला के सबसे प्राचीन अवशेष कहाँ–कहाँ मिलते हैं ?

प्रश्न 90 –सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने किनसे दीक्षा ली ?

प्रश्न 91 –पर्यूषण पर्व का शाब्दिक अर्थ बताइये ?

प्रश्न 92 –षट्खण्डागम नामक सिद्धान्त ग्रंथ की रचना किसने की ?

प्रश्न 93 –जैन संस्कृति के अनुसार दीपावली पर्व क्यों मनाया जाता है ?

प्रश्न 94 –अक्षय तृतीया पर्व किस तिथि को और क्यों मनाया जाता है ?

प्रश्न 95 –रत्नत्रय पर्व किन–किन हिन्दी महीनों में आता है ?

प्रश्न 96 –जैन मान्यतानुसार 'तीर्थ' किसे कहा जाता है ?

प्रश्न 97 –भगवान मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि का नाम बताइये ?

प्रश्न 98 –भगवान महावीर की जन्मभूमि कहाँ अवस्थित है तथा वहाँ किसकी प्रेरणा से क्या–क्या विकास कार्य हुए हैं ?

प्रश्न 99 –महाराष्ट्र में स्थित किन्हीं 5 तीर्थों के नाम बताइये ?

प्रश्न 100–उदयगिरि की हाथी गुफा में क्या अंकित है ?

प्रश्न 101–पीकिंग नगर में जैन आगम किस लिपि में हैं ?

प्रश्न 102–बर्मा में कौन से प्रसिद्ध जैनाचार्य निवास करते थे, उन्होंने कहाँ–कहाँ जैनधर्म का प्रचार–प्रसार किया ?

प्रश्न 103–लंदन स्थित पुस्तकालय में कितने हस्तलिखित भारतीय ग्रंथ किस–किस भाषा के और किस धर्म से संबंधित हैं ?

नोट्स

Published by :

Digambar Jain Trilok Shodh Sansthan

Jambudweep-Hastinapur-250404 (Meerut) U.P.
Mobile : 9520554138, 9520554164
Email : jambudweeptirth@gmail.com
Website : www.encyclopediaofjainism.com, www.ayodhyajaintirth.com

Teerthanker Mahaveer University, Moradabad

146 Kms. from Delhi on N.H. 24, Delhi-Moradabad Highway
Moradabad (U.P.)-244001, Ph.:0591-2360500, 2360077
Fax : 0591-2360444. 2487444, Email : university@tmu.ac.in, Web : www.tmu.ac.in